हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर का १५वाँ ग्रंथ

उपवास-चिकित्सा

*****

लेखक
अनेक ग्रंथों के रचयिता और अनुवादकर्ता

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा

*****

प्रकाशक

हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

*****

आषाढ़, १९८९ वि.सं.

*****

जून, १९३२ ई.

*****

चौथा परिवर्द्धित संस्करण

*****

मूल्य - १/-   सजिल्द का १।।/-

* जीवन एक ऐसा किला है जो अपनी रक्षा आप कर सकता है फिर उसके मार्ग में रोड़े क्यों अटकाते हो? यह सच है कि यदि किला कमजोर कर दिया जायेगा तो शत्रु के आक्रमण की भयंकरता कम हो जायेगी परन्तु याद रखो कि इस किले के पास आत्मरक्षा के जो साधन हैं वे तुम्हारी रसायनशालाओं के समस्त उपकरणों से अधिक उत्तम और बहुमूल्य हैं।

- नेपालियन बोनापार्ट

* यह तो दवाओं के संबंध की ही हमारी जानकारी बहुत कम है और फिर उन दवाओं को जिस शरीर में प्रविष्ट किया जाता है उसके विषय में तो हम और भी कम जानते हैं।
औषधियों का उन रोगों पर कोई निश्चित प्रभाव नहीं पड़ता जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है। सबसे अच्छा चिकित्सिक वही है जो औषधियों को निरर्थक समझता है।

- डॉ. सर विलियम ओसलर

(वर्तमान समय में सर्वश्रेष्ठ रोगशास्त्रज्ञ)

* अपने भावी स्वास्थ की आहुति देकर ही दवाओं से कष्ट निवारण किया जाता है।

- बरनर मैकफेडन

* आरोग्य सबसे श्रेष्ठ है। मुझे केवल एक दिन के ही लिए ही आरोग्य दो तो मैं उसके सामने चक्रवर्तियों के वैभव का भी परिहास कर दूँगा।

- इमर्सन

* ईश्वरीय नियम पालन से ही शरीर नीरोग रह सकता है, शैतानी नियम पालन से नहीं। जहाँ सच्चा आरोग्य है, वहाँ सच्चा सुख है।

- महात्मा गाँधी

* अश्रुधितेनामृतमप्युपभुक्तं च भवति विषं।

- सोमदेव सूरि

चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकें

संसार में दिन पर दिन सैकड़ों नई-नई दवाईयाँ ईज़ाद होती जाती हैं, डॉक्टरों और वैद्यों की संख्या बेहतर बढ़ती जाती है, फिर भी रोग कम नहीं होते बल्कि रोगियों की संख्या भी बराबर बढ़ती जाती है। यह देखकर बहुत से पाश्चात्य विद्वानों को डॉक्टरों और वैद्यकीय चिकित्सा की पद्धति पर अश्रद्धा हो गई है और वे रोगों को प्राकृतिक उपायों से बिना किसी प्रकार की दवा-दारू के आराम करने के प्रयत्न में लग गये हैं और इसके फलस्वरूप उन्होंने अनेक ग्रंथ लिख डाले हैं। हिन्दी में इस विषय में ग्रंथों का अभाव देखकर हमने उक्त ग्रंथों के आधार से नीचे लिखी पुस्तकें लिखवाकर प्रकाशित की हैं। इन्हें पढ़िये और इनका घर-घर में प्रचार कीजिए।

१. **नवीन चिकित्सा** - विज्ञान या जलचिकित्सा - डॉ. लुई कूने की पुस्तक का संपूर्ण अनुवाद। अनेक चित्रों से युक्त। इसमें पानी के स्नानों से सब प्रकार के रोगों को आराम करने का विधि लिखी है।

२. **प्राकृतिक चिकित्सा** - इसमें कटि-स्नान, मेहन-स्नान, सूर्य की धूप का स्नान और वाष्प-स्नान (बफारा) करना, कोयलों की आँच से पसीना लेना, शुद्ध जल को अधिक परिमाण में पीना, व्यायाम करना, शुद्ध वायु में श्वासोच्छ्वास लेना आदि क्रियाओं से सब प्रकार के रोगों को दूर करने की विधि लिखी है और रोग क्यों होते हैं, इसको खूब विस्तारपूर्वक समझाया है।

३. **योग-चिकित्सा** - इसमें योग की सरल क्रियाओं से रोगों को आराम करने और सदा आरोग्य रहने के उपाय बतालाये हैं।

४. **दुग्ध-चिकित्सा** - केवल दूध पीने से और सब प्रकार का भोजन-पान बंद कर देने से भी बड़े-बड़े रोग आराम हो सकते हैं।

५. **मधु चिकित्सा** - शहद के सेवन से सैकड़ों रोगों का इलाज।

६. **सुगम-चिकित्सा** -

७. **संजीवनी विद्या** - विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए ब्रह्मचर्य-शिक्षा

८. **विद्यार्थियों का सच्चा मित्र**

संचालक - हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो. गिरगांव, मुम्बई

हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर

हिन्दी की यह सबसे पहली और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ-माला है। अब तक इसमें उपन्यास, नाटक, काव्य, साहित्य, जीवन चरित्र, इतिहास, चिकित्सा, राजनीति, अध्यात्म आदि विविध विषयों के एक सौ से अधिक उत्तमोत्तम ग्रंथ निकल चुके हैं जिनकी सभी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। स्थायी ग्राहकों को सब ग्रंथ पौनी कीमत में दिय जाते हैं। एक कार्ड लिखकर बडा सूचीपत्र और नियमावली मंगा लीजिये।

संचालक - हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो. गिरगांव, मुम्बई

प्रकाशक का निवेदन

उपवास-चिकित्सा का यह चौथा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसके पहले का तीसरा संस्करण दिसम्बर सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ था। बरनर मैकफेडन की जिस मूल पुस्तक Fasting, Hydropathy & Exercise (उपवास, जल-चिकित्सा और व्यायाम) के आधार से ये पुस्तक लिखी गई थी, वह अब नहीं मिलती। सन् १९२३ में जबकि हमारी इस पुस्तक का तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था मैकफेडन साहब की एक दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम है Fasting for Health (स्वास्थ्य के लिए उपवास)। यह पूर्वोक्त पुस्तक को परिवर्तित, संशोधित और परिवर्धित करके लिखी गई है और एक तरह से पहली पुस्तक का दूसरा जन्म है। इसमें सिर्फ दस अध्याय हैं- (१) उपवास क्या है, (२) उपवास का इतिहास, (३) उपवास का शरीर पर प्रभाव, (४) उपवास कब करना और कब नहीं, (५) उपवास-काल के चिह्न, दुचिह्न और खतरे, (६) उपवास कितने लम्बे किए जाएँ? छोटे और बड़े उपवास-अधूरे उपवास, (७) उपवास कैसे करें? (८) किस तरह तोड़ें? (९) उपवास के बाद शरीर को बनाना (१०) उपवास करने वाले को तत्संबंधी अनुभव। इस सूची से पाठक पहली और दूसरी पुस्तक के अन्तर को बहुत कुछ समझ जायेंगे। लेखक महाशय ने इसे पहली पुस्तक प्रकाशित होने के बाद के अपने और दूसरे उपवास-चिकित्सकों के सब अनुभवों और अन्वेषणों को दृष्टि के आगे रखकर लिया है और उन सब बातों को या तो निकाल दिया है या संक्षिप्त कर दिया है, जो प्राकृतिक चिकित्सा की उपादेयता और औषधियों की निरर्थकता सिद्धि करने के लिए लिखी गई थी और अब यूरोप, अमेरिका के पाठकों के लिए पिष्टपेषण मात्र रह गई है। साथ ही व्यायाम, वायु-सेवन, खान-पान आदि के स्वास्थ्य संबंधी साधारण प्रकरणों को भी अलग कर दिया है।

हमने बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद पूर्व संस्करण के पाठों को तो ज्यों का त्यों रहने दिया है क्योंकि हमारे देश में अब भी उन सब बातों के प्रचार की आवश्यकता है जिन्हें मैकफेडन साहब ने अपनी दूसरी पुस्तक में रखना आवश्यक नहीं समझा है। रहीं वे सब नई बातें जो पहली पुस्तक में नहीं थी सो

उन्हें इस पुस्तक के अंत में परिशिष्ट रूप में जोड़ दिया है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे परिशिष्ट भाग को भी पुस्तक का आवश्यक अंश समझकर पढ़ें और उससे पूरा-पूरा लाभ उठावें। उसमें ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें जान लेने से उपवास करने वाले बहुत सी कठिनाइयों और खतरों से बच सकेंगे।

परिशिष्ट भाग को मेरे पुत्र चि. हेमचन्द्र ने उपवास-चिकित्सा और फास्टिंग फॉर हेल्थ (सन् १९३१ का संस्करण) को आद्यन्त पढ़कर लिखा है और इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि उक्त नई पुस्तक की कोई ऐसी बात न रह जाए जिसका जानना उपवास करने वालों के लिए उपोगी है।

उपवास चिकित्सा के लेखक बाबू रामचन्द्र वर्मा ने अपने वक्तव्य में डॉक्टर शावक बी. मादन का थोड़ा सा परिचय दिया है। ये महाशय इस बीच में अमेरिका हो आए हैं और वहाँ से मैकफेडन सा. के College of Physcultotherapy की डिग्री डी.पी. D.P. या Doctor of Physicultotherapy प्राप्त कर लाये हैं। अब आप अपने चिकित्सालय में उपवास, मालिश, व्यायाम और पथ्यभोजन से रोगों की चिकित्सा करते हैं।

पं. लालचन्दजी नाम के एक सज्जन को जो घुरट जि. जालौन के रहने वाले हैं- हमने अपनी चिकित्सा से आराम होते देखा है। पण्डितजी अनेक दुस्साध्य और दुःखद रोगों से ग्रस्त थे और सब चिकित्साओं से निराश होकर उपवास कर रहे थे। वे जिस दिन बम्बई आये, उस दिन उनका बयालीसवाँ उपवास था और ऐसी बुरी हालत थी कि कई धर्मशाला वालों ने मृत्यु हो जाने के डर से उन्हें ठहरने तक न दिया था। बड़ी मुश्किल से हम लोगों के कहने-सुनने से हीराबाग-धर्मशाला में उन्हें स्थान मिला और तब वे डॉ. मादन से मिल सके। डॉ. साहब ने उन्हें आश्वासन दिया और चूंकि उपवास काफी लंबा हो चुका था इसलिए उसे तुड़ाकर अपनी प्राकृतिक चिकित्सा शुरू कर दी। प्रारंभ में छाछ दिया, जिसकी मात्रा बढ़ते-बढ़ते प्रतिदिन छः सेर तक पहुँच गई। दो हफ्ते बाद दो उपवास कराके फिर दूध देना शुरू कर दिया और वह भी धीरे-धीरे बढ़ाया गया। प्रति दिन पाँच-छह सेर तक वह भी पीया जाने लगा। इन दिनों एनीमा बराबर दिया जाता रहा। लगभग दो महीने तक वे यहाँ रहे और जब घर को लौटे तब खूब हष्ट-पुष्ट और नीरोग थे।

पूज्यवर पं. रामेश्वरानन्दजी वैद्य भी उपवास-चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं। मुम्बई के मांडवी मुहल्ले में आपका दवाखाना है। आप न केवल अपने रोगियों को ही उपवास करने की सलाह देते हैं, वरन स्वयं भी उपवास करते हैं। इस समय आपकी अवस्था ८० वर्ष के ऊपर है, फिर भी पाठक आश्चर्य करेंगे कि गत दस बरसों से आप हर साल तीस-चालीस उपवास किया करते हैं, और इस तरह अब तक सब मिलाकर ३८९ उपवास कर चुके हैं। हमारी प्रार्थना पर आपने इस विषय में अपने उपवासों को थोड़ा सा परिचय लिखकर दिया है, जो पुस्तक के अंत में प्रकाशित किया जाता है। ज्वर, टाइफाइड (मंथज्वर), मंदाग्नि, संग्रहिणी, लीवर और आमवात आदि रोगों के लगभग पचास रोगियों को आप उपवास-चिकित्सा से आराम कर चुके हैं।

सन् १९२४ में निमोनिया, खाँसी, दमा और प्लुरसी आदि अनेक रोगों से त्रस्त होने पर मुझे भी आपने २५ उपवास कराये थे और उक्त अत्यंत कष्टदायक रोगों से मुक्त कर दिया था। लगभग उसी समय मेरे पुत्र चि. हेमचन्द को टाइफाइड (मन्थ-ज्वर) हो गया था और उसे भी २६ उपवास कराये गये थे। इन दोनों प्रयोगों का परिचय भी पुस्तक के अनत में दे दिया गया है।

डॉ. मादन और वैद्यराजजी का यह थोड़ा सा परिचय देकर हम पाठकों को यह सम्मति नहीं दे रहे हैं कि वे उपवास-चिकित्सा के लिए बम्बई आने का कष्ट उठावें क्योंकि उपवास-चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा है कि इससे गरीब-अमीर सभी एक-सा फायदा उठा सकते हैं और चाहे जहाँ किसी भी अच्छे वैद्य या डॉक्टर की देख-रेख में यह की जा सकती है। सच पूछा जाय तो इसमें प्राण और धन का शोषण करने वाले वैद्य और डॉक्टरों की कोई अधीनता ही नहीं है। उनके बिना भी बुद्धिमान लोग इसे अपने आप कर सकते हैं। फिर भी जिनमें आत्म-विश्वास की कमी है और जो यथेष्ट धन खर्च कर सकते हैं उन लोगों को चाहिए कि वे डॉ. मादन जैसे सुयोग्य चिकित्सकों की देख-रेख में अपनी चिकित्सा करावें।

१६-०६-१९३२ निवेदक

नाथूराम प्रेमी

वक्तव्य

(पहली आवृत्ति से)

प्रत्येक मनुष्य के लिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखने की इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है पर इस इच्छा की पूर्ति और प्रयत्न की सफलता बहुत ही थोड़े लोगों के भाग्य में होती है। दिन पर दिन रोगों और रोगियों की संख्या इतनी बढ़ती जाती है कि पूर्ण रूप से स्वस्थ मनुष्य ढूंढ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहाँ तक कि बहुत पहले ही इस देश में ''शरीरं व्याधिमन्दिरम्'' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है पर वास्तव में यह बात नहीं है। शरीर स्वयं कभी व्याधि-मन्दिर नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति सदा निरोग होने या रहने की ओर होती है पर हम आहार-विहार आदि के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके स्वयं उसे व्याधि-मंदिर बना लेते हैं। प्राणिमात्र में सर्वश्रेष्ठ गिने जाने वाले मनुष्य के लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है।

इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकल की वह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायता से व्याधि को शरीर से बाहर निकाल देने का प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीर में अपने आपको स्वयं निरोग कर लेने की सबसे बड़ी शक्ति विद्यमान हो, उसे तरह-तरह के विषों के प्रयोग से निरोग करने का प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस संबंध में सबसे अधिक आश्चर्य और दु:ख की बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों में जो प्रणाली सबसे अधिक दूषित और हानिकारक है, सारे संसार में वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य एलोपैथी से है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य औषधियों को बलपूर्वक तीव्र, उग्र और भयंकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनकी मात्रा में थोड़ी सी वृद्धि हो जाने पर भी बहुत बड़े अनर्थ की संभावना होती है। इस पुस्तक में औषधियों के संबंध में बहुत बड़े-बड़े डॉक्टरों की जो निन्दात्मक सम्मतियाँ दी गई हैं वे सब एलोपैथिक औषधियों पर ही हैं। औषधि-चिकित्सा की और भी जितनी प्रणालियां हैं वे भी थोड़ी-

बहुत दूषित और हानिकारक अवश्य हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि औषधि की सहायता से होने वाली अस्थायी आरोग्यता की अपेक्षा शरीर की स्वसम्पादित आरोग्यता कहीं अधिक अच्छी होती है।

शरीर को आरोग्यता प्राप्त करने का सबसे अच्छा अवसर उसी समय मिलता है जबकि उसकी सारी शक्तियों को सब तरह से भारों से छुट्टी मिल जाये और यह छुट्टी लंघन या उपवास की सहायता से ही मिल सकती है। जिस भोजन का काम हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग को पुष्ट करना है, वह हमारे अंग-प्रत्यंग के रोगों को भी अवश्य ही बढ़ाता जायेगा क्योंकि वृद्धि और पुष्टि करना ही उसका स्वाभाविक धर्म है। भोजन करते रहने के अतिरिक्त जहाँ औषधियों आदि की सहायता से उसके कार्यों में और भी विघ्न डाला जाता है, वहाँ का रक्षक ईश्वर ही है। आयुर्वेद में "लंघनं परमौषधम्" इसीलिए कहा गया है कि उससे शरीर को अपनी स्वाभाविक और आरोग्य स्थिति तक पहुंचने में बहुत अधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक रोग से उपवास की सहायता से जितनी जल्छी छुटकारा मिलता है उतनी जल्दी और किसी उपाय से नहीं मिल सकता। इस पुस्तक में इसी उपवास के गुण, प्रकार और विधान आदि बतलाये गये हैं।

इस पुस्तक में जो बातें बतलाई गई हैं वे इसीलिए बहुत अधिक हृदयग्राही हैं कि वे प्राकृतिक, सहज और युक्ति-युक्त हैं। हमारा विश्वास है कि जो विचारवान् पक्षपातरहित होकर इसमें बतलाई हुई बातों पर ध्यान देगा वह बहुत ही सहज में उनके गुणों को स्वीकार करके उनका समर्थन और पक्षपाती बन जायेगा। औषधों के जाल से निकलकर प्रकृतिदेवी की गोद में स्वतंत्रतापूर्वक रहने लगेगा।

यूरोप, अमेरिका आदि देशों में बहुत से उपवास-चिकित्सालय खुल गये हैं, जिसमें हजारों असाध्य रोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हीं में से एक चिकित्सालय के अध्यक्ष और संस्थापक बरनर मैकफेडन महाशय भी हैं। मैकफेडन साहब का केवल चिकित्सालय ही नहीं है बल्कि उपवास-चिकित्साशास्त्र सिखलाने के लिए एक कॉलेज भी है। उस कॉलेज के पहले

भारतीय ग्रेजुएट श्रीयुत डॉक्टर शावक बी. मादन हैं जिन्होंने सेण्टाक्रूज मुम्बई में एक उपवास चिकित्सालय खोल रखा है। उन्होंने भी सुनते हैं, सैकड़ों पारसियों और मराठों आदि को केवल उपवास कराकर ही बड़े-बड़े भयंकर रोगों से मुक्त किया है, जिनके वर्णन समय-समय पर वहाँ के समाचार-पत्रों में छपते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक डॉ. मैकफेडन की Fasting, Hydropathy & Exercise नामक अंग्रेजी पुस्तक तथा डॉ. मादन की उपवास नामक गुजराती पुस्तक से सहायता लेकर लिखी गई है एतदर्थ हम दोनों महानुभावों के परम कृतज्ञ हैं। श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी के भी हम बहुत कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमें ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने का परामर्श दिया और उसे प्रकाशित किया है।

काशी, शिवरात्रि

विक्रम सं. १९७२ — **रामचन्द्र वर्मा**

---

* अब आपका चिकित्सालय बाम्बे यूनीवर्सिटी के सामने आस्क्विथ एण्ड लार्ड के मकान में (तीसरे मंजिल पर) है, सैण्टाक्रूज में नहीं। कालबादेवी रोड पर आपकी एक दुकान और पुस्तकालय (मादन्स हेल्थ डिपो एण्ड लायब्रेरी) भी है, जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान का प्राय: सभी अंग्रेजी और गुजराती साहित्य तथा एनीमा आदि उपकरण मिलते हैं।

— प्रकाशक

विषय-सूची

परिशिष्ट

जैन धर्म और उपवास

जैन धर्म और उपवास का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। कहने का तात्पर्य है जब से जैन धर्म है तभी से उपवास भी। जब भी कोई दीक्षा लेता है उस दिन उसे उपवास रखना ही होता है, इतना ही नहीं श्रावक के व्रतों में प्रोषधोपवास एवं मुनिचर्या में अनशन आदि तपों का विस्तार से वर्णन मिलता है। विशेष बात यह है कि जैन धर्म में यह परम्परा आज भी जीवित है, दूसरा मात्र जैन धर्म में ही उपवास धारणा एवं पारणा पूर्वक किया जाता है। उपवास के पूर्व की भूमिका धारणा एवं उपवास तोड़ने को पारणा कहते हैं। साधक को उपवास के दिन क्या-क्या करना चाहिए? क्या-क्या नहीं करतना चाहिए? इन सभी का विस्तार से एवं वैज्ञानिक ढंग से वर्णन जैनागम में मिलता है। कुल मिलाकर आत्मा को परमात्मा बनाना है तो उपवास एक मुख्य विषय है। संलेखनापूर्वक समाधिमरण करने वाला ही उस आत्म तत्त्व को पा सकता है, चाहे सामान्य ग्रहस्थ हो या तीर्थंकर उपवास सभी के लिए अनिवार्य प्रश्न है।

हमारे शरीर का संगठन

प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि जीवमात्र का शरीर इस प्रकार बना हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकार के बाहरी या ऊपरी पदार्थ के कारण दोष उत्पन्न होने लगे तो यह शरीर यदि उसके साथ किसी तरह का बल प्रयोग न किया जाये और उसे स्वाभाविक स्थिति में रहने दिया जाये तो उस दोष को आप ही आप दूर कर लेगा। शरीर यथासाध्य किसी अनावश्यक और हानिकारक वस्तु को अपने अंदर नहीं रहने देगा। उसका संगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे बाहर निकालने का प्रयत्न करता रहेगा। एक तो स्वयं हमारे शरीर में ही हरदम बहुत से अनिष्टकारी पदार्थ और तरह-तरह के विष उत्पन्न होते रहते हैं, दूसरे हम लोगों की मूर्खता और कुपथ्य आदि के कारण उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है। यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थों को बाहर निकालने का काम थोड़ी देर के लिए भी बंद कर दें, तो जीवन असंभव हो जाय। साँस, पसीने, मल, मूत्र, थूक और छींक आदि के रूप में शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से सदा हमारे शरीर से तरह-तरह के विकार निकलते रहते हैं। हमारा शरीर ये काम अपने कर्तव्य-स्वरूप करता है। ऐसी दशा में हमारा भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि हम यथासाध्य और जान-बूझकर शरीर के प्रति कोई ऐसा अन्याय न करें, उससे अंदर कोई ऐसा दुष्ट पदार्थ न जाने दें, जिसका प्रतिकार या प्रतिबंध उसकी शक्ति के बाहर हो। यदि हम अपने इस कर्तव्य का ध्यान न रखेंगे, शरीर के अंगों पर उनकी शक्ति से अधिक बोझ लादेंगे, तो परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर हमें जवाब दे देगा, हम रोगी हो जायेंगे और अंत में मर भी जायेंगे।

साधारण टाइप-राइटरों में एक घंटी लगी रहती है जो छापने के समय एक लाइन खतम हो जाने पर आपसे आप बोल उठती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला सचेत हो जाता है और पेंच घुमाकर नई लाइन प्रारंभ करता है। इसी प्रकार और भी बहुत से यंत्रों में ऐसे पुरजे लगे रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकता की सूचना किसी विशिष्ट संकेत के द्वारा दे देते है। हमारे शरीर की बनावट भी बिल्कुल वैसे ही यंत्रों के समान, बल्कि उनसे भी अधिक पूर्ण और

अच्छी है। हमारा स्नायुसमूह आनेवाली किसी बाहरी विपत्ति को देखते ही एक विशेष रुप से हमें भयसूचक संकेत करता है। वह हमें केवल बाहरी विपत्तियों को ही सूचना नहीं देता बल्कि हमारी भीतरी आवश्यकताओं का ज्ञान भी हमें करा देता है।ज्यों ही हमारे भोजन श्वास आदि में किसी प्रकार की बाधा या त्रुटि होती है, अथवा हमारी रगो, पट्ठो आदि में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न होता है, त्यों ही वह एक विशेष प्रकार से- जिसे हम उसकी भाषा भी कह सकते है- हमें उसकी सूचना दे देता है, केवल सूचना ही नहीं, वह उसके प्रतिकार के लिए आवश्यक साधन भी बतला देता है। तात्पर्य यह कि हमारे शरीर में जितनी असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें होती है, स्नायु-समूह-अपनी ओर से उन सबकी सूचना दे दिया करता है। बहुत अधिक सर्दी या सरमिका पता हमें तुरंत ही अपनी त्वचा से लग जाता है। यदि हवा में मिरचों का धुंआ, किसी प्रकार की धाँस या धूल आदि सम्मिलित हो, तो हमें तुरंत खाँसी आने लगती है जो हमें फेफड़ों के द्वारा मिलती है। छोटे से छोटा तिनका या कीड़ा यदि हमारी आँखों के सामने आ जाता है तो हमारी पलके आपसे आप, बिना हमारी इच्छा के ही, बन्द हो जाती है। जहाँ तक संभव होता है, हमारा शरीर भीतरी और बाहरी अनिष्टों से अपनी रक्षा आप की कर लेता है। हमारा शरीरी एक ऐसा मकान है जो अपनी कोठरियों में आप ही आप झाड़ू दे लेता है, अपने चूल्हें या अपनी अग्नियाँ आप ही जला लेता है, आवश्यकता पड़ने पर अपनी खिडकियाँ और दरवाजे आप ही आप खोल और बंद कर लेता है और दुष्ट आक्रमणकारियों को पहले तो स्वयं ही मार भगाने की चेष्टा करता है और जब वह उसमें असमर्थ होता है तब उसकी सूचना अपने किरायेदार को दे देता है। उस सूचना को समझना और आने वाली विपत्ति से शरीर की रक्षा करना किरायेदारी का काम है।

शरीर की भीतरी क्रिया

शरीर-रचना शास्त्र के ज्ञाताओं और बड़े-बड़े डॉक्टरों का मत है कि मनुष्य के शरीर में जन्म से लेकर मृत्यु तक हर दम एक प्रकार का विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणतः लोगों को यह बात सुनकर हँसी आवेगी पर हँसी आने का कोई वास्तविक कारण नहीं है। बात यह है कि मनुष्य के सारे शरीर में छोटे-छोटे कोश हैं जिन्हें अंग्रेजी में सेल्स Cells कहते हैं। ये कोश शरीर की आन्तरिक क्रिया से आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त संचालन की सहायता से उनके स्थान पर नये कोश भी बनते जाते हैं। इस प्रकार हरदम शरीर में पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं। यह क्रिया जीवधारियों के अतिरिक्त वनस्पतियों में भी होती रहती है। अंग्रेजी में परिवर्तन की इस क्रिया को Metabolism कहते हैं। पुराने और नये कोशों का जो अंश अवशिष्ट रह जाता है वही एक प्रकार का विष है। यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीर को बहुत हानि पहुँच सकती है। हमारे शरीर के अवयवों का एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक हो सके शीघ्र उस दूषित अंश को हमारे शरीर से बाहर निकाल दें। उस दूषित अंश के बाहर निकालने का प्रधान मार्ग हमारे शरीर की त्वचा है जिससे वह अंश पसीने के रूप में निकलता है। इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुरदे, तिल्ली और अंतडियां आदि से भी सदा बहुत सा दूषित अंश निकलता रहता है जो हमारे खून के साथ मिलकर उसका रंग काला कर देता है। वह दूषित अंश हमारे फेफड़ों की सहायता से उस ऑक्सीजन द्वारा जलता या नष्ट होता रहता है जो साँस लेने में हवा के साथ हमारे फेफड़ों तक पहुँचता है। यदि हम किसी प्रकार साँस न लें अथवा न ले सकें तो वह दूषित अंश या विकार हमारे खून में इकट्ठा हो जाएगा। फल यह होगा कि पेट में पचा हुआ भोजन शरीर के सब अंगों में न पहुंच सकेगा और वह विष-तुल्य विकार सारे शरीर में फैलकर हमें कमजोर करता-करता अंत में मार डालेगा पर हमारे फेफड़े उस विकार को भी शरीर में इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वास के द्वारा बड़े परिमाण में उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल, मूत्र और

खखार आदि के रूप में हमारे शरीर से बहुत से विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारों का निकलना बंद हो जावे और वे शरीर के अंदर ही रह जायें तो तुरंत ही हमारी मृत्यु होने में कोई संदेह न रह जाये।

वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीर के कोश या सेल्स Cells अधिक परिमाण में नष्ट होते हैं पर नये कोश अधिक परिमाण में उसी समय बनते हैं जबकि हम सब प्रकार के शारीरिक श्रम छोड़कर आराम करते हैं अर्थात शरीर की आरोग्यता के लिए, काम-काज, परिश्रम और व्यायाम आदि की जितनी आवश्यकता है, शरीर को सब प्रकार के परिश्रमों से छुट्टी देकर सुखी बनाने की भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीर को आराम न देंगे और उसे हरदम काम में लगाये रहेंगे तो उसमें नवीन शक्ति, नवीन जीवन का संचार न होगा। फल यह होगा कि हम दिन पर दिन दुर्बल और रोगी होते जायेंगे। जो लोग अपने शारीरिक बल के भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी आराम नहीं करते, वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहाँ तक कि प्राणों से भी हाथ धो बैठते हैं। शरीर को आराम देने का सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्य के शरीर के कोश सोने में ही सबसे अधिक परिमाण में बनते हैं। जाग्रत अवस्था में परिश्रम करने के कारण जो पुराने कोश नष्ट होकर विष का रूप धारण करते हैं, उनका शमन भी सोने में ही होता है। बहुत अधिक कसरत करने वालों या दौड़ने वालों को लीजिए। जो लोग दम साधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौड़ते हैं उनके शरीर और छाती में एक प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है। सैकेजी नामक एक प्रसिद्ध डॉक्टर ने इस दर्द का कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम करने या दौड़ने आदि के कारण शरीर का इतना अधिक दूषित अंश रक्त में मिल जाता है कि फेफड़े उसे साँस के द्वारा बाहर निकालने में असमर्थ हो जाते हैं। उस दशा में मनुष्य के सिर में चक्कर आने लगता है और उसकी आकृति देखने से जान पड़ता है कि उसे स्वच्छ हवा की बहुत आवश्यकता है। अब जरा इस परिश्रम करनेवाले या दौड़ने वालों को थोड़ी देर तक आराम करने दीजिए। उनका हाँफना कुछ कम हो जायेगा और उनका दर्द जाता रहेगा। इसका कारण यही है

कि उनके दूषित अंश बाहर निकालने वाले अवयतों को कुछ आराम मिला है और वे अपना कार्य अच्छी तरह करने लगे हैं। शरीर में एकत्र हुए विष के बाहर निकलते ही उनका दर्द भी कम हो जाता है। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि किसी प्रकार का अधिक परिश्रम करने के उपरान्त शरीर के भिन्न-भिन्न अंशों में जो दोष या विकार उत्पन्न हो जाते हैं उनके दूर करने के लिए उन अवयवों या अंगों को आराम देना चाहिए। कुछ समय तक उनसे कोई नया काम न लेना चाहिए। यह सिद्धान्त संसार के सभी कामों और सभी पदार्थों में समान रूप से प्रयुक्त होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदियाँ, वनस्पतियाँ और वृक्ष आदि तक आराम चाहते और करते हैं। जिस चीज से बहुत अधिक और निरंतर काम लिया जाता है, वह बहुत जल्दी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और जिसे बीच-बीच में अवकाश मिलता रहता है वह अपनी पूरी आयु तक पहुंचती और अपना कार्य उत्तमतापूर्वक करती है।

नियमों का उल्लंघन

मनुष्य है तो जीव-मात्र में सबसे अधिक श्रेष्ठ पर उसके काम और आचरण बहुधा पशुओं के कामों और आचरणों से भी गये बीते होते हैं। इस उन्नति और सभ्यता के जमाने में तो उसके निन्दनीय आचरण और भी बढ़ते जाते हैं। हम लोग औरों के साथ जो अन्याय करते हैं वह तो करते ही हैं हमारा सबसे बड़ा अन्याय स्वयं अपने साथ, अपने शरीर के साथ होता है। हमारा यह अन्याय इतना पुराना और बढ़ा-चढ़ा है कि उसका बहुत अधिक अभ्यास हो जाने के कारण हम उसे अन्याय ही नहीं समझते। हम न तो अपने शरीर और बल को देखते हैं औ न हमें उनकी रक्षा और वृद्धि का ध्यान रहता है। आप किसी बंदर या बकरी को मांस या अफीम खिलाने का प्रयत्न कीजिये, आपको कभी सफलता न होगी पर अपने आपको समझदार कहने वाले बहुत से ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो इनसे भी निकृष्ट पदार्थों को प्राप्त करने में अपनी ओर से कोई कसर न छोड़ेंगे। जो मनुष्य विवेक-युक्त कहलाता है वही कभी इस बात का विचार करने की आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वयं शाकाहारी जीवों की श्रेणी का है अथवा मांसाहारी जीवों की श्रेणी का। उसे शराब, कबाब, मांस, मछली, अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिये, वह बड़ी प्रसन्नता से खा लेगा। यही नहीं बल्कि वह स्वयं उन सब पदार्थों को पाने का प्रयत्न करेगा और सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रा में वह उन सब पदार्थों को उदरस्थ कर सकेगा, उतनी अधिक मात्रा लेने में वह अपनी ओर से कोई बात उठा न रखेगा। लोग कहते हैं कि पशुओं में एक प्रकार का सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते। बहुत ठीक पर क्या सह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्यों में नहीं है ? है और अवश्य है पर मनुष्य जानबूझकर उस ज्ञान का गला घोटता है और स्वयं बलपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है। छोटे-छोटे बच्चों को मांस देखकर स्वाभाविक घृणा होती है पर माता-पिता और घर के दूसरे लोग उन्हें तरह-तरह से बहका कर मांस खाने के लिए प्रवृत्त करते हैं। यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या

है ? बड़े-बड़े शराबी भी शराब पीने के समय बेतरह नाक सिकोड़ते और मुंह बिचकाते हैं। क्यों ? इसीलिए कि वे अपने सहज ज्ञान की हत्या करते हैं, अपनी प्रकृति के विरुद्ध आचरण करते हैं। सुरती खाने, भाँग, अफीम, गाँजा आदि पीने के लिए लोगों को क्यों महीनों थोड़ी-थोड़ी मात्रा बढ़ाकर अभ्यास करना पड़ता है ? इसीलिए कि ये सब पदार्थ स्वभावत: उनके खाने के योग्य नहीं होते। इन सबके व्यवहार के लिए मनुष्य को अपने स्वभाव और प्रकृति में परिवर्तन करना पड़ता है।

मनुष्य का यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रुक जाता बल्कि आगे चलकर वह और भी विकराल रूप धारण करता है। एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें आवश्यकता और शक्ति से कहीं अधिक खा लेता है। आपको भूख तो बिलकुल नहीं है पर आपके मित्र महाशय का बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है, आप कुछ न कुछ अवश्य खा लीजिए। आप अपने को लाचार समझकर खाने बैठ जाते हैं। आपके घर से तो भरपेट भोजन करके चलते हैं पर रास्ते में कोई बढ़िया-सी चीज बिकती हुई देखकर मोल ले लेते हैं और उसके खाने का मौका ढूंढने लगते हैं। किसी मित्र के यहाँ निमंत्रण में जाकर तो आपका यह विश्वास बहुत ही दृढ़ हो जाता है कि- परान्नं दुर्लभं लोके शरीराणि पुनःपुनः। इन सब अवसरों पर आप यह नहीं समझते कि हमारा पेट इतनी तरह की और इतनी अधिक चीजें पचाने में समर्थ होगा या नहीं। पेट अपनी चिन्ता आप ही कर लेगा, आपसे और उससे मतलब ? पर नहीं, थोड़ी ही देर बाद मतलब पैदा हो जाता है। ज्यों ही आपने कुछ अधिक खाया, त्यों ही आपकी तबीयत भारी हो जाती है और आपको चलने-फिरने में कठिनाई होती है। उस समय आप लेमनेड वाले की दुकान की शरण लेते हैं, दोस्तों से नमक सुलेमानी माँगते हैं और इसी प्रकार अन्य उपचारों की चिन्ता में लगते हैं। जो लोग इतनी मोटी बातें नहीं समझ सकते, उन्हें यह बात समझाना और भी कठिन है कि ऊपरी उपचार उस समय तो मनुष्य की शरीरिक वेदना कम कर देते हैं पर स्वयं वह वेदना बीज रूप से उनके शरीर में बनी ही रहती है और आगे चलकर अनेक बड़े-बड़े रोग रूपी वृक्ष उत्पन्न करती है।

यद्यपि पाश्चात्य देशों में भी लोग २४ घंटे के अंदर पाँच-पाँच बार भोजन करते हैं और उनके भोजन की मात्रा भी कम नहीं होती तथापि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक परिमाण में भोजन करने वाले बहुतायत से हैं। दस-दस सेर दही और चिवड़ा खाने वाले मैथिलों और बारह-बारह सेर लड्डू खाने वाले भटूरों और चौबों को जाने दीजिए, पंजाब के साधारण जाट भी एक बार में डेढ़ सेर आटे की रोटियाँ खाते हैं, भोजपुरिये देहातियों को बिना डेढ़ सेर सत्तू के संतोष नहीं होता, यहाँ तक की साधारण बंगाली भी बिना आध सेर चावल के भात के तृप्त नहीं होते। ये सब अनर्थ केवल इसलिए होते हैं कि ये लोग बाल्यावस्था से ही अपने घर के बड़े-बूढ़ों को बहुत अधिक भोजन करते देखते हैं। केवल देखना ही उनके लिए उतना अधिक हानिकारक नहीं होता जितना उनकी माताओं का आग्रह हानिकारक होता है। गोद के बच्चे को स्त्रियाँ जबरजस्ती अधिक दूध पिलाती हैं। अधिक सयाने बच्चों को मार-मारकर बाँध-बाँधकर अधिक भोजन कराया जाता है। बालक का पेट भरा रहता है उसकी कुछ खाने की इच्छा नहीं होती पर माता उसे बिना कुछ खिलाये क्यों सोने दे। कभी-कभी तो बालक को न खाने के कारण मार तक खानी पड़ती है और जब मातायें एक छोटा-मोटा युद्ध करके, अपने बालकों को कुछ खिलाने-पिलाने में विजय प्रापत कर लेती है, तब उनके आनंद की सीमा नहीं रहती। वे मन में समझती हैं कि हमने अपने बालकों का बड़ा उपकार किया और यही उपकार जब अपकार रूप में प्रकट होता है, बालक को अपच या इसी प्रकार का कोई और रोग हो जाता है, तब लोग उनका सहज उपचार करने और उनको स्वाभाविक स्थिति में छोड़ देने के बदले उनके साथ एक नया उपकार आरंभ कर देते हैं। औषधि के रूप में तरह-तरह के विष उनके पेट में उतारे जाते हैं और मानो ''विषस्य विषमौषधम'' के सिद्धान्त पर उन्हें अच्छा करने का प्रयत्न किया जाता है।

अधिक भोजन से हानियाँ

अधिक भोजन से होने वाली हानियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका पूरा-पूरा वर्णन करना प्राय: असंभव है। इस सिद्धांत से प्राय: सभी बड़े-बड़े डॉक्टर सहमत हैं। अभी हाल में एक बड़े भारी डॉक्टर ने कहा था कि आजकल साधारणत: लोग भोजन के बहाने जितने पदार्थों का सत्यानाश करते हैं उसके तृतीयांश से ही उनका काम बड़े आनंद से चल सकता है। यही नहीं बल्कि पदार्थों के परिमाण में जितनी न्यूनता होगी, तरह-तरह के असंख्य रोगों में भी उतनी ही कमी हो जायेगी। जो लोग उक्त मत को बिल्कुल लचर समझते हों, उन्हें उचित है कि वे स्वयं दो-तीन सप्ताहों तक अपना भोजन घटाकर उसका शुभ परिणाम देख लें। बात यह है कि हम लोग अच्छी तरह जितना भोजन पचा सकते हैं उससे कहीं अधिक उदरस्थ कर लेते हैं। जो अंश पच जाता है, उसको छोड़कर बाकी का बिना पचा और अधपचा अंश जब आंतों के द्वारा नीचे उतरने लगता है, तब उसमें से बहुत से विकृत और दूषित अंश बाहर निकलते हैं और विष के रूप में परिवर्तित होकर हमारे रक्त में मिल जाते हैं। उस दूषित अंश के कारण हमारा रक्त बिगड़ जाता है और उससे शरीर में तरह-तरह के रोग उत्पन्न होते हैं। रक्त बिगड़ने के कारण शरीर में रोगों की उत्पत्ति तो बाद में होती है सबसे पहले विकारों का जमघट आँतों के नीचे पेडू आदि में ही होता है। वहां उनमें एक प्रकार का उबाल आरंभ होता है, जिसके कारण मनुष्य को या तो संग्रहिणी हो जाती है या कब्जियत। अब कब्जियत कितने रोगों की खान है, इसके यहाँ विशेष बतलाने की आवश्यकता नहीं है। पैखाने और पेशाब की शिकायत उत्पन्न होती है, सिर में दर्द आरंभ होता है और अंत में बुखार तक की नौबत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थों को हमारे शरीर के बाहर निकालने का प्रयत्न है। बुखार बिगड़कर जो भयंकर रूप धारण करता है, उससे प्राय: सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजन का बचा हुआ दूषित अंश बाहर निकलने के लिए हमारे सारे शरीर में चक्कर लगाया करता है और जिस अवयव में पहुंचता है उसमें एक न एक विकार

उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क आदि सभी अवयव इस दूषित अंश के शिकार बनते हैं और मनुष्य को गठिया, बवासीर, भगंदर, कोढ़, कण्ठमाला और तरह-तरह के बुखार अथवा इसी प्रकार के अन्य रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अंश कम हुए तो पहले इन रोगों के कृमि मात्र ही उत्पन्न होते हैं, जिनको आगे चलकर बढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सब कारणों से एक बड़े विद्वान ने बहुत जोर देकर कहा है कि अकाल में अन्न के अभाव के कारण उतने लोग नहीं करते जितने सुकाल में अधिक अन्न खाने के कारण, तरह-तरह के रोगों से मर जाते हैं।

अखिक भोजन करने के कारण होने वाली जो हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हें बहुत से साधारण बुद्धि के लोग भी जानते हैं। बड़े-बड़े डॉक्टरों के मत से अधिक भोजन के कारण मनुष्य के शरीर पर बहुत बोझा पड़ता है और उस पर भोजन के अनावश्यक अंशों को शरीर से बाहर निकालने के लिए बड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है अधिक भोजन से शरीर पर चार प्रकार के बुरे प्रभाव पड़ते हैं।

१. अधिक भोजन से रक्त अस्वच्छ और विषाक्त हो जाता है, जिससे बहुत से रोगों के उत्पन्न होने की संभावना हो जाती है।

२. शरीर में पहले से जो नया या पुराना रोग उपस्थित होता है, अधिक भोजन करने से उसका पोषण होता है और वह बढ़ जाता है।

३. हमारे शरीर के ज्ञान तंतुओं (Nervous System) पर अधिक भोजन करने के कारण बहुत जोर पड़ता है और उसकी सारी शक्ति दूषित अंश या विष को बाहर निकालने में लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य के शरीर का बल नहीं बढ़ता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

४. बिना पचे हुए भोजन का दूषित अंश बचा रहता है, उसमें से विष निकलकर पेट और भेजे में फैलता है, जिससे मनुष्य की आरोग्यता का बहुत जल्दी-जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकता से अधिक भोजन के साथ जितने अनर्थ और अपकार सम्मिलित हैं, उतने कदाचित ही और किसी दूसरे काम में सम्मिलित होंगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मन में बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब हमारी बल बुद्धि में सहायक होता है, उसमें का कोई अंश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बात का विचार किये कि हमें इस समय भोजन करने की आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचाने के लिए तैयार है या नहीं, दिन में कम से कम तीन बार खूब डटकर भोजन कर लेते हैं। इसी भ्रमपूर्ण विचार के कारण लोगों की यहाँ तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक बार का भोजन भी बीच में छोड़ दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा, हमारे सिर में दर्द होने लगेगा, यहां तक कि हम चल-फिर भी न सकेंगे। हम यदि दिन में पांच बार भोजन करने की आदत डालें तो कुछ दिनों में ही हर बार भोजन के निश्चित समय पर हमें एक प्रकार की भूख लग आया करेगी पर वह कदाचित सच्ची भूख नहीं होती, वह बनावटी या कृत्रिम होती है। हम लोग उसी बनावटी भूख के इतने गुलाम बन जाते हैं कि हममें उससे पीछा छुड़ाने का साहस ही नहीं रह जाता। आप एक बार भोजन न कीजिए उससे आपको जो थोड़ा-बहुत कष्ट होगा वह तो होगा ही पर यदि यह बात आपके दोस्तों को मालूम हो गई, तो उन्हें आपका चेहरा बिल्कुल उदास सूखा हुआ और पीला दिखाई पड़ने लगेगा। क्यों? इसीलिए कि वे स्वयं भूख के गुलाम होते हैं। आप अपनी इच्छा से न सही तो कम से कम उन दोस्तों की खातिर ही थोड़ा-बहुत भोजन अवश्य कर लेंगे पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा, उसका अनुमान सहज में नहीं हो सकता।

इस गुलामी से बचाने का केवल यही उपाय है कि आप अपने मन को दृढ़ करें। सबसे पहले आपको इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप बनावटी भूख की गुलामी में पड़े हुए हैं और उसके फन्दे से बच निकलना आपका कर्तव्य है। जब आप यह बात अच्छी तरह समझ लेंगे और भविष्य में कभी अनावश्यक भोजन न करने का दृढ़ संकल्प कर लेंगे, तब आपको बनावटी भूख की गुलामी से छूटने में अधिक समय न लगेगा। ज्यों-ज्यों आप इस

बनावटी भूख की गुलामी से निकलने का प्रयत्न करने लगेंगे, त्यों-त्यों आपको अधिक आनंद और सुख होने लगेगा और आप अपने मित्रों को भी अपना अनुगामी बनाने और कम भोजन करने के लाभ समझाने का प्रयत्न करने लगेंगे।

आपने कुछ ऐसे लोग भी देखे होंगे जो प्राय: इस बात की शिकायत किया करते हैं कि हमें तरह-तरह के बढ़िया भोजन में भी कोई स्वाद या आनंद नहीं आता अथवा आजकल भोजन में हमारी रुचि नहीं होती। ऐसे लोगों की बातों का वास्तविक तात्पर्य यही होता है कि भोजन का वास्तविक आनंद लेने में वे नितांत असमर्थ हो गये हैं। जिस मनुष्य का स्वास्थ्य सब प्रकार से अच्छा होता है वह जो कुछ खाता है सब रुचि से खाता है। उसे अन्तिम कौर भी उतना ही स्वादिष्ट लगता है जितना की पहला कौर। सब तरह से निरोग आदमी की यही अच्छी पहचान है। तरह-तरह की मसालेदार चटनियों और अचारों की आवश्यकता उन्हीं लोगों को पड़ती है जिनकी पाचनशक्ति किसी प्रकार नष्ट हो जाती है। अच्छी पाचनशक्ति वाले मनुष्य को वास्तविक भूख के समय बहुत ही साधारण भोजन का भी एक-एक कौर अमृत के समान स्वादिष्ट और मीठा जान पड़ता है और लोग उसे इस प्रकार खाते हैं, मानों वे बड़ी लाचारी या संकट में पड़े हों। ऐसी अस्वस्थता में जबरदस्ती ठूँसकर भोजन करना ही अच्छा है या उसे छोड़ देना, यह बात विचारवान पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

रोग में भोजन

मनुष्य के शरीर में जितने रोग हैं, उनमें बहुत अधिक संख्या ऐसे रोगों की है जिनका मूल कारण भोजन संबंधी दोष ही होता है पर विलक्षणता तो यह है कि उन रोगों में भी रोगी को पूर्ववत भोजन देकर उसके रोग की वृद्धि की जाती है। व्याधि का मूल कारण और बढ़ाया जाता है। रोग की सहायता इसी सीमा तक परिमित नहीं रहती बल्कि आगे चलकर और नये साधनों से भी होती है। रोगी को औषधियों के नाम से तरह-तरह के सूफियाने विष खिलाये जाते हैं जो बहुधा रोगों को दबा तो देते हैं पर उसके मूल कारण को कदापि नष्ट नहीं कर सकते। बहुत से अवसरों पर तो यह भी देखा गया है कि उनसे और नये-नये रोगों की सृष्टि होती है। संसार में दिन पर दिन पुराने रोगों की वृद्धि और नये रोगों की उत्पत्ति में जितनी सहायता अधिक भोजन और औषधियों से मिलती है उतनी और किसी दूसरी बात से नहीं मिलती।

जब कोई मनुष्य रोगी होता है, उसकी रुचि भोजन की ओर नहीं होती और उसका जीभ का स्वाद बिगड़ जाता है, तब उसके मित्र, संबंधी और चिकित्सक आदि उससे कहते हैं कि यदि तुम कुछ भी न खाओ तो तुम्हारा शरीर क्यों कर चलेगा, तुम्हारे शरीर में बल कहाँ से आवेगा, बिना किसी आधार के तुम जीवित क्यों कर बचोगे आदि। प्राय: ऐसे अवसरों पर लोग रोगी को जबरदस्ती कुछ न कुछ खिला दिया करते हैं पर वे लोग यह समझने का कष्ट नहीं उठाते कि मुँह और जीभ का स्वाद बिगड़ जाने और भोजन करने की इच्छा न होने का वास्तविक अभिप्राय क्या है ? उसका वास्तविक अभिप्राय यही है कि रोगी का शरीर भोजन के बोझ से बचना और कुछ सुस्ताना चाहता है। उसके संबंधी वैद्यों और डॉक्टरों से उसकी भूख बढ़ाने का उपाय कराते हैं और चिकित्सक लोग उसे जबरदस्ती भोजन देते हैं। कभी-कभी तो रोगी के शरीर में भोजन पहुंचाने के लिए यंत्रों तक की सहायता ला जाती है। बहुत से वैद्यों, हकीमों और डॉक्टरों की तो यहां तक सम्मति होती है कि यदि रोगी कुछ भोजन न करेगा तो पाचनक्रिया करने वाले रस उसकी उदरस्थ अंतडियों तक को पचा डालेंगे।

उनका सिद्धान्त है कि जब मनुष्य को भोजन नहीं मिलता तब उसका पोषण उसके शरीर के भीतरी मांस से होने लगता है और इस प्रकार का पोषण उसके लिए बिल्कुल ही अस्वाभाविक और अत्यंत हानिकारक होता है। मांस के बाद पचने के लिए चरबी का नंबर आता है और तदुपरान्त फेफड़ों और हृदय तक की नौबत आ पहुंचती है मानो हमारा पेट कोई शेर या राक्षस है। कुछ डॉक्टरों का यह भी कहना है कि मनुष्य के लिए पैखाना होना अत्यंत आवश्यक है। यदि मनुष्य को पैखाना न हो तो बहुत से दूषित पदार्थ उसके शरीर के अंदर ही रह जायेंगे और बड़ा उपद्रव तथा अनिष्ट करेंगे। पैखाना बिना कुछ भोजन किये होता नहीं और इसलिए प्रत्येक मनुष्य को नित्य भोजन मिलना बहुत आवश्यक है। एक दूसरे डॉक्टर ने तो प्रत्येक सशक्त मनुष्य के लिए चौबीस घंटों में चार-पाँच बार करके कोई दो सेर भोजन करने की आज्ञा दी है और कहा है कि यदि मनुष्य को इससे कम भोजन मिलेगा तो उसकी अँतडियों में एक प्रकार के कीड़े पड जायेंगे और बहुत शीघ्र मर जायेगा।

वास्तव में इन सब बातों का कोई विशेष अर्थ नहीं है। रोगियों के संबंध में ये सब सिद्धान्त केवल कल्पित और माने हुए हैं और प्रत्यक्ष अनुभव करने पर जो प्रमाण मिले हैं वे सब इनके विरुद्ध हैं। अमेरिका और यूरोप में बहुत से बड़े-बड़े डॉक्टरों ने सैकड़ों और हजारों रोगियों को डेढ़-डेढ़ और दो-दो महीनों तक बिना किसी प्रकार के भोजन के रखकर अंत में उनके रोगों का समूल नाश कर दिया है। यही नहीं बल्कि उपवास काल के बीत जाने के उपरांत बहुत ही थोड़े समय में वे इतने स्वस्थ और सबल हो गये कि स्वयं उन डॉक्टरों को उन रोगियों की दशा देखकर आश्चर्य हुआ है। आप पूछ सकते हैं कि जब मनुष्य दो-दो महीनों तक बिना भोजन के रह सकता है, तब एक-दो सप्ताह में ही अकाल आदि के समय हजारों आदमी क्यों कर जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि उपवास करने और भूखों करने में बड़ा भेद है। वास्तव में उपवास-काल में मनुष्य का पोषण शरीर के निकम्मे और व्यर्थ के बढ़े हुए पदार्थों के द्वारा होता है। शरीर के मांसल भागों की बारी बढ़े हुए पदार्थों के समाप्त हो जाने के कई सप्ताह बाद आती है। उस बीच में यदि मनुष्य को भोजन न मिले तो वह अवश्य

मर जाएगा। जिस समय मनुष्य के शरीर को वास्तव में किसी प्रकार के भोजन की आवश्यकता हो अथवा उसे कुछ विशेष तत्त्व दरकार हों उस समय उसे भोजन आदि अवश्य मिलना चाहिए। मनुष्य के शरीर को जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है यदि उसे वे तत्त्व न मिल कर दूसरे तत्त्व मिलें तो भी वह अवश्य मर जायेगा क्योंकि उसकी आवश्यकतायें दूसरे तत्त्वों से पूरी नहीं हो सकेंगी। आवश्यक तत्त्वों से भिन्न चाहे जितने पदार्थ मनुष्य को मिलें पर उसका काम उनसे न चलेगा और वह अवश्य मर जायेगा। मनुष्य का भूखों मरना उसी समय कहा जा सकता है जबकि उसे वास्तविक भूख लगे और उसे भोजन न मिले। भूखों मरने वालों की दूसरी सबसे अच्छी पहचान यह है कि मनुष्य का पिंजर मात्र बच जाता है। यदि कोई रोगी बिना ठठरी की अवस्था तक पहुंचे ही बीच में मर जाये तो उसकी मृत्यु का कारण भोजन का अभाव नहीं बल्कि रोग का बढ़ना आदि होगा।

रोग और चिकित्सा

यह तो हुई भोजन की बात, अब चिकित्सा को लीजिए। आजकल की चिकित्सा प्रणाली वास्तव में कैसी है, इसका अनुमान केवल दिन पर दिन बढ़ते हुए रोगों और रोगियों की बढ़ती हुई जनसंख्या से ही किया जा सकता है और इस संख्यावृद्धि का मुख्य कारण औषधियों की भरमार है। वैद्यराज अपने रोगी को दिनभर में तीन तरह की गोलियाँ खिला देते हैं, दो-दो, तीन-तीन अवलेह चटा देते हैं, एकाध चूर्ण दाल-तरकारियों में मिलाकर खाने के लिए देते हैं और एक चूर्ण इसलिए दे देते हैं कि रोगी उसे दिन में दस-बीस दफे फाँक लिया करे। हकीम साहब के काढ़े पकाने के लिए तो घर में एक जुदा चूल्हा ही आवश्यक होता है। गोलियाँ और तरह-तरह की चटनियाँ इससे अलग होंगी। डॉक्टर लोग तो दो-दो घंटे पर कई मिक्श्चरों के मारे रोगी को और भी परेशान कर देते हैं। ये सब औषधियाँ रोगी के शरीर में जाकर कुछ समय के लिए रोग को शांत तो कर देती हैं पर उसका समूल नाश करने में नितांत असमर्थ होती हैं। आज जो रोग आपको हुआ है वह दस पाँच दिन में औषधियों या अन्य कारणों से दब तो अवश्य जायगा पर साल-छह महीने में एक नये रोग के साथ वह फिर उमड़ आवेगा। अब आपको एक के बदले दो रोगों की चिकित्सा करनी पड़ेगी। यदि कोठरी में कूडा-करकट जमा हो जाने के कारण बहुत से मच्छड़ और कीड़े-मकोड़े पैदा हो जायें, तो हमें केवल उन मच्छड़ों और कीड़ों को भगाकर ही संतुष्ट रहना चाहिए। रोगों की दशा भी बहुत कुछ इसी प्रकार की है। शरीर में पहले तो बहुत सा दूषित पदार्थ एकत्र जो जाता है और फिर उससे तरह-तरह के ऐसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जो अनेक प्रकार के रोगों का रूप धारण कर लेते हैं। औषधियाँ बड़ी कठिनाई से इन तत्त्वों का नाश करने में तो समर्थ हो जाती हैं पर शरीर में एकत्र हुए दूषित अंश की प्रकारान्तर से वृद्धि ही करती हैं। सभी औषधियों में लाभदायक अंश बहुत कम और हानिकारक अंश बहुत अधिक होता है। लाभकारक अंश तो ज्यों-त्यों रोग से युद्ध करके उसका शमन करता है पर हानिकारक अंश शरीर में रहकर और नये-नये रोगों की वृद्धि में सहायता

देता है। यह बता नहीं है कि आजकल के अच्छे-अच्छे चिकित्सक इस बात को न जानते हों। अब धीरे-धीरे लोग रोग के वास्तविक कारण और हजारों तरह की औषधियों की निरर्थकता समझने लगे हैं।

अब सबसे पहला प्रश्न यह है कि वास्तव में रोग क्या है ? यदि आजकल के चिकित्सकों से यह प्रश्न किया जाये तो वे स्पष्टत: यह बात स्वीकार कर लेंगे कि रोगों के वास्तविक कारण आदि के विषय में हम लोग नितांत अनभिज्ञ हैं। उनका उत्तर पाकर हमें यह मानना पड़ेगा कि रोगों की वास्तविकता अभी तक घोर अंधकार में है और फलत: उनके दूर करने का कोई अच्छा साधन मिलना भी असंभव है। यदि पाठकों को हमारे इस कथन पर विश्वास न हो तो वे किसी बहुत अच्छे डॉक्टर से उक्त प्रश्न कर सकते हैं। यदि आप कई अच्छे-अच्छे डॉक्टरों से यह प्रश्न करें तो आप पर हमारे कथन की सत्यता और भी भली-भांति विदित हो जाएगी। कोई डॉक्टर अच्छी तरह से इस विषय में आपका समाधान नहीं कर सकता कि रोग क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, क्यों कुछ लोग सदा रोगी और कुछ निरोग बने रहते हैं, क्यों एक रोग के बाद तुरंत ही उससे बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का एक दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है, औषधियाँ शरीर में किस प्रकार और कैसा काम करती हैं, पौष्टिक औषधियाँ शरीर में किस प्रकार और कैसा काम करती हैं और पौष्टिक औषधियों का हमारे शरीर संगठन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि अच्छे-अच्छे डॉक्टर इन विषयों में स्वयं ही कुछ नहीं जानते, वे आपको प्रश्नों का उत्तर क्या देंगे ?

आजकल डॉक्टरों के निदान की बड़ी तारीफ सुनी जाती है पर क्या कोई डॉक्टर किसी रोग को पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है ? केवल निदान से ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाये पर जब उसे रोग का मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उसे दूर किस प्रकार कर सकेगा ? न्यूयार्क के एक बहुत बड़े डॉक्टरी कॉलेज के अध्यापक डॉ. आस्टिन फ्लिट एम.डी., एल.एल.डी. ने अपने एक ग्रंथ में यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार कर ली है कि

रोग और आरोग्यता की व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टर का मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदि के संबंध में हम लोगों का कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कम से कम मेरा यह विश्वास है कि हम लोगों को इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीर पर औषधियों का क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बड़े-बड़े डॉक्टरों के कथनों से यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकल का चिकित्सक वर्ग रोगों के वास्तविक स्वरूप और कारणों आदि से एकदम अनभिज्ञ है। नये डॉक्टर जो अभी हाल में कॉलेज से निकले हों और जिन्हें किसी प्रकार का अनुभव न हो, भले ही इस बात का गर्व करें कि हम रोगों के विषय में सब बातें जानते हैं और उन्हें तुरंत दूर कर सकते हैं पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बात कभी न कहेगा। एक बड़े भारी प्रोफेसर का मत है कि ज्यों-ज्यों डॉक्टर का अनुभव बढ़ता जायेगा, त्यों-त्यों वह औषधियों की निरर्थकता और प्रकृति की प्रधानता समझता जायेगा। डॉक्टर लोग जितने ही अधिक रोगों और रोगियों को देखते हैं, औषधियों के गुणों पर से उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकल का चिकित्सा विज्ञान जब रोग की वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगों के विषय में हम स्वयं कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि आजकल की चिकित्सा प्रणाली बिल्कुल अटकल पच्चू है और डॉक्टर लोग अपने रोगियों पर औषधियों की केवल परीक्षा ही करते हैं। रोगों आदि के संबंध में आजकल जितने नये अविष्कार होते हैं वे शुभ और उन्नति के लक्षण माने जाते हैं पर वे ही अविष्कार डॉक्टरों को और भी अधिक भ्रम में डालते हैं- उन्हें ठीक मार्ग से और भी दूर ले जाते हैं।

समस्त संसार के सब प्रकार के चिकित्सक दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक भाग में तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियों पर चिकित्सा करने वाले

डॉक्टर, मिस्मेरिज्म या बिजली की सहायता से चिकित्सा करने वाले चिकित्सक, यूनानी और मिस्नानी हकीम, वैद्य तथा सब प्रकार के दूसरे चिकित्सक आ जाते हैं और दूसरे भाग में हम उन चिकित्सकों को रखते हैं जिनके सिद्धान्त उक्त सब प्रकार के चिकित्सकों से एकदम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायों से ही रोगों की चिकित्सा करते हैं। रोगों की उत्पत्ति और चिकित्सा आदि के संबंध में इन दोनों श्रेणियों के चिकित्सकों के सिद्धान्त एक-दूसरे से बहुत ही भिन्न हैं। पहले वर्ग के चिकित्सकों का तो विश्वास है कि रोग हमारे बड़े भारी शत्रु हैं। जो हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर अधिकार करके हमारी शक्तियों से युद्ध करते हैं। इन अदृश्य शत्रुओं के लिए हमारी औषधियाँ, गोलियों और गोलों का काम करती हैं पर दूसरे वर्ग का कहना है कि सब प्रकार के रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारने में मित्रभाव से सहायक होते हैं। जब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब हमारे अवयव उसकी सूचना देने और उसे सुधारने के लिए उन लक्षणों को उत्पन्न करते हैं, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीर का संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होने वाले दोषों को स्वयं ही दूर करता रहता है। जब हमारे शरीर की स्वाभाविक स्थिति में किसी प्रकार की अव्यवस्था होती है, तब उसकी सूचना हमें रोग के रूप में मिलती है। अच्छे चिकित्सक का यही कर्तव्य है कि वह शरीर को उसकी स्वाभाविक स्थिति में ले जावे। शरीर के स्वाभाविक स्थिति में आते ही रोग आपसे-आप नष्ट हो जायेगा और रोगी चंगा हो जायेगा। दोनों वर्गों की चिकित्सा प्रणालियों में अंतर यह है कि एक वर्ग तो रोगों के नाश के लिए परिश्रम करता है और दूसरा वर्ग रोगी को अच्छा करने के लिए। एक ही रोग के दूर करने के लिए कुछ विशिष्ट औषधियाँ दी जाती हैं, इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि रोगी पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा पर प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त यह है कि रोग को छोड़कर उसके कारण का नाश किया जाय, जिससे रोगी अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय। औषधियों से रोगों को दबाने, उनका मुकाबला करने और उन्हें मार भगाने का प्रयत्न किया जाता है पर प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारने के कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दबाना या

नष्ट करना न चाहिए बल्कि उनके मार्ग में सुविधा उत्पन्न करके स्वस्थ और निरोग हो जाना चाहिए। यह उद्देश्य बिना किसी प्रकार की औषधियों के ही बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक बड़े डॉक्टर का मत है कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारने वाले साधन हमारे शरीर के बाहर किसी डिबिया या बोतल में बंद है। वह साधन, वह शक्ति तो स्वयं हमारे शरीर के अंदर है। सब लोग नित्य देखते हैं कि जख्म आपसे आप भरते हैं पर तो भी वे प्रकृति के इस गुण को नहीं समझते। * मनुष्य को चाहे किसी प्रकार का रोग हो, उसे किसी प्रकार की औषधि की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उससे रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी बात की है कि प्रकृति हमें जिस स्थिति तक पहुंचाना चाहती हो, हम स्वयं उस स्थिति तक पहुँच जाएँ। हमें चंगा करने का काम हमारी जीवन शक्ति स्वयं कर लेगी।

गिरने-पड़ने अथवा इसी प्रकार के और कारणों से जो चोटें आदि लगती हैं, उनको छोड़कर रोगों के दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई विषाक्त या गंदा पदार्थ बाहर से किसी प्रकार हमारे शरीर में पहुंच जाय या दूसरे यह कि वह स्वयं हमारे शरीर में पड़े हुए दूषित या निरर्थक पदार्थों के कारण उत्पन्न हो। दोनों दशाओं में उनके कारण हमारे शरीर के कामों में रुकावट पड़ती है।

रोग क्या है ? केवल उन रुकावटों को दूर करने और उनके कारण होने वाली हानि को पूरा करने के साधन या प्रयत्न हैं। रोग केवल शरीर के दोष दूर करने और उसे शुद्ध बनाने की एक क्रिया है। हमारी शरीरिक शक्ति स्वयं उन रुकावटों को दूर करने और अपने कामों में सुविधा उत्पन्न करने का प्रयत्न करती

---

* पहले बड़े-बड़े जख्मों को चंगा करने में तरह-तरह की औषधियों से सहायता ली जाती थी पर जब औषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक सिद्ध हुईं तब डॉक्टरों को लाचार होकर ड्राय ड्रेसिंग की शरण लेनी पड़ी। आजकल अच्छे डॉक्टर जख्मों को केवल धोकर बाँध देते हैं और इस क्रिया से जख्म बहुत जल्दी भर जाते हैं।

है। क्या इस प्रयत्न को जो सब प्रकार से हमारे लिए हितकारी हैं, जो हमारे जीवन को बनाये रखने के लिए होता है, जो हमें शरीर के भीतरी शत्रुओं से बचाता है, उसे तरह-तरह के जहरीले तेजाबों, शराब मिली हुई औषधियों, जुलाबों और बफारों आदि से रोकने या दबाने आदि की आवश्यकता है ?

जो बात मनुष्य जाति की समझ में सैकड़ों पीढ़ियों से दृढ़तापूर्वक जमी हुई है, वह सहज में या तुरंत ही दूर नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरों पर लोगों में बहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है। जिस प्रकार संगीत, काव्य या किसी और ललित-कला का पूरा-पूरा आनंद सब लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषय पर पक्षपात छोड़कर विचार करने और सत्य का पक्ष ग्रहण करने के लिए भी सब लोग तैयार नहीं हो सकते। बहुधा बातों की सत्यता का विश्वास क्रमशः ही होता है, एकदम से नहीं हो सकता। साथ ही इस प्रकार से गूढ़ विषय केवल समझाने से ही मन में नहीं बैठ सकते, मनुष्य को उनके अनुकूल आचरण करते-करते जब उसका अच्छी तरह अभ्यास पड़ जाता है, तभी वह उसकी उपयोगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए विचारवान पाठकों को इस विषय पर पहले तो अच्छी तरह मनन करना चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभव करना चाहिए। यदि पाठक पक्षपात छोड़कर इस स्थल पर बतलाई हुई बातों का विचार करेंगे, तो हमें आशा है कि उनकी उपयोगिता अवश्य ही उनकी समझ में आ जायेगी।

चिकित्सा के दोष

यह बात पहले ही बतलाई जा चुकी है कि अनेक कारणों से हमारे शरीर में जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषों को दूर करने के लिए हमारी शारीरिक शक्तियाँ स्वयं प्रयत्न करने लगती हैं और उसी प्रयत्न के चिह्नों को हम रोग कहते हैं। दोषों को दूर करने का प्रयत्न शरीर के भीतर अपने आप होता रहता है। हमें ऊपर उसके लक्षण मात्र दिखाई देते हैं। एक विद्वान का मत है कि रोग ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रखता और हमारे प्राणों की रक्षा करता है। जो विष हमारे शरीर में रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषों को बाहर निकालने की क्रिया का नाम रोग है। वालेस नामक एक बड़े प्रसिद्ध डॉक्टर ने हैजे के संबंध में एक बड़ी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में उसने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगों को संक्रामक समझकर उनकी संक्रामकता दूर करने के लिए आजकल औषधियों आदि के द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रयत्न रोगों को फैलाने और बहुत अधिक मनुष्यों के प्राण लेने के कारण होते है। जिन दिनों संक्रामकता दूर करने के लिए इतनी अधिक औषधियों का प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वयं रोग ही बहुत से मनुष्यों के प्राण बचा लेता था।

पुराने ढंग की जितनी चिकित्सा प्रणालियाँ है, उनमें से बहुधा ऐसी ही है जिनमें रोग के ऊपरी चिन्हों को ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करने के प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानों उस क्रिया में बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीर को शुद्ध करने के लिए होती है। जब हम औषधियों आदि से उस क्रिया को रोकने या दबाने आदि का प्रयत्न करते हैं, तब उस क्रिया में बड़ी बाधा पड़ती है जो हमारे शरीर के भीतर हमें निरोग करने के लिए आप ही आप प्राकृतिक कारणों से होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तव में हमारी उतनी ही हानि होती है। हमें दो एक दिन बुखार आवे और उसी औषधि की एक या दो मात्रा से ही हमारा बुखार रुक जाये तो हम यही समझते हैं कि उस औषधि से हमारा बड़ा उपकार हुआ पर वास्तव में उससे होता हमारा अपकार ही है।

हमारे शरीर का जो विष बाहर निकलना चाहता था वह उस औषधि के कारण रुक गया। आगे चलकर शरीर में वह जो अनर्थ न करे सो थोड़ा है। यदि वह औषधि तुरंत ही हमारा बुखार रोक न दे तो भी वह हमारा अपकार ही करेगी, उससे हमारा शरीर बहुधा बिगड़ेगा ही और हमें अच्छे होने में दो चार दिन के बदले महिनों लग जायेंगे।

रोग के जिन ऊपरी चिह्नों को हम रोग समझते हैं वास्तविक रोग उन चिह्नों का कारण मात्र होता है। यह बात स्वत: सिद्ध है कि हमारी सभी शारीरिक क्रियायें हमारे शरीर के दोषों को दूर करती हैं। ऐसी दशा में हमें उचित तो यह है कि हम यथासाध्य अपने शरीर को उस स्थिति में ले जायें जिसमें हमारी शारीरिक क्रियाओं को दोष दूर करने में पूरा-पूरा सुभीता हो। वास्तव में रोग की उत्पत्ति उन्हीं विषों से होता है जो हमारे शरीर में एकत्र हो जाते हैं। इन विषों के एकत्र हो जाने की सूचना हमें समय-समय पर सिरदर्द, कब्जियत अथवा इसी प्रकार की और शिकायतों से होती है। बहुधा लोग इसलिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं बल्कि वे इसलिए मरते हैं कि उनके शारीरिक संगठन को इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषों को निकाल बाहर करें। इस विषय में बहुत बड़े-बड़े डॉक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगों के वास्तविक कारणों पर किसी का ध्यान जाता ही नहीं, सब लोग उनके ऊपरी चिह्नों को नष्ट करने में लगे रहते हैं। मरण और रोग देखने में भले ही आकस्मिक जान पड़ें पर वे वास्तव में आकस्मिक नहीं होते। इन दोनों के मूल कारणों की बहुत बड़ी शृंखला की अंतिम कड़ी रोग या मृत्यु रूप में प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोग के वास्तव में नष्ट होने के लक्षण क्या हैं और उनके कारणों का निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्य को गठिया हो और उसे तरह-तरह के तेल मले जायें तो रोगी के अंग खुल जाते हैं। उस दशा में यह क्यों न माना जाये कि रोग का वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगी को उसकी स्वाभाविक स्थिति में छोड़ देने अथवा उसे खुली हवा में रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्सा के इसी प्रकार के

दूसरे उपायों से वह निरोग हो जाये तो इसी बात का क्या प्रमाण है कि रोग के वास्तविक कारण का ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि औषधियों से रोग के चिह्न मात्र दब जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्सा के विषय में भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे ऊपरी लक्षण मात्र दबे हैं और रोग का मूल कारण शरीर में बना हुआ है।

थोड़ा सा विचार करने से इस प्रश्न का उत्तर सहज में ही निकल आता है चाहे आप इस बात को स्वीकार न करें पर इससे संदेह नहीं कि औषधियाँ रोग के लक्षणों को ही दूर करने के अभिप्राय से दी जाती हैं पर व्यायाम और पथ्य आदि का चिह्नों पर कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होता। वे केवल हमारे शारीरिक संगठन के लिए उपकारक हैं। जब बिना उन लक्षणों को दूर करने के प्रयत्न के ही उनका नाश हो जाये तो यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जायेगी कि उन लक्षणों का शरीर में कोई मूल कारण ही नहीं रह गया पर औषधियों के विषय में यह बात नहीं कहीं जा सकती। जो रोग वास्तव में शरीर को शुद्ध करने की क्रिया है उसे हम औषधियों से कैसे चंगा कर सकते हैं पर उसे स्वाभाविक दशा में छोड़कर और व्यायाम तथा पथ्य आदि से उसके काम में सहायता देकर हम उस क्रिया को पूर्णता तक अवश्य पहुँचा सकते हैं। जुकाम या सरदी क्या है? छाती के ऊपर के भाग में एकत्र हुए विकार आदि को शरीर से बाहर निकाल देने की क्रिया मात्र है। यदि वह विकार अपने स्वाभाविक मार्ग नाक से न निकलता तो उसे किसी अस्वाभाविक मार्ग का अवलंबन करना पड़ता है। फोड़े फुन्सियाँ आदि भी कुछ इसी प्रकार की क्रियाएं हैं पर उनकी प्रणालियाँ कुछ भिन्न हैं। खाँसी हमारी प्रकृति का वह प्रयत्न है जो किसी बाहरी अनावश्यक पदार्थ को उस स्थान से बाहर निकलने के लिए होता है, जहाँ उस पदार्थ को रहने का कोई अधिकार नहीं है। दर्द भी इस प्रकार की क्रिया का चिह्न मात्र है, वह स्वयं कोई अलग रोग नहीं है। बुखार में हमारे शरीर के विकार आदि जलाये जाते हैं, पसीने वाली क्रिया से इसमें भेद केवल इतना ही है कि यह कुछ अधिक प्रखर रूप में होती है। तात्पर्य यह कि नैसर्गिक चिकित्सा संबंधी विशेष

बातों को जानने के पहले यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जिसे हम रोग कहते हैं वह हमें निरोग बनाने का प्रयत्न मात्र है।

स्वर्गीय सम्राट सप्तम एडवर्ड के चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवेस ने एक बार एक व्याख्यान में कहा था कि आजकल के चिकित्सक चिकित्सा करने में बड़ी भूल करते हैं अगर रोगी को ज्वर हो तो उसक ज्वर रोका जाता है, उसे यदि खाँसी हो तो उसकी खाँसी रोकी जाती है। इस प्रकार हम लोग उस रोग को नाश करने का प्रयत्न करते हैं, जो वास्तव में हमारे लिए ईश्वर की बहुत बड़ी देन है और जो सब प्रकार से हमारा उपकार और रक्षण करती है। यदि संसार में रोग न होते तो मानव-जाति अब से बहुत पहले नष्ट हो चुकी होती। आपने अपने कथन के समर्थन में कई ऐसे रोगों का जिक्र किया था जिसे रोगी और डॉक्टर बड़ा भारी शत्रु समझते हैं पर वास्तव में जिनसे मानव शरीर का बहुत कल्याण होता है।

रोगों की एकता

इन सब बातों पर विचार करने से एक ही परिणाम निकलता है। जब हम यह बात मान लेते हैं कि शरीर अपने भीतर के विकृत और दूषित पदार्थों को समय-समय पर बाहर निकालने का प्रयत्न किया करता है तब हमें यह भी मानना पड़ता है कि सैकड़ों हजारों तरह के रोगों का मूल कारण केवल एक ही होता है और जिन्हें हम रोग मानते हैं वे इसके भेद या रूपान्तर मात्र हैं। जर्मनी के डॉक्टर लुई कूने ने इस विषय पर एक बहुत बड़ी पुस्तक 'नवीन चिकित्सा विज्ञान' या 'जल चिकित्सा' नाम से यह पुस्तक हमारे यहाँ से हल ही प्रकाशित हुई है जिसमें यह बात भली भाँति सिद्ध की गई है कि रोगों का वास्तविक और मूल कारण केवल एक ही है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत बड़े-बड़े डॉक्टरों ने एकमत होकर यह बात स्वीकार की है। यदि उन लोगों के मत और कथन आदि संग्रह किये जाये तो एक स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है। उन मतों को उदृत न करके हम युक्ति द्वारा ही इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे।

हमारे शरीर का प्रत्येक अवयव एक दूसरे से संबद्ध है। रक्त का संचालन उन सब अंगो में समान रूप से होता है। इस प्रकार रक्त हमारे सारे शरीर को एक बनाये रहता है। चाहे ऊपर से देखने में यह बात न मालूम पड़े पर वास्तव में हमारा कोई अंग अकेला रोगी नहीं हो सकता। जब कोई एक अंग रोगी होगा तब उसका प्रभाव शेष सब अंगो पर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा। किसी एक अंग को रोगी और शेष सब अंगो को निरोग समझना बड़ी भारी भूल है। या तो वह रक्त के कारण या शारीरिक संगठन के कारण शेष अंगो को कुछ न कुछ दूषित अवश्य कर देगा। सर्वसाधारण केवल डॉक्टरों के जोर देने पर ही यह बात मानते हैं कि एक अंग के रोगी होने के कारण शेष अंग रोगी नहीं हो जाते।

इसी प्रकार बिना शेष सब अंगो की क्रियाओं पर प्रभाव डाले हुए हम किसी एक अंग के काम में दखल नहीं दे सकते। हमारा सारा शारीरिक संगठन भिन्न-भिन्न अवयवों पर और हमारा प्रत्येक अवयव हमारे शारीरिक संगठन पर इस प्रकार अवलंबित है कि उनका पारस्परिक संबंध किसी प्रकार छुड़ाया ही

नहीं जा सकता। इसीलिए बड़े-बड़े डॉक्टरों का मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्य के शरीर में ऊपरी या बाहरी पदार्थों के कारण कोई दोष उत्पन्न होता है, तब उस दोष को दूर करने के लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीर में वह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यकता से कम हो तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीर के लिए साधारण स्थिति में रहना असंभव हो जायेगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अंग में घर कर लेगा। चोट चपेट लगने, अंगो के विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज विष खाये जाने की अवस्थाओं को छोड़कर शेष सब अवस्थाओं में रोगों के जो चिह्न दिखाई पड़ते है उनका मुख्य कारण यही होता है। इसीलिए एकांगी रोगों को अच्छे-अच्छे डॉक्टर कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगों की अलग-अलग चिकित्सा करने की अपेक्षा सारे शरीर की दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है।

एकांगी रोगों की धारणा वास्तव में अज्ञान और अदूरदर्शिता आदि के कारण ही हुई है। हमारा सारा शारीरिक संगठन एक ही सूत्र में संबद्ध है और उसका इस प्रकार संबद्ध होना आवश्यक भी है। आजकल रोगों को एकांगी समझकर जो चिकित्सा की जाती है, वह शरीर के रोगी अंग में से या तो वास्तविक रोग के वास्तविक लक्षणों को दूसरे लक्षणों में परिवर्तित कर देती है या उन्हें वहीं और भीतरी अंगो में दबा देती है। चिकित्सकों को इस बात का ध्यान ही नहीं होता कि जिन्हें वे एकांगी रोग समझते हैं, वे वास्तव में सारे शरीर के किसी दोष के लक्षण मात्र हैं। रोगों को एकांगी समझकर उनकी चिकित्सा करना केवल निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक होता है। सबसे अच्छा और उचित उपाय उनके मूल की ही चिकित्सा करना है। यहाँ कदाचित यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि शरीर की सारी पीड़ाओं की जड़ रक्त का दोष है और यह दोष उसी चिकित्सा से दूर हो सकता है जिसका प्रभाव हमारे समस्त शारीरिक संगठन पर पड़े, जो हमारे रक्त और शरीर को उसकी साधारण और वास्तविक स्थिति में ला सके। जब शरीर की इस प्रकार की चिकित्सा हो

जायेगी, तब अवश्य ही हमारा प्रत्येक अंग स्वस्थ और निरोग हो जावेगा। अन्य सिद्धांतों की अपेक्षा यह सिद्धांत इतना युक्तिसंगत है कि प्रत्येक विचारशील पुरुष इसे तुरंत ही स्वीकार कर लेगा और आगे चलकर जब वह इसके अनुसार आचरण करके अनुभव करेगा, तब उस पर इस प्रणाली की उपयुक्तता और भी दृढ़ता से सिद्ध हो जाएगी।

अंग्रेजी आदि भाषाओं में बहुत सा ऐसा साहित्य है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि औषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक भी होती हैं पर स्थानाभाव के कारण हम उस विषय को यहां नहीं छेड़ते। न जाने औषधियों के कारण चंगे होने की धारणा लोगों में कहाँ से और कैसे उत्पन्न हो गई। बहुत संभव है कि इसकी उत्पत्ति अज्ञानकाल में ही हुई हो। आजकल जितने अनिष्टकारक विश्वास फैले हुए हैं इसका नंबर उन सबसे चढ़ा-बढ़ा है। औषधियों पर इस प्रकार के मिथ्या विश्वास का कारण यह है कि लोगों को प्रकृति और रोग के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं है। एक बार जब हमारे विचार इस संबंध में बदल जायेंगे, तब पुरानी प्रणाली की भयंकरता आपसे आप हमारी आँखों के सामने नाचने लगेगी। जब हम एक बार रोग का वास्तविक स्वरूप समझ लेंगे, जब हमें यह मालूम हो जायेगा कि वह स्वयं हमारे शरीर को निरोग करने की एक क्रिया है, तब हमें औषधियाँ आदि खाकर उसे दूर करने की आवश्यकता ही न रह जाएगी। केवल एक इसी सिद्धांत को अच्छी तरह समझ लेने के बाद लोग सदा के लिए औषधि चिकित्सा का त्याग और तिरस्कार कर देंगे।

औषधियों का प्रभाव

साधारणत: सब लोग यही समझते हैं कि औषधियों से रोग दूर हो जाते हैं। औषधियाँ इसी उद्देश्य से दी जाती हैं और इसी उद्देश्य से खाई जाती हैं। रोगों के संबंध में लोग यही समझते हैं कि औषधियों की सहायता से हम उन्हें दबा, निकाल या नष्ट कर सकते हैं। मनुष्य की यह मिथ्या धारणा बहुत प्राचीन काल में हुई थी और वही धारणा अब तक बराबर चली आती है पर विज्ञान तथा आरोग्यता-शास्त्र के आजकल के नये सिद्धांतों ने उस धारणा से होने वाले दोष ढूंढ निकाले हैं। आजकल के तर्क और युक्ति-वाद के सामने औषधियों की उपयोगिता नहीं ठहर सकती। इस स्थल पर हम यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि औषधियाँ वास्तव में क्या हैं, हमारे शरीर पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है और बड़े-बड़े डॉक्टर्स की उनके संबंध में क्या सम्मतियाँ हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि औषधियाँ विष हैं। या तो वे स्वयं विष होती हैं या हमारे शरीर के अंदर पहुँच जाने के कारण ही विष हो जाती हैं। इस संबंध में इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भोजन के अतिरिक्त शेष जितने पदार्थ हमारे शरीर के अंदर प्रवेश करते हैं, वे सब विष हैं। सुप्रसिद्ध डॉक्टर ट्राल का मत है कि सब प्रकार की औषधियाँ चाहे वे खनिज हों, पशुजन्य हों अथवा वनस्पजिन्य हों विष के सिवा और कुछ नहीं हैं। जिस वस्तु से हमारे शरीर का पोषण नहीं हो सकता, वह हमारे शरीर के लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। एक विद्वान का मत है कि संसार में क्रमश: जीव, वनस्पति, खनिज पदार्थ और तत्त्व हैं। इनमें से प्रत्येक का धर्म है कि वह अपने से उच्चतर का पोषण करें। खनिज पदार्थों से ही वनस्पति का पोषण हो सकता है, वनस्पति से खनिज पदार्थों का कोई उपकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वनस्पति ही जीव का पोषण कर सकती है, जीवों से वनस्पति का पोषण नहीं हो सकता। वनस्पति से भिन्न जितने जड़ पदार्थ हैं, वे कभी शरीर में जाकर उसका कोई उपकार नहीं कर सकते। इसीलिए खनिज अथवा अन्य जड़ पदार्थ हमारे शरीर में पहुँचते ही उसके लिए विष हो जाते हैं। इस सिद्धांत को आजकल के

विज्ञान ने बहुत अच्छी तरह मान लिया है और उसकी सत्यता में किसी प्रकार का विवाद नहीं रह गया है। औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वाले लोग तो रोग दूर करने की कामना से रोगी के शरीर में और भी अधिक विष प्रविष्ट करा देते हैं, वे रोग को क्या दूर करेंगे ? इस प्रकार औषधियों से रोगों की दशा और भी बुरी हो जाती है।

जो पदार्थ हमारे शरीर में पहुँचकर नियमित रूप से नहीं पच सकता और जिससे हमारे शरीर का पोषण नहीं हो सकता, वह पदार्थ अवश्य ही हमारे शरीर के लिए विजातीय और फलतः विष है। हमारे शरीर के लिए औषधियां या तो स्वयं विजातीय होती हैं या रूप-परिवर्तन के कारण विजातीय बन जाती हैं और इसीलिए उनसे हमारे शरीर को बहुत हानि पहुँचती है। जो पदार्थ हमारे शरीर के लिए इस प्रकार हानिकारक हैं, उन्हें जान-बूझकर और वह भी रोग दूर करने के उद्देश्य से, शरीर के भीतर पहुँचाना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ?

प्राकृतिक चिकित्सा में यह बात नहीं है। वह स्वयं हमारी शारीरिक शक्तियों में ऐसा परिवर्तन कर देती है कि वे सब प्रकार के विषों को अनायास ही नष्ट करके उनका शेष अंश बाहर निकाल देती है। किसी साधारण दर्द को लीजिये। डॉक्टरी चिकित्सा में उसे दूर करने का सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीर के किसी अंग में पीड़ा होती है, वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो दूर होनी चाहिए। उसे दूर करने के लिए पिचकारियों के द्वारा पीड़ित अंग में अफीम का सत्त्व या इसी प्रकार का और कोई विष पहुँचाया जाता है। अंग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है। डॉक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणों का पता लगाने और उन्हें दूर करने से मतलब ?

* स्थानाभाव से इस संबंध में यहाँ प्रमाण आदि नहीं दिये जा सकते हैं। जो लोग प्रमाण आदि जानना चाहें वे डॉ. ट्राल कृत 'Water Cure for the Millions' नामक ग्रंथ देख सकते है। – लेखक

क्या आप इसे वास्तव में चिकित्सा कह सकते हैं ? इसमें रोग के लक्षण मात्र को दबा देने और साथ ही शरीर के अंदर बहुत सा विष पहुँचा देने के अतिरिक्त और क्या होता है ? पीड़ा वास्तव में किसी शारीरिक दोष का चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारण के कार्य नहीं हो सकता। यदि शरीर के किसी अंग में पीड़ा उत्पन्न हो तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारण का पता चले, चाहे न चलें।

पीड़ा तो किसी दोष का चिह्न मात्र है। वह स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिह्न मात्र को दबा देने से उसके कारण का भी नाश हो सकता है ? कभी-कभी दर्द दूर करने के लिए अंगो में छाले डाले जाते हैं और कभी फसद खुलवाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर से चिल्लाकर हमें दोषों की सूचना दे और हम गला घोंटकर उसे चुप करायें। हमारा ज्ञान तंतु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीर में शत्रु आ पहुँचा है और दर्द की भाषा में वह हमसे सहायता मांगे और चिकित्सक तरह-तरह के विषों और अत्याचारों से उसका मुँह बंद करके कहे कि मैंने रोगी को चंगा कर दिया। यह रोगी के प्राण लेकर उसे निरोग करना नहीं तो और क्या है ? इस संबंध में डॉक्टर ट्राल ने अपने एक ग्रंथ में लिखा है- औषधियों से और नये रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए औषधि देना मानो एक और रोग उत्पन्न करना है। औषधियों से एक रोग तो अवश्य दब जाता है पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणों से कारण दूर हो सकता है ? क्या विष निकालने में विष सहायक हो सकता है ? क्या विकारों से विकार नष्ट हो सकते है ? कदापि नहीं। विषों से रोगों को अच्छा करने की आशा रखना भूतों से मुरादें मांगना है।

दस्त, कै या पसीना आदि लाने वाली दवाओं के विषय में अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि वे बहुत से विकृत पदार्थ शरीर से बाहर निकाल देती हैं पर उनका भी कुछ न कुछ दूषित अंश शरीर में रह ही जाता है। जुलाब लेने से लाभ के अतिरिक्त होने वाली हानियाँ भी कम नहीं है। उन हानियों का अनुभव उन लोगों को और भी अच्छी तरह हो जाता है जो साल में एक या दो बार

नियमित रूप से जुलाब लेने के अभ्यस्त हैं। दस्त, कै या पसीने आदि के मार्ग से जो विकार औषधियों की सहायता से शरीर के बाहर निकाला जाता है, वही विकार जल-चिकित्सा के कई उपायों से भी, शरीर को बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाये ही निकाला जा सकता है।

औषधियों के विषय में यह कहा जाता है कि वे शरीर के भीतर उसके भिन्न-भिन्न अंगो-मस्तक,पेट,आँत, गुरदे, जिगर, चमड़े आदि पर अपना प्रभाव डालती है और उनके द्वारा दस्त, पेशाब, पसीने या कै आदि के रूप में शरीर के विकृत पदार्थों को बाहर निकालती है पर डॉक्टर ट्राल का मत है कि औषधि का शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में हमारी प्रकृति स्वयं उन औषधियों को जितने सहज मार्ग से शरीर के बाहर निकाल सकती है, निकाल देती है और लोग उन औषधियों को उन अंगो पर प्रभाव डालने वाली बतलाते हैं। जिस औषधि को हमारी प्रकृति सहज में बाहर निकाल सकती है वह औषधि कै लाने वाली समझी जाती है और जिस औषधि को हमारी प्रकृति दस्तों के द्वारा बाहर निकालना उत्तम समझती है उसी को लोग दस्तावर समझ लते हैं। वास्तव में औषधियों का शरीर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

पौष्टिक औषधियाँ

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते, उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ाने के लिए तरह-तरह की पौष्टिक औषधियाँ खाते हैं। यूरोप, अमेरिका आदि में पौष्टिक औषधियों का मुख्य और सारभाग स्पिरिट या एल्कोहल होता है और इस देश में अफीम आदि। ताप्पर्य यह कि सभी स्थानों में किसी न किसी प्रकार का मादक विष ही शक्ति वृद्धि के लिए अनेक रूपों में खाया जाता है। अन्य औषधियों की अपेक्षा पौष्टिक औषधियाँ मनुष्य के शरीर को और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं। साधारणतः लोगों की यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्यों के प्रभाव का शरीर को बलपूर्वक उन विषों का विरोध करना पड़ता है। इसमें संदेह नहीं कि आपको बहुत से ऐसे दुबले-पतले आदमी मिलेंगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधि ने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवन से बराबर अच्छा हो रहा हूँ पर उन औषधियों का प्रभाव बिल्कुल उल्टा पड़ता है। पौष्टिक औषधि के सेवन के समय और उससे कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणों से वह कुछ अच्छा भी हो जाता है पर उसका अन्तिम परिणाम बहुत ही नाशक होता है। परीक्षा से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्यों से न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग पुट्ठे आदि। जब पौष्टिक पदार्थों का सेवन आरंभ किया जाता है, तब कुछ समय के लिए उसमें के मादक द्रव्य दुर्बल अंगों को फुर्तीला बना देते हैं और चित्त को थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं पर शरीर के अंगो का वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मादक द्रव्यों में एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता है। वह हमारे शरीर के बहुत से आवश्यक द्रव्यों का बुरी तरह नाश करते हैं और फलतः शरीर के लिए बहुत ही घातक होते हैं। इस प्रकार पौष्टिक औषधियों का प्रभाव हमारे शरीर पर दो प्रकार से पड़ता है। एक बार तो वे कुछ समय के लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त सदा शरीर में घुन या विष की तरह बनी रहती हैं। एक बड़े डॉक्टर ने ऐसी औषधियों की उपमा जलती हुई आग से

दी है। आग जिस समय जलती है उस समय उसका दृश्य तो बहुत भला मालूम होता है पर उसके जल-बुझने के बाद राख ही राख बच रहती है।

बहुत से लोगों का यह विश्वास है और अनेक डॉक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औषधियाँ पाचन-शक्ति को बढ़ाती हैं पर यह विश्वास भी बहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन-शक्ति का जितना अधिक नाश मादक द्रव्यों से होता है, उतना और दूसरे द्रव्यों से हो ही नहीं सकता। शराब पीने या अफीम आदि खाने वाले लोगों की पाचन शक्ति सदा बहुत मंद रहती है। बहुधा शराबी रात को शराब पीने के बाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या बहुत थोड़ा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही बहुत कम खाया करते हैं। भारत में बहुधा अपढ़ ब्राह्मण निमंत्रण आदि के समय खूब भांग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगों को भांग पीने पर बहुत भूख लगती है और सेरों अन्न खा लाते हैं पर वही भाँग पीने वाले सदा इस बात की शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भांग खिला तो बहुत कुछ देती है पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँ से ? मादक द्रव्यों से तो पाचन क्रिया में बाधा मात्र होती है। एक डॉक्टर ने तो एल्कोहल की केवल इसीलिए निन्दा की है कि उससे भूख तो बढ़ जाती है पर खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।

मादक द्रव्यों का एक यह भी गुण बतलाया जाता है कि उनसे शरीर में गरमाहट रहती है पर यह कथन नितांत निरर्थक है। डॉक्टर रिचर्डसन ने मद्यपान पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थान पर आपने लिखा है ... किसी पशु को कोई मादक द्रव्य खिलाकर उसके शरीर की परीक्षा कीजिये तो आपको मालूम हो जावेगा कि मादक द्रव्य ने उस पशु के सारे शरीर की उष्णता कम कर दी है। उससे शरीर के ऊपरी भाग में अवश्य थोड़ी बहुत गरमी जान पड़ेगी पर वास्तव में इस गर्मी का मुख्य कारण यह है कि उस समय सारा शरीर ठंडा होता जाता है। हृदय से कुछ गरम खून चलता है और शरीर की ऊपरी तरह के पास पहुँचकर उसे अपनी उष्णता त्यागने और शरीर को ठंडा करने के लिए विवश करता है। फल यह होता है कि शारीरिक शक्तियाँ मंद पड़ जाती है, अंग ढीले हो जाते हैं। जो हृदय आरंभ में जल्दी-जल्दी चलता था वह जकड़ जाता है, जो

मस्तिष्क पहले उत्तेजित हो उठा था वह अब बेकाम हो जाता है और मन दुर्बल हो जाता है।

तात्पर्य यह कि मादक द्रव्यों से हमारे शरीर का किसी प्रकार पोषण नहीं हो सकता और न वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य अपने शरीर के लिए उसका उपयोग कर सकता है। एक डॉक्टर का मत है– मादक द्रव्य हमारे शरीर में प्रवेश करके बहुत उपद्रव करते हैं और अंत में अपना बहुत कुछ दुष्परिणाम बाकी छोड़कर स्वयं ज्यों के त्यों हमारे शरीर से बाहर निकल जाते हैं। वे द्रव्य कभी पच नहीं सकते और न शरीर में पहुँचने पर उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता है।

मादक द्रव्यों से, जिन्हें हम पौष्टिक समझ कर खाते हैं हमारे शरीर का वास्तव में बहुत कुछ अपकार होता है। हम उन्हें जितना पौष्टिक समझते हैं,वे वास्तव में उतने ही घातक होते हैं। मादक द्रव्य हमारे शरीर के भीतर पहुँचकर उसकी शक्ति का नाश आरंभ करते हैं। यदि थोड़ी मात्रा में कोई मादक द्रव्य हमारे शरीर में पहुँच जाये तो उसका आक्रमण रोकने के लिए हमारे शरीर को कम परिश्रम करना पड़ता है, थोड़ी शक्ति लगानी पड़ती है और यदि उसकी मात्रा अधिक हो तो हमारे शरीर को भी उतना ही अधिक बल लगाना पड़ता है। उस घातक द्रव्य से अपना पिंड छुड़ाने के लिए हमारे शरीर को जितना अधिक बल लगाना पड़ता है उसी को हम भ्रम से बल वृद्धि समझ लेते हैं। मादक द्रव्यों में से कोई नई शक्ति निकलकर हमारी शक्ति में मिल नहीं जाती, उससे तो हमारी पुरानी शक्ति भी क्षीण होने लगती है क्योंकि उसे शरीर से बाहर निकालने में हमें अपनी बहुत सी शक्ति का वृथा उपयोग करना पड़ता है।

बहुत से डॉक्टर आदि मादक द्रव्यों के इन दोषों को जानते हुए भी कहते हैं कि बहुत दुर्बल लोगों के लिए पौष्टिक औषधियाँ हैं लाभदायक होती है,

* जो लोग इस संबंध में और अधिक बातें चाहते हो उन्हें डॉ.ट्राल की लिखी हुई The True Temperance Plat-from और The Alcoholic Controversy नामक पुस्तकें देखनी चाहिए।

उनसे दुर्बल का बल बढ़ता है पर वे लोग यह विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते कि जो पदार्थ सबल और निरोग पुरुषों को इतनी हानियाँ पहुँचाते हैं वे ही दुर्बलों का क्या उपकार कर सकेंगे। मादक द्रव्य तो विष है, उनका प्रभाव और कार्य सदा घातक ही होगा। सबलों और निरोगों की अपेक्षा दुर्बलों और रोगियों पर तो उनका प्रभाव और भी बुरा होगा।

औषधियों पर कुछ सम्मतियाँ

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढ़कर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधियों से मनुष्य के शरीर में केवल नये रोग ही पैदा होते हैं। उक्त बातें केवल मन गढ़ंत ही नहीं है बल्कि बड़े-बड़े डॉक्टर्स के अनुभव का सार हैं। इस स्थान पर औषधियों के संबंध में कुछ बड़े-बड़े डाक्टरों की सम्मतियाँ संक्षेप में दे देना अनुचित न होगा। नीचे जिन डॉक्टर्स की सम्मतियाँ दी गई हैं वे डॉक्टर्स बड़े-बड़े डॉक्टरी कालेजों के अध्यापक हैं और बहुत दिनों से औषधियों द्वारा ही चिकित्सा करते हैं। अत: औषधियों के दोष सिद्ध करने के लिए उनके कथन से बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

डॉ. स्टेफेन्स कहते हैं कि नया डॉक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोग के लिए बीस औषधियाँ हैं पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करने के बाद उसकी समझ में आता है कि प्रत्येक औषधि से बीस रोग उत्पन्न होते हैं। इस उन्नत काल में भी रोगियों की यातना पहले की ही तरह ही ज्यों की त्यों है। इसका कारण यही है कि डॉक्टर लोग प्रकृति का मनन न करके अपने पूर्वजों के लेखों का ही अध्ययन करते हैं। प्रो.पेन का मत है कि शरीर में औषधियाँ भी वही काम करती हैं जो काम स्वयं रोगों के कारण करते हैं। अधिक औषधियाँ भी रोग ही उत्पन्न करती हैं। एक स्थल पर आपने यह भी कहा कि एक नया रोग पैदा करके हम पहले वाले रोग को अच्छा करते हैं।

प्रो.क्लार्क कहते हैं कि चिकित्सकों ने रोगियों को लाभ पहुँचाने की धुन में उल्टे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारों ऐसे रोगियों के प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृति पर छोड़ दिये जाते तो अवश्य निरोग हो जाते। जिन्हें हम ओषध समझते हैं वे वास्तव में विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रा से रोगी का बल घटता है। प्रो. कॉक्स का मत है कि रोगी को जितनी ही कम औषधि दी जाए उसका उतना ही अधिक उपकार होता है। प्रो.स्मिथ ने कहा है- औषधियों से कभी रोगी अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वयं प्रकृति अच्छा करती है। डॉ. रश ने लिखा है-

चिकित्सकों ने रोगों की संख्या और साथ ही उनकी भयंकरता भी बढ़ाई है। डॉ.डेंलर कहते है कि एल्कोहल और दूसरी बहुत सी औषधियाँ केवल रोग ही उत्पन्न करती हैं। औषधियों से शारीरिक शक्ति का नाश होता है।

प्रो.पारकर ने कहा है– मैंने कई रोगो में औषधियों का प्रयोग नहीं किया जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। अब मुझे निश्चय हो गया कि औषधियों की अपेक्षा प्रकृति से मनुष्य के निरोग होने में बहुत सहायता मिलती है।

भारत में बहुत दिनों से माता या चेचक का भी कभी कोई इलाज नहीं किया जाता पर पाश्चात्य डॉक्टरों ने यह तत्त्व बहुत हाल में समझा है तो भी जब चेचक का बहुत अधिक प्रकोप होता है, तब बहुधा डॉक्टर कुछ चिकित्सा आरंभ कर देते हैं। अमेरिका के एक प्रांत के हेल्थ आफिसर डॉ. स्नो ने अपने देश के डॉक्टर्स को एक समाचार–पत्र द्वारा यह सूचना दी थी कि मैंने बिना किसी प्रकार की औषधि के उपयोग के ही माता के बड़े–बड़े रोगियों को बिल्कुल चंगा कर दिया है। डॉ.एक्स ने बहुत से रोगियों के मरने पर उनकी लाशों को चीरकर देखा तो उन्हें शरीर के भीतरी भागों में अनेक ऐसे रोग मिले जिन्हें औषधिजन्य के अतिरिक्त और कुछ कह ही नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने औषधियों का व्यवहार छोड़ दिया। जबसे वह प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे तब से उनका एक भी रोगी न मरा और परीक्षा के लिए उन्हें शव मिलना कठिन हो गया।

डॉ.ओलेरी का मत है कि रोगों का नाश करने में सबसे अधिक सहायता उन्हीं लोगों से मिली है जिन्होंने किसी डॉक्टरी कालेज की कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है। अनेक प्रकार की प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सायें ऐसे ही लोगों की निकाली हुई है, जो चिकित्सा शास्त्र से एकदम अनभिज्ञ थे। प्रो.एमर्सन का मत है कि चिकित्सा संबंधी बहुत सी काम की बातें हम लोगों को साधारण आदमियों से ही मिलती हैं। हम लोग तो खाली ग्रीक और लैटिन नाम रखना जानते हैं। डॉ. होम्स कहते हैं– औषधियाँ आदि तैयार करने के लिए द्रव्य निकालकर व्यर्थ खानें खाली की जाती हैं, वनस्पतियों का सत्यानाश किया

जाता है और साँपो के जहर निकाले जाते हैं। अगर सब औषधियाँ समुद्र में फेंक दी जातीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता। हाँ! मछलियों को उससे अवश्य बहुत हानि पहुँचेगी। डॉक्टर पैट्रिक लिखते हैं- अनुभव की कसौटी पर औषधियाँ पूरी नहीं उतरती हैं। दिन पर दिन उनकी निरर्थकता ही सिद्ध होती जाती है। जीवन के किसी प्राकृतिक विकार के विरुद्ध किसी औषधि का प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है? ज्यों-ज्यों डॉक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों-त्यों वे समझते जाते हैं कि औषधियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डॉक्टर्स के नाम दिये गये हैं, वे सब अमेरिका के हैं। अब अंग्रेजी साम्राज्य के कुछ डॉक्टरों की सम्मतियाँ सुनिए। डॉ.इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति-काल में भी औषधियों के गुण निश्चित और संतोषप्रद नहीं हैं। डॉक्टर अबरनकी कहते हैं कि चिकित्सकों की संख्या बढ़ने के साथ ही साथ रोगो की संख्या भी उसी मान में बढ़ती जाती है। सर माइकेल का मत है कि रोगों के मूल कारण तक औषधियाँ पहुँच ही नहीं सकती। डॉक्टर रॉबिन्सन का कथन है कि आज कल के व्यवहार में औषधि का गुण विज्ञान, प्रारब्ध और भ्रम के विलक्षण मिश्रण पर अवलम्बित है। डॉक्टर कपूर का सिद्धान्त है कि औषधियों पर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लंदन की रायल कॉलेज के फेलो डॉ.रैमजे कहते हैं कि आजकल की औषधि चिकित्सा बड़े-बड़े प्रोफेसरों के लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिए कि हमारी औषधियों से कितना कम लाभ होता है और रोगी की दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मैं निर्भय होकर कह सकता हूँ कि बिना चिकित्सा से रोगी की दशा अपेक्षाकृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर जेम्सन कहते हैं कि विज्ञान के नाम पर आजकल के चिकित्सा करने वाले प्रकृति और रोगों की वास्तविक चिकित्सा प्रणाली से एकदम अनभिज्ञ होते हैं। दस में से नौ औषधियाँ रोगियों के लिए बहुत ही हानिकारक होती हैं। डब्लिन मेडीकल जनरल में एक बार प्रकाशित हुआ था कि आजकल जिसे चिकित्सा विज्ञान कहते हैं, वह नाम का भी विज्ञान नहीं है। वह तो अटकलपच्चू सिद्धांतों,

भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और अस्थिर सम्मतियों का खजाना है। सर फोव्स का मत है कि रोग या चिकित्सा के संबंध में अभी तक कोई सिद्धान्त ठीक नहीं निकला। कुछ रोगी औषधियों की सहायता से अच्छे होते हैं, बहुत से रोगी औषधियाँ खाकर भी केवल आपसे आप ही अच्छे हो जाते हैं और बहुत अधिक रोगी बिना किसी प्रकार की औषधियों के ही अच्छे हो जाते हैं। डॉ.फ्रॉक को डॉक्टर्स के हाथ से इतने अधिक रोगियों को मरते हुए देखकर अंत में कहना पड़ा था कि सरकार या तो इन डॉक्टर्स को न रहने दे और उनकी नष्ट चिकित्सा प्राणली रोक दे और या लोगों के जीवन की रक्षा का कोई नया उपाय निकाले। डॉ.बोस्टाक, जिन्होंने औषधियों का इतिहास नामक एक बड़ा ग्रंथ लिखा है, कहते हैं- हम औषधियों का जितना अधिक प्रयोग करते हैं, हमारा ज्ञान या अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। औषधि की प्रत्येक मात्रा रोगी की संजीवनी शक्ति पर एक अंध प्रयोग और अनुभव मात्र है। डॉ.सर जानगुड, जिन्होंने प्रकृति और औषधि आदि के संबंध में कई अच्छे-अच्छे ग्रंथ लिखे हैं, कहते हैं- हमारी औषधियों का प्रभाव अत्यंत अनिश्चित है। युद्ध, महामारी और अकाल आदि के कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरें है, उन से कहीं अधिक औषधियों के प्रयोग से मरे हैं, प्रो.वाटर हाउस कहते हैं कि शिक्षित चिकित्सकों की अपेक्षा उन अशिक्षित चिकित्सकों पर मेरा कहीं अधिक विश्वास है जिनकी चिकित्सा केवल अनुभव पर निर्भर होती है। सभी देशों और समयों में उन लोगों ने समस्त विश्व विद्यालयों से कहीं अधिक बढ़कर काम किया है। डॉक्टर जानसन, जो चिकित्सा संबंधी एक प्रतिष्ठित पत्र के संपादक हैं, कहते हैं- अपने बहुत दिनों के अनुभव से मैं यह बात कह सकता हूँ कि यदि संसार में कोई चिकित्सक, जर्राह, अत्तार या दवा बेचने वाला न होता तो आजकल की अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो जाते और मृत्यु-संख्या भी बहुत घट जाती। पेरिस के डॉक्टर लेगोल कहते हैं- इस समय हम लोग बड़ी ही भूल कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिए।

एडिनवरा में प्रोफेसर जॉन कर्क नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने चालीस वर्ष तक चिकित्सा करने के उपरांत औषधियों की निरर्थकता समझी

और तब बिना औषधियों के चिकित्सा आरंभ की। आपका मत है कि डॉक्टरी कॉलेजो में विद्यार्थियों की बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियों का अध्ययन करने के लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिर से उनके योग्य बनने में कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है। सर कूपर का मत है कि औषधि विज्ञान की उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिन पर दिन बढ़ती हुई हत्या से हुई है। प्रो. माह का मत है कि समस्त विज्ञानों में औषधि विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है। एडिनवरा के मेडीकल कॉलेज के प्रो.ग्रेगरी ने कहा है कि चिकित्सा-शास्त्र में जिन बातों को सत्य माना जाता है उनमें से ९९ प्रतिशत मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिल्कुल भी भोंडे और भद्दे हैं। प्रो.कार्सन कहते हैं हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी औषधियों से अच्छे होते हैं या प्रकृति से। संभवतः उन्हें रोटी रूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं। सर रिचर्डसन ने कहा है कि औषधियों के व्यवहार से सभ्य लोगों की आयु बहुत ही कम हो गई है। डॉ.टाइटस का मत है कि संसार में तीन-चौथाई आदमी दवाओं के नुस्खों से मरते हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध शरीर-शास्त्रवेत्ता मैगेडिक कहते हैं कि औषधियों के विषय में संसार में किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोग को दूर करने में बहुत कुछ सहायता प्रकृति से ही मिलती है। डॉक्टर्स से बहुत ही थोड़ी सहायता मिलती है और वह भी उस दशा में जब वे किसी प्रकार की हानि न पहुँचायें। डॉक्टर्स ओसलर जो कई विश्वविद्यालयों में चिकित्सा शास्त्र के अध्यापक रह चुके हैं और जो औषधि शास्त्र के सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं, औषधि चिकित्सा की निंदा और बिना औषधि की चिकित्सा की प्रशंसा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमेरिकना में

* एक बार एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक उत्तरीय ध्रुव के आस-पास के प्रदेशों से लौटकर आया था। उसके एक मित्र ने उससे कहा- बड़े आश्चर्य की बात हैं कि आप कहते हैं कि उन प्रदेशों में एक भी चिकित्सक नहीं है और वहाँ बहुत से लोग सौ वर्ष की आयु तक पहुँच जाते हैं। वैज्ञानिक ने उत्तर दिया- यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन देशों में इतने चिकित्सकों के रहते हुए भी कुछ लोग ही सौ वर्ष की आयु तक पहुँच पाते है।

लिखते हैं कि औषधियों की निरर्थकता का सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में टाइफाइड ज्वर की चिकित्सा में बड़ी-बड़ी भयंकर और उग्र औषधियों का प्रयोग होता था। रोगी की फसद खोली जाती थी, उसके शरीर पर छाले डाले जाते थे और तरह-तरह के भीषण उपाय किए जाते थे पर आजकल के रोगियों को विशेष प्रकार के स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित ही कोई औषधि दी जाती है। इससे यही सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि औषधियों का उन रोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है। अन्त में आपने कहा है कि वही सबसे अच्छा चिकित्सक है, जो औषधियों को निरर्थक समझता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

इन पृष्ठों को पढ़ने के उपरान्त पाठकों के मन में स्वभावत: यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगों के शमन का सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौन-सा है ? आजकल अनेक प्रकार की चिकित्सा प्राणलियाँ प्रचलित हैं जिनमें औषधियों का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता। केवल ऊपरी उपचारों से रोगों को शान्त किया जाता है। ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से अभिहित हैं और जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, विद्युत-चिकित्सा आदि अनेक प्रकार की चिकित्सायें हैं। इनके अतिरिक्त मेस्मरिज्म के अनेक प्रकारों से भी रोगियों की चिकित्सा की जाती है। यद्यपि ये सभी चिकित्साएँ प्राकृतिक कहलाती हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह पता लग जाता है कि इनमें से अधिकांश में अनेक प्रकार की ऐसी क्रियाओं की आवश्यकता होती है जिन्हें कोई समझदार प्राकृतिक नहीं कह सकता। कुछ प्रणालियाँ अवश्य ऐसी हैं जो ठीक-ठीक अर्थ में प्राकृतिक कही जा सकती हैं और उपवास-चिकित्सा उनमें से सर्वश्रेष्ठ है। उपवास-चिकित्सा में न तो किसी प्रकार के ऊपरी उपचार की आवश्यकता होती है न किसी प्रकार के यंत्र-प्रयोग की। इसमें आवश्यकता केवल इस बात की होती है कि मनुष्य उस समय तक के लिए अपना भोजन छोड़ दे जब तक कि उसे वास्तविक और स्वाभाविक भूख न लगे। इसके अतिरिक्त उपवास-काल में मनुष्य की शक्ति बनायो रखने के लिए उसमें कुछ व्यायाम का भी विधान है।

अब इस प्रणाली से औषधि-चिकित्सा का मुकाबला कीजिए। दो ऐसे मनुष्यों को लीजिए जिनकी पाचन शक्ति नष्ट हो गई हो। उनमें से एक मनुष्य तरह-तरह की गोलियाँ खाकर, अवलेह चाटकर और दवाओं की बड़ी-बड़ी बोतलें खाली करके अपनी भूख बढ़ाता है और दूसरा मनुष्य केवल दो-चार दिनों तक उपवास करके और सबेरे-संध्या दो चार मील का चक्कर लगाकर अपनी भूख ठीक कर लेता है। अब आप ही सोचिये कि दोनों में से फायदे में कौन रहा ? दवाएँ खाकर अपने शरीर को भाड़े का टट्टू बना लेने वाला अथवा

उपवास और व्यायाम करने वाला ? बड़े-बड़े डॉक्टर्स ने परीक्षा और अनुभव करके यह सिद्धान्त निकाला है कि किसी रोग की औषध द्वारा चिकित्सा आरंभ करते ही रोगी को कई तरह की छोटी-मोटी शिकायत पैदा हो जाती हैं। किसी को कब्जियत आ घेरती है तो किसी के सिर में दर्द होने लगता है। किसी की नींद कम हो जाती है तो कोई दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति तो हमें सूचना देती है कि हम उसके स्वभाव के विरुद्ध काम करते हैं, उसके साथ निष्ठुरता का व्यवहार करते हैं। हम उसकी सूचनाओं पर ध्यान ही नहीं देते, जबरदस्ती उसका गला घोंटते चलते हैं। अन्त में प्रकृति भी लाचार होकर अस्वाभाविक स्थिति में पहुँच जाती है और उस दशा में शरीर ऐसा निकम्मा हो जाता है कि बिना औषधि की सहायता के चल ही नहीं सकता। जब कुछ समय में शरीर साधारण औषधियों का अभ्यस्त हो जाता है तब उसे अधिक तीव्र औषधियों की आवश्यकता होती है। यह क्रम बराबर बढ़ता चला चलता है और अंत में मनुष्य के प्राण लेकर ही छोड़ता है पर जो मनुष्य उपवास करता अथवा हल्की और जल्दी पचने वाली चीजें खाता, स्वच्छ वायु में रहता और खूब कसरत करता है, वह स्वयं आरोग्यता की किस स्थिति तक पहुँच सकता है इसका अनुभव प्रत्येक विचारवान मनुष्य को स्वयं करना चाहिए। व्यायाम से शरीर में नये बल की उत्पत्ति होती है, रग-पट्ठे मजूबत होते हैं, फेंफड़े जिगर, गुरदे आदि के काम अधिक उत्तमतापूर्वक होने लगते है और सारे शरीर में एक नई संजीवनी शक्ति आ जाती है। रोगी की पाचन शक्ति ठीक हो जाती है और उसे खूब खुलकर भूख लगती है। औषधियाँ किसी एक रोग को दूर करके भी अपने बहुत से बुरे प्रभाव और अंश छोड़ जाती हैं पर प्राकृतिक चिकित्सा की औषधियाँ-व्यायाम, शुद्ध वायु, हल्का और सुपाच्य भोजन आदि रोग को अच्छा करने के अतिरिक्त शरीर के और दूसरे बहुत से विकारों को भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणाली में रोग को बल-पूर्वक जहाँ का तहाँ दबाया नहीं जाता बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।

सुप्रसिद्ध डॉक्टर ई.एच.डेवी ने एक बार कहा था- किसी रोगी मनुष्य के पेट में भोजन न रहने दो इससे वह रोगी नहीं बल्कि रोग भूखों मर जाएगा और

यह बात वास्तव में है भी बहुत ठीक। उपवास- चिकित्सा के सिद्धान्त इतने सरल, उपयोगी और लाभदायक हैं कि शरीर शास्त्र वेत्ता मात्र उससे सहमत हैं। सभी देशों और प्रकारों के चिकित्सक किसी न किसी अवसर पर और किसी न किसी रूप में उनके अनुसार काम करते हैं। संसार के सभी चिकित्सा-ग्रंथों से उनका समर्थन होता है और यहाँ तक कि पशु-पक्षी आदि भी अपने आचरणों से उन सिद्धांतों की पुष्टि करते हुए देखे जाते हैं। उपवास के सिद्धांतों की उपयोगिता समझाने के लिए इससे बढ़कर और क्या चाहिए?

शरीर की क्रिया पर उपवास का जो परिणाम होता है, उसके संबंध में बहुत कुछ इस पुस्तक के आरंभ में ही कहा जा चुका है। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग बीच-बीच में अपने काम से स्वयं तो अवश्य छुट्टी ले लेते हैं पर अपने शरीर को कभी छुट्टी नहीं देते। हाथ, पैर या मस्तिष्क से होने वाले कामों को छोड़ देना ही वास्तव में शरीर को छुट्टी देना नहीं है क्योंकि उस समय शरीर की भीतरी मशीन को आराम करने का अवसर नहीं मिलता। हम अपने दिमाग के साथ भले ही कभी-कभी बहुत रियासत कर दिया करते हों पर अपने पेट के साथ हम कभी भी रियासत नहीं करते। पेट से सदा काम लेते रहना ही सब प्रकार के रोगों की जड़ है।

धर्म-ग्रंथ और उपवास

संसार में प्राय: जितने मुख्य मत, धर्म या सम्प्रदाय हैं, उन सबमें किसी न किसी प्रकार के उपवास व व्रत की आज्ञा दी गई है। पहले भारतीय धर्मों को ही लीजिए। हिन्दू धर्म शास्त्रों में भिन्न-भिन्न पुण्य तिथियों और पर्वों को छोड़कर प्रत्येक एकादशी, प्रदोष और रविवार आदि के लिए व्रत का विधान है। हिन्दूओं के समस्त व्रतों की संख्या ५५९ से ऊपर है। अधिकांश व्रतों में अन्न मात्र का स्पर्श न करने और बहुधा एक बार थोड़ा सा फलाहार करने की आज्ञा है। इन सब व्रतों के मूल में केवल एक ही सिद्धान्त है और वह सिद्धान्त पाचन-क्रिया को ठीक अवस्था में रखना अथवा लाना है। आजकल लोग व्रत तो करते हैं पर इस सिद्धान्त का गला इतनी बुरी तरह से घोंटते हैं कि उनके व्रत का फल व्रत न रखने से अधिक हानिकारक होता है। जिस व्रत में केवल एक बार और वह भी बहुत थोड़े मान में फल आदि ही खाने का विधान है, उस व्रत में लोग सिंघाड़े और कुटू के आटे की पूरियाँ तरह-तरह की पकौड़ियाँ, दस पाँच तरह की तरकारियाँ, दो तीन तरह के हलुए और कई तरह की मिठाईयाँ खा जाते हैं और ऊपर से जहाँ तक अधिक हो सकता है, दूध, रबड़ी और मलाई का भी सत्यानाश करते हैं। रोज से दुगुना भोजन केवल इसीलिए होता है कि उस दिन वे लोग व्रत रखते हैं- उपवास करते हैं। इसमें दोष लोगों का ही है। धर्मग्रंथों में आज्ञा केवल हित और कल्याण की दृष्टि से दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्म-ग्रंथों में निर्जल और चन्द्रायण आदि अनेक प्रकार के दूसरे व्रत भी हैं जिनमें किसी प्रकार के नियमोल्लंघन की भी संभावना नहीं होती। भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहाँ की स्त्रियाँ साधारणत: उन रोगों से मुक्त रहती हैं जिनके कारण मर्द परेशान रहते हैं। कब्जियत और अपचन आदि रोग स्त्रियों को बहुत कम होते हैं। जैनियों के धर्म ग्रंथों में केवल अनेक प्रकार के उपवासों का ही विधान नहीं है बल्कि बहुकाल व्यापी उपवासों का भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहों नहीं बल्कि महिनों तक चलते हैं और बहुत से अंशों में उन उपवासों से मिलते जुलते होते हैं जो आजकल के पाश्चिमात्य उपवास चिकित्सक अपने रोगियों को कराते हैं। मुसलमानों

को रमजान के महीने में तीस दिनों तक अपने धर्मग्रंथ की आज्ञानुसार बराबर रोजे रखने पड़ते हैं। रोजे के दिन वे बहुत सवेरे ब्रह्म मुर्हुत में भोजन कर लेते हैं और फिर दिनभर कुछ नहीं खाते। रोजा सूर्यास्त के बाद ही खुलता है। ईसाईयों के धर्म ग्रन्थों में भी उपवास की स्पष्ट आज्ञा है। वे उपवास के दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही खाते हैं और बहुधा कई-कई दिनों तक उपवास रखते हैं। तात्पर्य यह कि सभी प्रधान और प्राचीन धर्मों में उपवास का विधान है और उनके ग्रंथों के अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनों के लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

जो धर्म बहुत हाल के चले हुए हैं, उनमें अवश्य ही उपवास की आज्ञा नहीं है और इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है। बहुत प्राचीन काल में, जब कि मनुष्य पर सभ्यता का रंग नहीं चढ़ा था, वह केवल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसे प्रकृति के नियमों का बहुत कुछ सहज और स्वभाविक ज्ञान रहता था और वह यथासाध्य प्रकृति के नियमों का उल्लंघन न करता था। अनेक प्राचीन जातियों के विषय में अनुसंधान करने पर पता चला है कि वे आठ पहर में केवल एक बार और वह भी बहुत अल्प भोजन करती थीं। मनुष्य जाति में अधिक भोजन करने का रोग बहुत बाद में फैला है पर प्राचीन काल में प्राय: सभी देशों के लोग विशेषत: धर्मिष्ठ लोग बहुत थोड़ा भोजन करते थे और प्राय: लंबे चौड़े उपवास किया करते थे। किसी देश और किसी धर्म के साधु, संत और महात्मा को लीजिए, उसके संबंधी में यह बात अवश्य प्रसिद्ध होगी कि उसने इतने दिनों के और इतने उपवास किये थे। भारत के प्राचीन ऋषियों की तपस्या का उपवास एक प्रधान अंग था। बड़े-बड़े धर्माचार्य स्वयं बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तों को उसके लाभ बतलाते थे और स्वयं उसके आदर्श बनते थे पर आजकल जो लोग धार्मिक दृष्टि से उपवास करते हैं प्राय: सभी देशों में उन्हें धर्मान्ध बतलाया जाता है और उनकी हँसी उड़ाई जाती है। इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमों से एकदम अनभिज्ञ हो गये हैं। जो लोग अन्न को ही प्राण समझते हैं उन्हीं की आँखे खोलने के लिए उपवास के सिद्धांतों का फिर से प्रचार होने लगा है।

इतिहास और उपवास

किसी देश और काल के इतिहास में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो उपवास-सिद्धान्त के बड़े समर्थक और पोषक हों। भारतीय इतिहास तो ऐसे लोगों से भरा ही पड़ा है, अन्य देशों में भी ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है। अरब देश में एक बहुत बड़ा चिकित्सक हो गया है जो बिना किसी प्रकार के औषधि प्रयोग के चिकित्सा करता था और रात-रात भर रोगियों के बिस्तरों के पास केवल इसीलिए पहरा दिया करता था कि वे कुछ खा न लें। ईसाई पादरी और धर्माचार्य बहुधा नगरों से बाहर निकलकर जंगलों की ओर चले जाते थे और किसी प्रकार का आहार न करते थे। व्रत-भंग होने के भय से एक दाना भी मुँह में न डालते थे और डेढ़ दो महिने बाद भी उनमें इतनी शक्ति रहती थी कि वे उन जंगलों से पैदल चलकर अपने-अपने मठ तक पहुँच जाते थे। एक बार एक ईसाई महात्मा की एक मित्र स्त्री मर गई। वह महात्मा उसके वियोग से इतना दुखी हुआ कि उसने अपने जीवन का अन्त कर देना निश्चय किया। और किसी प्रकार की आत्महत्या को तो उसने उचित न समझा पर वह एक पहाड़ की चोटी पर चला गया और वहाँ पहुँचकर उसने अन्न-जल छोड़ दिया। उसे आशा थी कि इस प्रकार बिना अन्न-जल के रहने से प्राण अवश्य निकल जायेंगे पर उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई और वह बिना अन्न-जल के सत्तर दिनों तक जीता रहा। इतने दिनों में उसका दुःख भी कम हो गया और उसके मन में ज्ञान भी उपजा। इकहत्तरवें दिन से उसने एक-एक तोला भोजन करना आरंभ किया। इसके बाद उसका स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा बहुत सुधर गया। वह चौदह वर्षों तक जीवित रहा और उसने अनेक मठ आदि स्थापित किये। आजकल भी यह देखा गया है कि खानों में काम करने वाले कुली केवल पानी पीकर ही आठ दस दिनों तक रहते हैं और बिना अन्न के बराबर काम करते रहते हैं। बहुत से मल्लाहों ने बिना भोजन के गरम से गरम देशों में आठ-आठ और दस-दस दिन बिता दिये हैं।

पशु और उपवास

उपवास की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए हमें सबसे अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह-तरह के पशुओं, पक्षियों और दूसरे जीवों से मिल सकते हैं। मनुष्य की तरह इन जीवों को सभ्यता ने अपने पाश में नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्था में ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदि की बातें जाने दीजिए जिनके मालिक उन्हें जरासा बीमार समझकर ही किसी पशु-चिकित्सालय में भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्यों को छोड़कर बाकी प्रायः सभी जीव किसी भारी रोग से पीड़ित होने पर सबसे पहले भोजन का ही परित्याग करते हैं। सिंह को यदि किसी तरह से कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थान में जाकर बिना जल और भोजन के कई-कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। केंचुली बदलने के समय साँप कई सप्ताहों तक बिना आहार के ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करने के कारण उसकी वह क्रिया थोड़े कष्ट में और जल्दी हो जाती है। बहुत से पशु ऐसे होते हैं जिनका खून गरम होता है। ऐसे पशु बहुधा जाड़े में एकान्त में बिना आहार के पड़े रहते हैं। जाड़े भर निराहार रहने पर भी उनकी शक्ति बहुत ही कम घटती है और जाड़े के अंत में वे बड़े आनंद से विचरने लगते हैं। रेंगनेवाले जीवों को यदि कुछ अधिक समय तक आहार न मिले तो उनकी शक्ति किसी प्रकार क्षीण नहीं होती। रीछों की शरीर-रचना मनुष्य के शरीर से मिलती जुलती होती है। बर्फीले देशों में जाड़े के दिनों में रीछ प्रायः चार महीने अपनी माँद में निराहार पड़े सोते रहते हैं। इसी बीच में यदि कोई उन्हें छेड़े तो वे बहुधा उसे मार डालने का ही प्रयत्न करते हैं। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि रोगी होने पर सब प्रकार के जीव आहार छोड़ देते हैं पर ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे यह भी सिद्ध होता है कि पशु अपना स्वास्थ्य बनाये रखने के विचार से भी समय-समय पर उपवास किया करते हैं। डॉ. मैकफेडन का एक छोटा सा कुत्ता सफर में एक बार एक बहुत ऊँचे मकान की छत पर से नीचे के पत्थर वाले फर्श पर गिर पड़ा। उसके गिरने के समय जो

शब्द हुआ था उससे यह अनुमान हुआ था कि अब उसकी एक भी हड्डी साबित न बची होगी। गिरते ही उसके मुँह और नाक से लहू की धारा बहने लगी थी और वह बिल्कुल अधमरा हो गया था। कुछ उपस्थित सैनिकों ने डॉक्टर महाशय को सम्मति दी कि आप गोली मारकर इसे इस भयंकर यातना से मुक्त कर दें पर उन्होंने लोगों की बात स्वीकार न की और उस कुत्ते को एक दौरी में रखकर घर ले जाकर उसी पर अपने उपवास-सिद्धान्त की परीक्षा करना निश्चय किया। जाँच करने पर मालूम हुआ था कि उसकी दो टाँगे और तीन पसलियाँ टूट गई थीं और जिस कठिनता से वह साँस लेता था उससे सिद्ध होता था कि उसके फेफड़ों पर भी अवश्य चोट पहुँची है। जब सब लोग उसके जीवन से निराश हो गये तब उसका मृत शरीर गाड़ने के लिए गड्ढा तक खोदा गया दूसरे दिन सवेरे तक उसके प्राण न निकले और वह बहुत सा पानी पी गया। बीस दिनों तक वह उसी दशा में बिना किसी प्रकार के भोजन के पड़ा रहा। वह केवल पानी पीता था यहाँ तक की दूध या शोरबा भी नहीं छूता था। इक्कीस दिनों के बाद उसने दूध पीना आरंभ किया और छब्बीसवें दिन से वह छिछड़े खाने लगा। उसके पैर अवश्य कुछ टेढ़े हो गये थे पर और किसी प्रकार का दोष उसके शरीर में न रह गया था। दूसरे वर्ष जब डॉक्टर महाशय उसे अपने साथ लेकर फिर उसी स्थान पर गए, जहाँ वह मकान की छत पर से गिरा था और उन्होंने वहाँ के पशु-चिकित्सक को उसे दिखलाया तब चिकित्सक को अत्यंत आश्चर्य हुआ। सबसे पहले तो उसकी समझ में यही बात नहीं आती थी कि वह बिना किसी प्रकार के भोजन या औषधि के जीता ही कैसे बचा। उसके सिद्धांत के अनुसार तो उसे जीवित रखने और निरोग करने के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि बहुत सा भोजन, शराब और बीसियों तरह की औषधियाँ जबरदस्ती नली की सहायता से उसके पेट में उतारी जायें, तब फिर भला उसका जीवित रहना और चंगा हो जाना उसकी समझ में कैसे आ सकता था। इसीलिए वह उस बात को अनहोनी समझता था। अन्त में उसे यही कहना पड़ा कि इस कुत्ते की जीवन शक्ति ही कुछ अद्भुत है।

प्रत्येक मनुष्य थोड़ा अनुभव करके यह बात अच्छी तरह समझ सकता है

कि जंगली और पालतू सभी जानवर रोगी होने पर दाना-पानी छोड़ देते हैं और बहुधा अपेक्षाकृत शीघ्र ही निरोग हो जाते हैं। अन्न जल छोड़ने की शिक्षा उन्हें स्वयं प्रकृति से ही मिलती है और प्रकृति वही शिक्षा पशुओं के द्वारा हम समझदारों को भी देती है पर हम अपनी समझदारी के आगे उसकी कोई कला लगने ही नहीं देते। हम लोग भोजन की सहायता से रोग का पालन करते हैं और औषधियों की सहायता से उसकी वृद्धि करते हैं और तिस पर समझते यह हैं कि हम अपनी चिकित्सा कर रहे हैं पर चिकित्सा के मूल सिद्धांतों से हमारा कोई संबंध ही नहीं रहता। हम लोगों का मार्ग ही उससे बिल्कुल भिन्न और विपरीत है। या तो प्रकृति स्वयं बेहया बनकर हमें निरोग कर दे या हम तरह-तरह के उपायों से रोग उत्पन्न करने वाले विष को एकत्र करके शरीर के किसी अंग में दबा दें और उसे समय पाकर फिर से बढ़ने और फैलने का मौका दें। इसके सिवा हमारे चंगे होने का कोई और उपाय ही नहीं है। न जाने मनुष्यों की समझ में यह छोटी सी बात कब आवेगी कि रोगी जब आहार छोड़ देता है तब आहार को पचाने वाली शक्ति उसके वेग को शमन करने में लग जाती है और उस दशा में वह शीघ्र ही निरोग हो जाता है।

चिकित्सा और उपवास

आजकल जितनी चिकित्साएँ प्रचलित हैं और उनमें से अधिकांश को हम अप्राकृतिक बतला आए हैं, उन सब चिकित्साओं में भी किसी न किसी अवस्था और किसी न किसी रूप में उपवास अवश्य कराया जाता है। रोगी का भोजन परिमित कर देना तो चिकित्सक मात्र का मूल मंत्र है पर बहुत सी अवस्थाओं में वे उपवास की भी बहुत बड़ी आवश्यकता समझते हैं। ज्वर आदि बहुत से रोगों के आरंभ में तो रोगी को सबसे पहले अवश्यमेव उपवास ही कराया जाता है और उठते हुए ज्वर को छेड़ना किसी प्रकार ठीक नहीं समझा जाता। यद्यपि बहुत से ऐसे शौकीन रोगी भी निकलेंगे जो रात को थोड़ी हरारत होते ही सबेरे दो चार खुराक दवा की पी डालेंगे तथापि कोई बुद्धिमान उनके इस कृत्य की प्रशंसा न करेगा। अनेक रोगों के आरंभ में तो हम अवश्य ही पर विवश होकर प्रकृति के कुछ नियमों का पालन करते हैं क्योंकि यदि हम उनका पालन न करें तो प्रकृति हमें कठोर दंड देती है पर आगे चलकर जब हम उन नियमों के पालन से कुछ लाभ उठा चुकते हैं तब उन्हीं का अतिक्रमण करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय हम उस स्थिति में पहुँच जाते है जिसमें प्रकृति द्वारा हमें तुरंत ही नहीं बल्कि कुछ काल के उपरांत दण्ड मिलता है। अनेक रोगों के आरंभ में जब डॉक्टर वैद्य या हकीम अपने रोगी को उपवास कराता है तो उससे रोग का जोर बहुत कुछ घट जाता है यदि रोगी को उसी स्थिति में कुछ और समय तक रहने दिया जाये, उसे न तो किसी प्रकार की दवा दी जाये और न किसी प्रकार का भोजन तो अवश्य ही वह बहुत शीघ्र निरोग हो सकता है पर यहाँ आरंभ तो होता है प्राकृतिक नियमों से और बीच में ही अप्राकृतिक नियमों का व्यवहार आरंभ हो जाता है।

जो हो पर इसमें किसी तरह का संदेह नहीं कि सभी चिकित्सक किसी न किसी अवसर पर अपने रोगी का भोजन बंद कर देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वे उपवास का महत्व जानते और मानते तो अवश्य हैं और उससे समय-समय पर लाभ भी उठाते हैं पर उनका उपवास संबंधी ज्ञान अपेक्षाकृत बहुत ही

कम है। हकीमों और वैद्यों की अपेक्षा डॉक्टर्स का तत्संबंधी ज्ञान और भी अल्प है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगी को दस बीस दिनों तक बिना भोजन के रख सकता है पर किसी डॉक्टर के लिए ऐसा करना असंभव है। प्राय: हकीमों और वैद्यों के ऐसे कृत्यों पर डॉक्टर लोग हँसते हुए देखे गए हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि रोगी को किसी प्रकार का आहार न दिया जायेगा तो उसकी शक्ति नष्ट हो जायगी और वह निरोग होने के बदले मर जायेगा पर उनका यह मत सर्वांश में सत्य नहीं उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि उपवास और बल क्षय का परस्पर कितना संबंध है पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास कराने वाले वैद्यों और हकीमों की निंदा करने और हँसी उड़ाने वाले डॉक्टर्स भी कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगों में अपने रोगियों को आठ-आठ और दस-दस दिन तक बिना भोजन के ही रखते हुए देखे गए हैं।

आयुर्वेद और उपवास

इस अवसर पर थोड़े शब्दों में यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि हमारे प्राचीन भारतीय-चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद में उपवास को कितना महत्त्व दिया गया है और उसके क्या-क्या लाभ बतलाए गए हैं। हमारे यहाँ के आयुर्वेदज्ञों का मत है कि शरीर में कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ हैं। जब तक ये तीनों पदार्थ समान स्थिति में रहते हैं तब तक मनुष्य निरोग रहता है पर जब इनमें से कोई पदार्थ घट या बढ़ जाता है, तब उसकी गिनती दोषों में होती है अर्थात् उसके कारण मनुष्य के शरीर में कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बहुत ही क्षुद्र भी हो सकता है और महाभयंकर भी। यही कारण है कि यदि आप किसी रोग के संबंध में आयुर्वेद का कोई ग्रंथ उठाकर देखें तो उसमें आपको उस रोग की उत्पत्ति कफ, पित्त अथवा वात से ही मिलेगी। बढ़े या घटे हुए पदार्थों को समान स्थिति में लाना और दोष का नाश करना ही वैद्य मात्र का कर्तव्य होता है। उपवास या लंघन के विषय में हमारे चिकित्सा शास्त्र का मत है कि उसे सहन करने की शक्ति केवल दोषों में ही होती है। जब तक मनुष्य के शरीर में दोष रहता है तभी तक वह निराहार रह सकता है, दोषों के शमन हो जाने पर वह बिना भोजन के नहीं रह सकता। यह बात वैद्यक के कई ग्रंथों में लिखी हुई है। भावप्रकाश में लिखा है कि लंघन करने से दोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हल्का हो जाता है और भूख बढ़ती है जबकि दोषों ही से रोगों की सृष्टि होती है और लंघन से दोषों का नाश होता है, तब इस सिद्धांत के मानने में कोई संकोच नहीं हो सकता कि लंघन से रोगों का नाश होता है। सुश्रुत संहिता में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी हुई है कि जिस मनुष्य की अग्नि और दोष ठीक दशा में न हों, लंघन से उसकी अग्नि ठीक दशा में आ जाती है और उसके दोषों का परिपाक हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टर्स की सम्मति के अनुसार पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि रोगी जब आहार छोड़ देता है तब उसकी आहार पचाने वाली शक्ति उसके रोग का शमन करने में लग जाती है और उस दशा में वह शीघ्र निरोग हो जाता है। पाश्चात्य डॉक्टर्स के इस

सिद्धांत की पुष्टि हमारे यहाँ के प्राचीन शास्त्रों के इस वचन से भली भांति हो जाती है-

॥ आहारं पचति शिरवी दोषानाहारवर्जितः ॥

अर्थात् अग्नि आहार को पचाती है और जब पेट में आहार नहीं रहता तब तक दोषों को पचाती या नष्ट करती है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहने से दोषों या रोगों का नाश ही होता है, निराहार रहने से शरीर को लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाश में लिखा है कि यदि दोष साधारण या मध्यम अवस्था में हो तो लंघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मत से लंघन के द्वारा वायु का दोष सात दिन में, पित्त का दोष दस दिन में कफ का दोष बारह दिन में पच जाता है। यद्यपि दोष की भयंकर अवस्था में उक्त ग्रंथ के कर्ता ने लंघन की आज्ञा नहीं दी है तथापि इससे हमारे सिद्धांत पर किसी प्रकार का दोष नहीं आ सकता। कोई दोष आरंभ होते ही महाभयंकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्था में ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचने में उसे कुछ समय लगता है। यदि दोष के आरंभ होते ही उपवास का भी आरंभ हो जाय तो निश्चय है कि उस दोष का नाश ही होगा। सुश्रुत के अनुसार तो शरीर को हल्का करने वाली सभी क्रियाएँ लंघन के अंतर्गत आ जाती हैं और चरक ने वायु सेवन और व्यायाम आदि को भी लंघन के अंतर्गत ही माना है। यदि किसी रोगी के पेट में बहुत सा अन्न हो और वैद्य उस अन्न को वमन या विरेचन की सहायता से बाहर निकाल दें तो उसकी यह क्रिया लंघन से भी कहीं बढ़कर होगी क्योंकि लंघन की सहायता से उतना अन्न पचाने में उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचन में लगता है। वायुसेवन और व्यायाम आदि से भी दोषों का नाश ही होता है। इन चिकित्साओं को लंघन के अंतर्गत मानने से लंघन का महत्व और भी बढ़ जाता है और उससे सिद्ध होता है कि वह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुत के अनुसार लंघन से ज्वर का नाश होता है, अग्नि का दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लंघन के उपरांत मल मूत्र का त्याग उचित रीति से हो, भूख प्यास न सही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हों और इन्द्रियाँ

निर्विकार और सुखी हों तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीति से हुआ है। यही बात दूसरे शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करने के परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वर की दशा में तो लंघन को सभी ने उपयुक्त ही नहीं बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चक्रदत्त ने कहा है कि नवीन ज्वर का क्षय लंघन की सहायता से करें और आत्रेय त्रषि की आज्ञा है कि ज्वर के आरंभ में लंघन करावे। वैद्यक में वमन, विरेचन, निरूहबस्ती (इंद्रिय-जुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकार की संशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये संशुद्धियाँ ज्वर में कराई जाती हैं पर उपवास को शास्त्र में इन संशुद्धियों से कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भट ने कहा है कि दूषित वातादि दोष आमाशय में स्थित होकर जठराग्नि को मंद कर देते हैं और आम के साथ मिलकर शरीर के छिद्रों को शुद्ध करने के लिए लंघन की आवश्यकता होती है। इस अवसर पर कदाचित यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्नि को मंद करते हैं उनके शमन के लिए लंघन से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डॉक्टर्स ने उपवास-चिकित्सा का अविष्कार किया है वे उपवासकाल में रोगी को केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यक के ग्रंथों में भी उपवास-काल में केवल जल ही देने का विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उससे सभी दशाओं में उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यक के ग्रंथों में यह भी लिखा है कि वैद्य को चाहिए कि लंघन इस प्रकार करावे कि जिसमें जल का नाश न हो क्योंकि आरोग्यता जल के ही अधीन है और यह सब कार्यक्रम आरोग्यता के लिए ही है। उपवास-चिकित्सा के अविष्कर्ताओं का भी ठीक यही सिद्धांत है। सारांश यह है कि उपवास संबंधी सिद्धांत न तो हमारे आयुर्वेद के लिए नये ही हैं और न हमारे यहाँ के उपवास संबंधी सिद्धांतों के किसी प्रकार प्रतिकूल ही हैं। आयुर्वेद से पाश्चात्य डॉक्टर्स के उपवास सिद्धांतों का सब प्रकार से समर्थन और पोषण ही होता है।

प्रकृति और उपवास

पश्चिम में उपवास-चिकित्सा का अविष्कार बल्कि यों कहिए कि पुनरुद्धार ऐसे लोगों ने किया है जो अपने जीवन के आरंभ काल में बहुत ही दुर्बल रहा करते थे और मुद्दतों तक तरह-तरह की दवाईयाँ करके अपने जीवन से एकदम निराश हो चुके थे। उन लोगों ने जब देखा कि औषधियों से रोग किसी प्रकार दूर नहीं होते और सुना कि औषधि सेवन से रोगों की संख्या और बढ़ती है तब उन्हें किसी ऐसी चिकित्सा प्रणाली की चिन्ता लगी जो मनुष्य के लिए बिल्कुल स्वाभाविक या प्राकृतिक हो और जिसमें लाभ के सिवा किसी प्रकार की हानि की संभावना न हो। उन लोगों ने खोज और परिश्रम करके एक नई पर प्राकृतिक प्रणाली ढूंढ निकाली। ज्यों-ज्यों उनकी प्रणाली का प्रयोग होता गया और ज्यों-ज्यों उनका अनुभव बढ़ता गया त्यों-त्यों उन्हें इस बात के दृढ़तर प्रमाण मिलते गये कि वास्तव में रोगी का सबसे अधिक कल्याण केवल और केवल उपवास से ही हो सकता है। अब तो यूरोप और अमेरिका आदि देशों में बहुत से ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल उपवास और जल चिकित्सा आदि से ही रोगी को चंगा किया जाता है। इन चिकित्सालयों में रोगियों पर जो अनुभव किये जाते हैं उन्हें जानकर बड़ा ही कुतूहल और आनंद होता है।

साधारण समझ का आदमी भी यह बात भली भाँति समझ सकता है। कि यदि मनुष्य और विशेषतः रोगी को भूख न हो तो जबरदस्ती खिलाने से शरीर का बहुत अनिष्ट होता है उसे बड़ी हानि पहुँचती है। ज्वर, सिरदर्द, अपचन आदि बहुत से रोगी और यहाँ तक कि मानसिक, चिंताओं के कारण भी मनुष्य की भूख मारी जाती है। उस समय शरीर की शक्ति बनाये रखने के उद्देश्य से जो कुछ जबरदस्ती खाया जाता है, वह शक्ति बनाये रखने की अपेक्षा उसे बिगाड़ना प्रारंभ कर देता है। उस अवस्था में मनुष्य को इस बात के मिथ्या भ्रम में न फँस जाना चाहिए कि दो चार रोज भोजन न मिलने के कारण ही हमारे प्राण निकल जायेंगे। हमारे लिए भय या चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी रक्षक है। वह बहुत अच्छी तरह जानती है कि किस अवसर पर क्या

होना चाहिए। प्रकृति देवी की गोद में पड़कर सुखी और स्वस्थ बनने का अभ्यास करो, रोगों को विकार दूर करने का हेतु या कारण समझो, विष के समान कड़वी दवाओं और पैने नश्तरों के कारण होने वाले भीषण कष्टों से बचने और एक दो दिन के थोड़े से शारीरिक कष्ट सहने का अभ्यास करो और तब देखो कि तरह–तरह की दुर्बलताओं और रोगों से मुक्त होकर तुम कितनी जल्दी प्रसन्न और संतुष्ट हो जाते हो। याद रखो कि हमें जितनी शारीरिक वेदनायें होती हैं वे सब किसी न किसी रूप में प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने के कारण ही होती हैं। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमों का पालन करता है, प्रकृति का मनन करके अपने आपको उस पर छोड़ देता है और कष्ट के समय उसे छोड़कर किसी की सहायता नहीं लेता, वही सबसे बड़ा भाग्यवान सबसे अधिक बुद्धिमान ज्यादा और सबसे ज्यादा सुखी है। साथ ही वह भी याद रखो कि तरह–तरह की दवाईयों की पुड़िया खाना, शीशियाँ पीना, गोलियाँ निगलना, नश्तर लगवाना आदि बातें मनुष्य के लिए कभी स्वाभाविक नहीं हो सकती। शरीर की सृष्टि प्रकृति से होती है और उसका पालन पोषण तथा रक्षण आदि भी प्रकृति के नियमानुसार ही हो सकता है, अन्य उपायों व नियमों से नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा के विरोधी यह बात कह सकते हैं कि बड़े–बड़े रोग औषधियों और चीर–फाड़ से अच्छे हो जाते है पर उन्हें यह बात भूल न जानी चाहिए कि उन भयंकर रोगों का बीजारोपण भी स्वयं उन्हीं औषधियों और चीर–फाड़ से ही होता है अथवा किसी दशा में यदि उन औषधियों और चीर–फाड़ से न हो तो कम से कम प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन से अवश्य होता है। यदि आरंभ से ही मनुष्य प्राकृतिक नियमों का पालन करे और अप्राकृतिक उपचारों से बचता रहे तो उसे कोई रोग उत्पन्न भी हो प्रकृति की शरण में जाते ही वह अवश्य दूर हो जाता है।

शरीर और उपवास

शरीर-शास्त्र वेत्ताओं का मत है कि भोजन पचाने के लिए अपने शरीर की जीवन शक्ति पर हमें उतना ही बोझा डालना चाहिए जितने से हमारे शरीर का काम भली-भाँति चलता रहे। उस पर व्यर्थ और आवश्यक से अधिक बोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकार की आत्महत्या है। यह तो हुई साधारण और नित्यप्रति के काम की बात। अब विशेष अवसरों और अवस्थाओं को लीजिए। अपने शरीर को थोड़ी देर के लिए रसोई घर समझ लीजिए और पक्वाशय को रसोइया मानिए। यदि आँधी चलने के कारण रसोईघर में बहुत सी धूल और गर्द भर जाए, उसकी दीवार की दो-चार ईंटे निकल जाये, छप्पर का कुछ अंश टूटकर गिर पड़े अथवा इसी प्रकार का और कोई उपद्रव उपस्थित हो तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा ? आप पहले रसोईघर को झाड़ू-बुहारकर गर्द और धूल साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अंशों की मरम्मत करके उसे काम चलाने योग्य बना देंगे अथवा तुरंत रसोइए को आज्ञा देंगे कि वह उस टूटे-फूटे और गंदे स्थान में तुरंत आपके लिए रसोई बनावे ? उस समय आप भंडार में रखे हुए सत्तू, चने, गुड़ या मिठाई आदि से अपना काम चना लेंगे या रोज की तरह बढ़िया दाल, भात, कढ़ी, तरकारी चटनी और रोटी आदि की आशा रखेंगे ? हम-पहले ही कह आये हैं कि प्रकृति हमारी सब आवश्यकताओं को समझती है और उसकी पूर्ति के उपाय वह पहले से ही कर भी रखती है। हमारे शरीर के भीतर चरबी आदि अनेक ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं जो आवश्यकता और अड़चन के समय बड़ी सरलता से हमारे पक्वाशय की प्रधान आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं। यह तो हुई उस समय की बात जबकि हमारी अग्नि को और कामों से छुट्टी मिल चुकी हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थिति में पहुँचकर अपना नित्यकृत्य करने के लिए तैयार बैठी हो। रोग और व्याधि आदि के समय तो उसे अपनी सारी शक्ति दोषों को नष्ट करने में ही लगा देनी पड़ती है। उस दशा में यदि हम उससे कोई और काम लें, उसका बल किसी दूसरी तरफ लगा दें तो यह कब संभव है कि वह हमारे शरीर के दोषों

को बाहर निकालने या नष्ट करने में समर्थ होगी? उस अवस्था में हमें यही उचित है कि जहाँ तक हो सके हम उसे सब प्रकार के बोझों से हलका कर दें, जिसमें वह अपनी सारी शक्ति हमें निरोग बनाने में लगा सके। रोग आदि होने पर हमारी अग्नि स्वयं कोई दूसरा काम नहीं करना चाहती और यही कारण है कि बहुधा रोगों में लोगों की भूख मारी जाती है। उस समय नित्यक्रिया समझकर बलपूर्वक पेट में भोजन उतारा जाता है और रोग को मनमाना बढ़ने के लिए अवसर दिया जाता है। यहाँ तक कि लोग भूख लगने को भी एक रोग ही समझ बैठते हैं। उनकी समझ में यह नहीं आता है कि जठराग्नि हमें सूचना दे रही है कि रसोईघर की मरम्मत की आवश्यकता है। मैं अपना काम भंडार में रखी हुई चीजों से चलाकर वह मरम्मत कर डालूंगी। हमारे शरीर में बहुत से ऐसे फालतू पदार्थ हैं, जो उपवास काल में हमारे शरीर का काम चला देते हैं और फिर से जिनकी भरती बाद में होती रहती है। हमारे शरीर में बहुत से ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो वृद्धावस्था के लिए जमा होते हैं पर जब बीच में शरीर की मरम्मत की आवश्यकता होती है तब उन्हीं से काम चल जाता है और मरम्मत हो चुकने पर धीरे-धीरे उनकी पूर्ति होती रहती है। रक्षित पदार्थ आवश्यकता पड़ने पर तुरंत ही काम में लाये जा सकते हैं और उनका व्यय हो जाने के कारण शरीर के नित्य के कामों में कोई बाधा नहीं पड़ती। यदि लोग यह समझते हों कि भूखे रहने से मनुष्यों के प्राणों पर आ बनती है अथवा वह असमर्थ और बेकार हो जाते हैं तो यह उनकी भूल है। इस संबंध में कुछ विशेष अनुभव सिद्ध बातें आगे चलकर कही जायेगी।

मन और उपवास

उपवास से शरीर की शुद्धि तो होती ही है, मन के साथ भी उसका प्राय: वैसा ही संबंध है। जिस समय किसी शारीरिक वेदना की उत्पत्ति होती है, उस समय उस वेदना या रोग को नष्ट करने लिए हमारी भूख बंद हो जाती है। असाधारण मानसिक चिंता, कुढ़न या क्रोध आदि का भी पाचन-क्रिया पर वैसे ही प्रभाव पड़ता है उससे हमारे शरीर का अनिष्ट संभावित होता है और उसी अनिष्ट से रक्षित रहने के लिए प्रकृति हमारे मस्तिष्क को पोषक द्रव्य पहुँचाना बंद कर देती है। तात्पर्य यह कि हमारी शारीरिक क्रिया में जहाँ किसी प्रकार का व्यतिक्रम होता है वहीं हमारी भूख बंद हो जाती है और इस प्रकार वह उपवास के महत्व की घोषणा करती है। जिस प्रकार उपवास हमारे शारीरिक दोषों को नष्ट करता है उसी प्रकार वह हमारे मानसिक विकारों को भी दूर कर देता है। कई बड़े-बड़े उपवास चिकित्सकों को अनेक रोगियों के संबंध में यह अनुभव करके बहुत ही आश्चर्य हुआ कि उपवास का मन पर पड़ने वाला लाभदायक प्रभाव शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक था। इस देश के वैद्यक के ग्रंथों में लिखा हुआ है कि उपवास से मन और आत्मा की भी शुद्धि होती है और पाश्चात्य डॉक्टर्स के अनुभव करने पर यह बात बहुत सत्य निकली है। जो रोगी किसी अच्छे चिकित्सक की देख में दो एक लंबे उपवास कर लेते है, कठिन विषयों और समस्याओं पर विचार करने की उनकी शक्ति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाती है। इसका कारण यही है कि हमारे शरीर में अधिक भोजन आदि के कारण जो विकार एकत्र हो जाता है, हमारे शरीर की शक्तियों के लिए वह बहुत ही हानिकारक होता है। वह उनका बहुत सा अंश अपने साथ जूझने के लिए खींच लेता हैं और इस प्रकार उनके ह्रास का कारण होता है पर उपवास के कारण हमारे शरीर का सारा विकार नष्ट हो जाता है और तब हमारी शक्तियों को किसी शत्रु का विरोध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उस दशा में हम उनसे पूरा-पूरा काम लेने में समर्थ हो जाते हैं। हमारी सभी इंद्रियों में बल आ जाता और वे अपने-अपने कार्य सुभीते और सरलता से

करने लगती है। जब उपवास हमारे शरीर को हर तरह से लाभ पहुँचा सकता है तब कोई कारण नहीं है कि वह हमारे मन और आत्मा को संस्कृत न कर सके और उनका बल न बढ़ा दे। मानसिक विकारों और दोषों को दूर करने में भी उपवास उतना ही समर्थ है जितना शारीरिक विकारों और दोषों को नष्ट करने में है। आरोग्यता के इच्छुकों के अतिरिक्त मानसिक संस्कृति चाहने वालों के लिए भी उपवास अत्यंत लाभ-दायक है। इसके अतिरिक्त जिस मनुष्य के शरीर में कोई विकार न रह जायेगा और जिसकी सभी शारीरिक क्रियायें सरलतापूर्वक होती रहेंगी उसका मन भी अवश्य ही सदा प्रसन्न और सबल रहेगा।

शारीरिक बल और उपवास

जो लोग सैकड़ों पीढ़ियों से दिन में तीन और चार बार भोजन करते आये हों और एकाध दिन भोजन न मिलने के कारण जिनका शरीर एकदम शिथिल पड़ जाता हो, उनके मन में उपवास के संबंध में तरह-तरह की शंकायें उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है। जिस युग के लोग अन्न को ही प्राण मानते हों, उस युग में लोगों को पखवाड़ों बल्कि महिनों तक निराहार रहने के गुण सहज में नहीं समझाये जा सकते। केवल यह कह देना कि महीने पंद्रह दिन तक निराहार रहने से मनुष्य का शरीर सब प्रकार से निरोग और बलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ठ नहीं है। इस पर लोगों को तरह-तरह कि शंकायें हो सकती हैं। इस स्थल पर उन्हीं शंकाओं पर विचार किया जायेगा।

अकाल आदि के समय हम लोग हजारों आदमियों को बिना अन्न के भूखों मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसीलिए उपवास के संबंध में सबसे पहले यही शंका हो सकती है कि बिना अन्न के मनुष्य अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखों मरने में जो अंतर है उसका यहाँ बतलाना उचित जान पड़ता है। पहले बतलाया जा चुका है कि प्रकृति ने हमारे शरीर में बहुत सा ऐसा सामान भर रखा है जो विशेष आवश्यकता के समय हमारे काम आ सकता है। जब हमें अन्न नहीं मिलता तब हमारे शरीर के उसी फालतू सामान से हमारा काम चलता है। इस देश में नवरात्र आदि के समय बहुत से लोग नौ-नौ दिन तक बिना अन्न और जल के रह जाते हैं। बहुत से लोग इससे भी अधिक दिनों तक निराहार रहते हैं। उस काल में उनका शरीर दुबला हो जाता है, चेहरा उतर जाता है और आँखे धंस जाती हैं। इस शारीरिक ह्रास का मुख्य कारण यही है कि उनके शरीर का फालतू सामान उनके पोषण में लग जाता है। फालतू अंश के समाप्त हो जाने पर शरीर का पोषण उन पदार्थों से होने लगता है, जो हमारे शरीर के आवश्यक अंश हैं और जिनसे हमारे शरीर का संगठन हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है जबकि शरीर के फालतू अंशों की समाप्ति के बहुत बाद उसके आवश्यक अंश भी नष्ट हो चुकते हैं। जब तक

मनुष्य के शरीर के आवश्यक अंशों के पोषण का आरंभ नहीं होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है पर आवश्यक अंशो के पोषण में लग जाने के उपरांत उसके शरीर की ठठरी मात्र बच रहती है। उपवासकाल उसी समय तक माना जाता है जब तक कि शरीर का पोषण उसके फालतू पदार्थों पर होता रहे पर जब आवश्यक अंशों की नौबत आ जाये तब वह उपवास नहीं बल्कि भूखों मरना है। आज तक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि केवल दो दिन तक अन्न न मिलने से कोई मनुष्य मर गया हो। उपवास के कारण मनुष्य को नियमित समय पर भले ही थोड़ी बहुत भूख लग जाय और उसके उपरांत कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीर के फालतू अंशों से हमारा पोषण आरंभ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। यह व्याकुलता कभी किसी समय में एक या दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थिति के उपरांत जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूप से बतलाया जायेगा, मनुष्य के शरीर के फालतू अंश और उनके साथ रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। उन सबके पच जाने के उपरान्त मनुष्य को एक बार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्य को भोजन न मिले तो फिर उसके शरीर के आवश्यक अंशों की बारी आ जाती है और इसके परिणाम स्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान ने उपवास और भूखों मरने का अंतर बतलाते हुए कहा है कि– उपवास का आरंभ भोजन छोड़ने और अंत वास्तविक भूख से होता है और भूखों मरने का आरंभ वास्तविक भूख और अंत प्राण छूटने से होता है।

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए उपवास से बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीर की बहुत सी फालतू चरबी और दूसरे पदार्थों की समाप्ति हो जायेगी। यूरोप और अमेरिका आदि देशों में बहुत से लोगों ने केवल उपवास की सहायता से अपनी बहुत सी मोटाई कम कर दी है और वे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता से चलने फिरने लगे हैं।

उपवास के आरंभ में ही शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है पर उससे शरीर को लाभ ही होता है, हानि नहीं। अनुभव से यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि उपवास काल में विशेष अवस्थाओं में मनुष्य का शारीरिक बल आश्चर्य रूप से बढ़ जाता है। स्वयं डॉक्टर मैकफेडन ने जिनके ग्रंथ से इस प्रस्तुत ग्रंथ के लिखने में बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवास संबंधी निज का अनुभव पाठकों को आगे चलकर बतलाया जायेगा वह प्रभाव जानने के लिए एक प्रयोग किया था जो उपवास के कारण शारीरिक बल पर पड़ता है। उपवास आरंभ करने के दिन वे जमीन पर चित्त लेट गये और अपनी दोनों हथेलियों पर उन्होंने ढाई मन वजन के एक आदमी को खड़ा करके लेटे-लेटे हाथों के बल ऊपर की ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमी को छाती से प्राय: तीन-चार इंच ही ऊपर उठा सके थे पर उपवास के अंतिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमी को अपनी हथेलियों पर खड़ा करके उसे ऊपर की ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथों से पूरी ऊँचाई तक छाती से लगभग दो फुट ऊपर तक उठ गया। अवश्य ही डॉक्टर महाशय ने उपवास काल में व्यायाम नहीं छोड़ा था और नित्य वह दस मील का चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवास के प्रथम दिन आध मन वजन का डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था पर इक्कीस दिनों तक उपवास करने के उपरांत उसने वही डंबेल सिर से ऊपर उतनी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई तक कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास

कुछ लोगों को यह शंका हो सकती है कि उपवास काल में मस्तिष्क का ह्रास संभावित है पर यह बात भी बिलकुल व्यर्थ है। डॉक्टर एडवर्ड हूकर डेवी जो उपवास चिकित्सा के अविष्कर्ता और सबसे बड़े पक्षपाती हैं, कहते हैं कि उपवास से मानसिक बल कभी क्षीण नहीं होता। उनके मत से मस्तिष्क का पोषण जिन पदार्थों से होता है वे पदार्थ स्वयं मस्तिष्क में ही उपस्थित रहते हैं। शरीर के और किसी भाग से मस्तिष्क तक पोषक द्रव्य पहुँचाने की आवश्यकता नहीं होती। उसका पोषण बिना अन्न के ही आपसे आप होता है और वह अपना काम बराबर करता है। उपवास-काल में प्रायः बहुत से लोग अपना नित्य का लिखने पढ़ने आदि का काम करते हुए देखे गये हैं। मनुष्य के शरीर को यदि तरह-तरह की कलों का समूह मान लिया जाये तो मस्तिष्क उन कलों को चलाने वाला प्रधान इंजिन ठहर सकता है। जीवन की सारी शक्तियों का उद्‌गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहार के कारण उसके कार्य में किसी प्रकार का व्यक्तिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते-करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करने से ही लौटती है, चौके में जा बैठने से नहीं। रातभर आरा करने के कारण मस्तिष्क की और फलतः सारे शरीर की गई हुई शक्तियाँ लौट आती हैं और प्रातः काल मनुष्य कठिन से कठिन मानसिक या शारीरिक परिश्रम करने के योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभव से यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रातःकाल जल-पान न करने वाले लोग जल-पान करने वालों की अपेक्षा अधिक और रात को भोजन न करने वाले भोजन करने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक और भारी काम करने में समर्थ होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि पेट से व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेने के कारण मनुष्य की बहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट होने से बच रहती है। खेतों और खानों आदि में कठिन परिश्रम करने वाले लोगों के अनुभव से भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाये तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक

दूसरे के विरोधी हैं। यदि पेट में थोड़ा सा भी भोजन हो और मस्तिष्क से अधिक काम लिया जाये तो पाचन क्रिया में बड़ी बाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूब भरा हो तो मस्तिष्क से कोई काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक दूसरे के लिए वैसे ही बाधक हैं जैसे नींद आने में शोर गुल। भोजन के कुछ समय बाद मस्तिष्क से कोई काम नहीं लेना चाहिए और मस्तिष्क से सबसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है जबकि पेट को अपनी चक्की चलाने से फुरसत मिले। अतः यह सिद्ध है कि उपवास से मस्तिष्क के कामों में कोई बाधा नहीं पड़ती बल्कि उलटे और उसमें सहायता मिलती है।

उपवास काल में शरीर की दशा

जिस उपवास के गुण इस पुस्तक में बतलाये गये हैं उसमें केवल जल को छोड़कर बाकी और सब प्रकार के खाद्य पदार्थ छोड़ देने की आवश्यकता होती है। जिस दिन से आप उपवास करना चाहें उसी दिन से आप भोजन आदि छोड़ सकते है और तब आपका उपवास आरंभ हो जायेगा। उपवास के पहले से एक दो अथवा अधिक से अधिक तीन दिन बहुधा बड़े ही कष्ट से बीतते हैं और उन दिनों का उतने कष्ट से बीतना बहुत ही स्वाभाविक भी है। प्रत्येक पुराना अभ्यास छोड़ने और नया अभ्यास करने में चाहे वह नया अभ्यास कितना ही प्राकृतिक, सहज और लाभदायक क्यों न हो सभी मनुष्यों को थोड़ा बहुत कष्ट अवश्य होता है। अपने शरीर को नये अभ्यासवाली परिस्थिति तक ले जाने और उसके अनुकूल बनाने में कुछ परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। जो लोग उपवास चिकित्सालय में अपनी चिकित्सा कराने के लिए जाते हैं, आरंभ के दिनों में उनमें से बहुतों की दशा बहुत खराब हो जाती है, उनकी आँखों के समाने अंधेरा आ जाता है, सिर में चक्कर आने लगते हैं, कै होती है और उन्हें यह जान पड़ता है कि हमारा शरीर एकदम खाली हो गया है। इसके अतिरिक्त और भी कई तरह के ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिनसे उनकी विकलता और कष्ट की चरम सीमा सी मालूम होने लगती है पर ये सब लक्षण दो या तीन दिन से अधिक नहीं ठहरते। उनकी असाधारण पर केवल अभ्यास के कारण लगने वाली और कृत्रिम भूख नष्ट हो जाती है और भोजन से उनकी रुचि स्वयं ही हट जाती है। जो मनुष्य कष्ट के ये दो तीन दिन बिता देता है उसे स्वास्थ्य और बल के राजपथ पर पहुँचा हुआ ही समझिए।

तीसरे या चौथे दिन भोजन से अरुचि हो जाती है। उसकी दशा प्राय: वैसी ही हो जाती है जैसी दो तीन दिन बुखार आने और छूट जाने पर होती है। जीभ का स्वाद बिगड़ जाता है और उस पर कुछ पीलापन आ जाता है। इन चिह्नों को बहुत ही शुभ समझना चाहिए क्योंकि इनसे सिद्ध होता है कि शरीर का विकार कितनी जल्दी-जल्दी बाहर निकल रहा है। इसके बाद ही वे चिह्न प्रकट होने

लगते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि शरीर के सारे विकार प्राय: बाहर निकल चुके हैं। साँस अधिक सरलता से और गहरी चलने लगती है और फेफड़े अपना काम उत्तमता से करने लगते हैं पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि बहुधा उपवास करने वालों के लक्षण एक दूसरे से भिन्न हुआ करते हैं और सब लोगों में समान रूप से पाई जाने वाली बातें बहुत ही कम होती हैं। यदि एक ही मनुष्य दो बार अधिक दिनों तक उपवास करे तो उसके दोनों बार के लक्षण एक दूसरे से बहुत भिन्न होंगे पर इसमें संदेह नहीं कि सब प्रकार के लक्षणों वाले उपवासों का फल निश्चायत्मक और एकसा स्वास्थ्यप्रद होता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर के सारे विकार, दोष, विष और रोग आदि बाहर निकल जाते हैं और मनुष्य के शरीर में बल और मुख पर तेज आ जाता है। सभी उपवास करने वालों को अंत में स्वाभाविक भूख लगती है और दिन पर दिन उनका शरीर अधिक बलिष्ठ और सुखी होने लगता है।

उपवास के आंरभ में सिर दर्द, चक्कर आदि तरह-तरह के कष्टों का मुख्य कारण यही है कि हमारा शरीर भीतरी मल और विकार बाहर निकालने का प्रयत्न करता है। उस दशा में यदि गुदा के मार्ग से गरम पानी का एनिमा लिया जाये और पेट तथा कमर के ऊपरी भाग में हल्का सेंक किया जाये तो पेट में से मल और विकार के बाहर निकलने में और भी सुभीता हो जाता है और कष्ट से छुटकारा हो जाता है। उपवास के आरंभ में कान और आँख में भी पीड़ा होती है पर उपवास के अंत में वे भाग बिल्कुल निरोग हो जाते हैं। तरह-तरह के इन कष्टों से जो केलव आरंभ में ही और वह भी शरीर की संशुद्धि के लिए ही होते हैं, कभी घबराना नहीं चाहिए। उस दशा में हमारे शरीर के प्रत्येक अंग और प्रत्येक शक्ति को विकार और रोग आदि शत्रुओं के साथ उसी प्रकार अपना सारा बल लगाकर लड़ना पड़ता है जिस प्रकार जान पर आ बनने के समय किसी मनुष्य को अपने शत्रु के साथ अथवा अकेले जंगल में किसी जंगली जानवर के साथ लड़ना पड़ता है। ज्यों-ज्यों कष्ट बढ़ते जायें त्यों-त्यों यही समझना चाहिए कि विकारों का नाश हो रहा है और उनका अंत समीप ही है।

विकारों का नाश होते ही कष्टों का भी अंत हो जाता है और मनुष्य की दशा आपसे आप सुधरने लगती है।

कुछ अवस्थाओं में उपवास करने वालों के शरीर से बहुत ही बदबूदार पसीना निकलता है। यह भी शरीर से विकार से बाहर निकलने का बहुत बड़ा लक्षण है। कुछ लोगों की जीभ का स्वाद उपवास के चौथे या पाँचवे दिन बेतरह बिगड़ जाता है और उस दशा में यदि उन्हें वमन आवे तो कुछ आश्चर्य नहीं। किसी-किसी उपवास करने वाले का मुँह बहुत खट्टा हो जाता है और उसमें से बहुत लार बहती है। कभी-कभी उसकी जीभ और होंठो पर छाले भी पड़ जाते हैं। बहुत अधिक मिठाईयाँ खाने वालों और पित्त के दोषवालों को अपेक्षाकृत कुछ अधिक कष्ट होता है। कुछ उपवास करने वालों को अठवारों तक कै होती रहती है। इसी प्रकार के और भी अनेक कष्ट होते रहते हैं। कष्टों की इस असमानता का मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य के शरीर की भीतरी अवस्था एक दूसरे से बहुत ही भिन्न होती है और प्रत्येक शरीर में एक विलक्षण प्रकार का विकार होता है। अपनी स्थिति और सुविधा के अनुसार शरीर उन विकारों को जिस मार्ग से और जिस प्रकार सरलतापूर्वक निकाल सकता है वह उसी मार्ग से और उसी प्रकार उन्हें बाहर निकालता है। जिस मनुष्य के शरीर में जितना अधिक विकार होता है उपवास काल में उसे उतना ही अधिक कष्ट होता है और जिसे जितना अधिक कष्ट होता है, उपवास की समाप्ति पर वह उतना ही अधिक निरोग और स्वस्थ हो जाता है।

उपवास- संबंधी अनुभव

उपवास काल में शरीर की जो दशा होती है, उसका सबसे अच्छा पता उन लोगों के लिखित अनुभवों से हो सकता है जो प्रसिद्ध उपवासकारियों ने लिख रखे हैं। यद्यपि इस प्रकार के लिखित अनुभव संख्या में बहुत अधिक और विस्तृत हैं तथापि उनमें से कुछ चुने हुए अनुभवों का सारांश यहाँ पर दे देना बहुत ही उपयुक्त और आवश्यक जान पड़ता है। सबसे पहले डॉक्टर बरनर मैकफेडन के निज के अनुभव को ही लीजिए जो प्राकृतिक चिकित्सा के बड़े अच्छे विद्वान हैं, जिन्होंने कई प्राकृतिक चिकित्सालय खोलकर हजारों रोगियों को अच्छा किया है और जिनके बनाये हुए तत्संबंधी बीसीयों अच्छे-अच्छे ग्रंथों और विश्वकोश में पाँच खंडों का आश्चर्यजनक प्रचार हुआ है। यह राम कहानी आपके मुँह से ही सुनी जाने के योग्य है अतः वह आपके शब्दों में ही यहाँ पर दी जाती है। आप कहते हैं-

मुझे पहले न्यूमोनिया के सिवा और भी कई छोटे-मोटे रोग थे। उस समय तक उपवास चिकित्सा के संबंध में कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे पर मैंने बिना उन्हें पढ़े ही अपने लिए चिकित्सा के सिद्धांत स्वयं स्थिर किये। ये सिद्धांत मुझे इतने गुणकारी प्रतीत हुए है कि गत पंद्रह वर्षों से मैंने इनके सिवा दूसरे चिकित्सा सिद्धांतों का ग्रहण ही नहीं किया। पहले में चार दिन तक के उपवास किया करता था और उनके बीच में भी कभी-कभी एकाध सेब या और कोई फल खा लेता था। इसके बाद मैंने बिना किसी प्रकार के भोजन के एक सप्ताह तक रहना निश्चय किया। उपवास के पहले दिन मैं तौल में ढाई सेर और दूसरे दिन दो सेर घट गया। इसी प्रकार मेरा शरीर तौल में घटने लगा पर साथ ही उस घटने का मान भी घटता जाता था। यहाँ तक कि सातवें दिन मैं तौल में केवल आध सेर घटा। सब मिलाकर सात दिनों में मेरा शरीर साढ़े सात सेर घट गया था।

और लोग तौल में इससे अधिक घट सकते हैं पर मेरे कम घटने का मुख्य कारण यह था कि मैं नित्य खूब व्यायाम करता था। मैं रोज दस मील का

चक्कर लगाया करता था। इस बीच में उपवास के केवल दूसरे दिन मुझे सबसे अधिक दुर्बलता मालूम हुई थी। मैं सवेरे उठते ही टहलने चला जाता था। आरंभ में मुझे कुछ दुर्बलता मालूम होती थी पर दो एक मील चल चुकने के बाद वह दुर्बलता न रह जाती थी। किसी स्थान पर थोड़ी देर तक बैठ जाने के उपरांत उठने के समय भी मुझे कुछ अधिक घबराहट रही। मैं अपने नित्य के काम बराबर और नियमपूर्वक किया करता था। मानसिक परिश्रम करने में मुझे और दिनों की अपेक्षा कम कष्ट होता था और मेरा मस्तिष्क बिल्कुल स्वच्छ जान पड़ता था। पेट में जो थोड़ी बहुत गड़बड़ी होती थी वह बहुत सा ठंडा पानी पीने से शांत हो जाती थी। उपवास के छठे और सातवें दिन बड़े ही आराम से बीते थे। यद्यपि मैं समझता था कि थोड़े प्रयत्न से ही मैं और तीन चार सप्ताह तक उपवास कर सकता हूँ तथापि उद्देश्य पूरा हो जाने के कारण मैंने वैसा करने की आवश्यकता न समझी। चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खाने की हुई थी। साधारणतः इस प्रकार की भूख से बचने के लिए मन को किसी दूसरी तरफ लगा देने से बहुत लाभ होता है पर उस दिन मुझे कोई काम न था, दो चार दोस्तों से बातचीत करने के बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक जोर कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनागार में जाने के विचार से चल पड़ा। कुछ दूर चलने के बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और मैं भोजनागार में जाने के बदले पास की एक व्यायामशाला में चला गया और आधे घंटे तक मैंने वहां खूब कसरत की। उस समय उपवास छोड़ने की मेरी इच्छा एकदम जाती रही। अवश्य ही उन दिनों मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखे बहुत धँस गई थीं पर सातवें दिन मेरे शरीर में आश्चर्यनजक बल आ गया था। उपवास के मध्य से तो मैं केवल पचास पाउंड का डंबल ही उठाता था पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ, सत्तर और अंत में सौ पाउँड तक का डंबल उठा लिया फिर उसी दिन से मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करने से शरीर की सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।

मिस हाल नाम की एक महिला को एक बार लकवा मार गया था। जब अनेक प्रकार के औषधोपचार से उनका रोग अच्छा नहीं हुआ तब अंत में

उन्होंने चालीस दिनों तक उपवास किया इससे उनका शरीर एकदम निरोग हो गया। अपने उपवास के संबंध में वे लिखती हैं-

उपवास के अट्ठाईसवें दिन मुझे विशेष कष्ट हुआ था। मेरा बायाँ हाथ जिसे लकवा मारा गया था, अपेक्षाकृत बहुत अधिक सूख गया था और मुझे उसकी चिन्ताने आ घेरा था। उस समय वह बात मेरी समझ में न आई थी कि प्रकृति मेरे हाथ के रोग का नाश कर रही है।

उन्तालीसवें दिन डॉक्टर ने मेरी जीभ की परीक्षा की। उस दिन उसे मेरा शरीर बहुत ही स्वस्थ दशा में जान पड़ा। उस दिन उसने कह दिया कि अब तुम्हें भूखे रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। चालीस की संख्या पूरी करने के विचार से और एक दिन मैंने भोजन नहीं किया। उस अंतिम दिन में बड़े ही आनंद से रही और मैंने नित्य की अपेक्षा कहीं अधिक काम किया। इन चालीस दिनों में मैं तौल में प्राय: सत्ताईस पाउंड घट गई थी।

इकतालीसवें दिन मैंने आधा संतरा खाया पर वह आधा संतरा भी मुझे जबरदस्ती खाना पड़ा था क्योंकि उस समय मुझे तनिक भी भूख न थी। संतरे में भी मुझे कोई स्वाद न आता था। उसके दूसरे दिन से मुझे भूख लगने लगी और मैंने दो-दो घंटे के बाद आधा-आधा संतरा खाना आरंभ किया। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरी भूख बढ़ती गई। उपवास काल के बीतने के तीन सप्ताह बाद में इच्छानुसार सब चीजें खाने के योग्य हो गई। तबसे मेरा शरीर बहुत ही निरोग है और मेरे जिस हाथ को लकवा मार गया था उसमें पहले की अपेक्षा अधिक बल आ गया है।

प्राय: तीस वर्ष से अधिक हुए कि डाक्टर हेनरी एस.टैनर ने एक बार चालीस दिनों तक उपवास किया था। आपने अपने उपवास के आरंभिक पंद्रह दिनों तक जल भी नहीं पिया था। उपवास-चिकित्सकों का मत है कि भोजन के बिना तो मनुष्य जीवित रह सकता है पर जल के बिना उसके प्राण नहीं बच सकते। डॉक्टर टैनर ने अपने निज के अनुभव से इस सिद्धांत को भी बहुत से अंशों में खंडित कर दिया पर इसमें संदेह नहीं कि जिस दिन से उन्होंने पानी

पीना आरंभ किया था उस दिन से उनका बल बराबर बढ़ने लगा था। पहले ही जिस समय उन्होंने जल पिया था, एक समाचार पत्र के संवाददाता के साथ उन्होंने दौड़ने की शर्त लगाई थी। संवाददाता समझता था कि इतने दिनों तक निराहार रहने के कारण महाशय में दौड़ने की कौन कहें, चलने की भी शक्ति न होगी। इस तथा और भी कई कारणों से डॉक्टर टैनर के उपवास की यूरोप और अमेरिका में खूब चर्चा फैली थी। उपवास समाप्त करने के कुछ दिनों बाद डॉक्टर टैनर एकान्तवास करने के लिए किसी जंगल में चले गये थे। समाचार-पत्रों में उनकी मृत्यु का झूठा समाचार छप गया था पर हाल में डॉक्टर मैकफेडन ने उनके पास एक पत्र भेजकर उनसे प्रार्थना की थी वे उपवास के संबंध में अपना कुछ अनुभव लिख भेजें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार करके उपवास के बहुत से लाभ भी लिख भेजे थे। बहुत वृद्ध हो जाने पर भी वे अब तक बड़े ही हष्ट पुष्ट और निरोगी हैं।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेन ने जो एक बार भारत भी हो गये हैं, उपवास के सभी गुणों को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। उन्हें जब कभी जुकाम या बुखार होता था तभी वे तुरंत उपवास करते थे। उपवास-चिकित्सा संबंधी उनका लिखा हुआ 'All the Appetite Cure' नामक एक बहुत अच्छा ग्रंथ भी है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जब तक खूब भूख न लगे तक तक कभी भोजन न करना चाहिए। अमेरिका के अप्टन सिंक लेअर नामक सुप्रसिद्ध लेखक ने उपवास से बहुत कुछ लाभ उठाया है और यथासाध्य उसका समर्थन करके लोगों को उसके अनन्त गुण बतलाये हैं।

सबसे अधिक लंबा उपवास रिचर्ड फॉसेल नामक एक व्यक्ति ने किया था। इसने नब्बे दिनों तक किसी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं किया था। फॉसेल को भीषण रूप से जलोदर रोग हो गया था और उसके पैरों तक में बहुत सूजन आ गई थी। इस रोग के कारण उसका शरीर तोल में लगभग पाँच मन हो गया था। वह एक होटल का मालिक था पर शरीर के बहुत अधिक भारी और रोगी हो जाने के कारण वह चलने फिरने में नितांत असमर्थ हो गया था। जब वह सब

प्रकार के औषधोपचार से एकदम निराश हो गया तब उसने उपवास की शरण ली। एक बार उपवास करने के उपरांत वह अच्छा हो गया था पर उपवास के अंत में उसने भोजन करने में कई भारी भूलें की, जिससे वह फिर बीमार हो गया। उस समय उसका शरीर तौल में घटकर प्राय: पौने चार मन रह गया था। दूसरी बार उसने नब्बे दिनों तक उपवास किया। उसके ये दोनों उपवास डॉक्टर मैकफेडन की देख-रेख में हुए थे। इतने अधिक दिनों का उपवास शायद ही किसी ने आज तक किया हो। अपने उपवासकाल का अधिकांश उसने या तो काम करने में या व्यायाम करने में ही बिताया था। दूसरे उपवास के आरंभिक चालीस दिनों तक वह नित्य पंद्रह मील पैदल चला करता था और इसके अतिरिक्त बहुत कुछ कसरत भी करता था। भूख के कारण उसे केवल पहले सप्ताह में ही कुछ अधिक कठिनता और बैचेनी हुई थी इसके बाद उसे कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद उसे फिर कभी भूख लगी ही नहीं। उपवास काल में वह नित्य पाँच छ: बड़े-बड़े गिलास पानी के पीता था और कभी-कभी उनमें दो चार बूंद नींबू का रस भी छोड़ लेता था। उपवास समाप्त करने के उपरांत भी तीन चार दिन तक पेट में किसी प्रकार का भोजन न ठहरता था। इसके बाद धीरे-धीरे उसे भोजन पचने लगा और उसका शरीर बिल्कुल निरोग और आगे से बहुत हल्का हो गया।

इस अवसर पर हम दो एक ऐसे उदाहरण भी दे देना चाहते हैं, जिनसे यद्यपि उपवास के दैनिक क्रम आदि का तो पता नहीं चलता पर उसकी सर्वश्रेष्ठ उपयोगिता का पता अवश्य लगता है। सन् १९०३ ई. में अमेरिका में एक मनुष्य को अचानक एक रिवाल्वर के छूट जाने से गोली लग गई और वह गोली उसके गुरदे, जिगर और दाहिने फेफड़े को चिरती तथा पाँच पसलियाँ तोड़ती हुई निकल गई। बड़े-बड़े डॉक्टरों ने उसे देखकर कह दिया था कि यह किसी प्रकार नहीं बच सकता और थोड़ी ही देर में मर जायेगा पर वह मनुष्य उपवास-चिकित्सा का पक्षपाती था, इसलिए उसने दस दिनों तक बिल्कुल कुछ न खाया। इस बीच में प्रकृति को उसे चंगा करने का समय मिल गया और वह एक मास के उपरांत बड़े आनंद से चलने फिरने के योग्य हो गया। इसी प्रकार

एक आदमी को रेल में घुटना दब जाने के कारण बहुत बड़ी चोट आ गई थी। डॉक्टरों ने महिनों उसके शरीर में पिचकारीयों से अफीम तथा दूसरे मादक द्रव्य पहुँचाये, बराबर व्हिस्की और दूध का सेवन कराया और पसेरियों दवाईयां उसके पेट में उतार दीं पर किसी से कुछ भी फल न हुआ और वह मनुष्य तौल में पैंतालीस सेर घट गया। अंत में डॉक्टरों ने निराश होकर उसकी चिकित्सा छोड़ दी और तब वह उपवास-चिकित्सा के पाले पड़ा। पाँच मास तक बिना किसी प्रकार के अन्न के रहकर अंत में वह मनुष्य सब प्रकार से निरोग और हट्टा-कट्टा हो गया।

इसी प्रकार और भी सैकड़ों हजारों ऐसे आदमियों के वर्णन दिये जा सकते हैं जो चालीस-चालीस और पचास-पचास दिनों तक उपवास करके अजीर्ण, बवासीर, गरमी, कण्ठमाला, ताल-तिल्ली आदि सब तरह के रोगों से मुक्त हो गये हैं। यदि उन सबके विवरण संग्रह किये जायें तो एक बहुत बड़ा पोथा हो सकता है। अंग्रेजी में यह पोथा प्राय: तीन हजार पृष्ठों में मौजूद भी है, जिसमें हमारों रोगियों के विवरण के अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे रोगियों के चित्र भी हैं जिन्हें बड़े-बड़े डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था और जो केवल उपवास की सहायता से ही बिल्कुल चंगे और निरोग हो गये हैं।

उपवास- काल में भय के चिह्न

साधारणतः उपवासकाल में किसी प्रकार का भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है। डॉ. मैफफेडन जोर देकर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियों में से जिन्हें मैंने लंबे-चौड़े उपवास कराये, एक भी नहीं मरा और प्रायः प्रत्येक दशा में उपवास से सदा लाभ ही हुआ, हानि कभी नहीं हुई तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हों उन्हें भय के चिन्हों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

उपवास-काल में कभी तो रोगी की नाड़ी बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी। यदि साधारणतः नाडी एक मिनट में ६० से ९० बार तक चलती हो तब तो किसी प्रकार की चिंता की बात नहीं है पर यदि वह इससे कम या अधिक चले और उपवास करने वाला किसी योग्य डॉक्टर की देख-रेख में न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह अपना उपवास छोड़ भी सकता है।

उपवास-काल में यह विश्वास मन से एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजन के मनुष्य का शरीर चल ही नहीं सकता। इस विश्वास के कारण कभी-कभी बहुत हानि हो जाती है। उपवास-काल में बहुत लोगों का जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने लगती है। बहुत से अंशों में इसका मुख्य कारण उक्त मिथ्या विश्वास ही हुआ करता है। दुर्बल हृदय के लोगों पर इस विश्वास का और भी बुरा प्रभा पड़ता है। उस बुरे प्रभाव से बचने के लिए उपवास-काल में इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मन सब प्रकार से संतुष्ट और शांत रहे, उसमें किसी प्रकार की उद्विग्नता या चिंता न हो। उपवास काल में जिस रोगी का मन इस स्थिति में रहता है, उसे उपवास से बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत शीघ्र निरोग हो जाता है।

उपवास काल में यद्यपि शरीर बहुत दुर्बल और कृश हो जाता है तथापि इससे भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। बहुधा यह दुर्बलता उन्हीं विषों के कारण होती है जो रोगी के रक्त में मिले हुए होते हैं। यदि कसरत करने और खूब

घूमने, फिरने या टहनले से भी यह दुर्बलता कम न हो और रोगी के हरदम बिस्तर पर पड़े रहने की नौबत आ जाये तो उस दशा में उपवास छोड़ देना ही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि वास्तव में यह निर्बलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती तो भी यदि रोगी किसी योग्य डॉक्टर की देख-देख में न हो तो उपवास छोड़ देना ही बुद्धिमत्ता है।

डॉ.मैकफेडन के चिकित्सालय में बहुत से ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगों ने केवल अपनी इच्छा के कारण ही आवश्यकता से अधिक दिनों तक उपवास किया था। उनमें से अधिकांश को उपवास से लाभ के बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवासकाल में पहले शरीर के अनावश्यक और फालतू पदार्थ हमारी जठराग्नि की नजर होते हैं और तदुपरांत शरीर के आवश्यक पदार्थों की बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थों का नाश आरंभ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जब तक मनुष्य मीलों के चक्कर लगाने और खूब कसरत करने के योग्य रहे उसके शरीर का बल बराबर बना रहे तब तक उपवास जारी रखना चाहिए पर जब शरीर का बल घटने लगे तब तुरंत उपवास छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लंबे उपवास के बाद भोजन आरंभ करने में भी बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। उपवास जितने ही अधिक दिनों का हो, उसके छोड़ने पर भोजन भी उतनी ही अल्प मात्रा में होना चाहिए। उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए, इस विषय में अधिक बातें आगे चलकर कही जायेंगी। पिछले पृष्टों में पाठक मिस हाल का विवरण पढ़ चुके होंगे जिन्होंने चालीस दिनों तक उपवास करके लकवे से छुटकारा पाया था। मिस हाल ने उपवास छोड़ने के बाद अपना भोजन आधे संतरे से आरंभ किया था पर उनका पक्वाशय उतना भोजन पचाने में भी समर्थ न था, इसलिए उन्हें कुछ समय तक कष्ट उठाना पड़ा था। मि.मैकफेडन ने उनकी दशा देखकर यह सिद्धान्त निकाला था कि उन्हें अथवा उनके समान लंबे उपवास करने वाले दूसरे रोगियों को जिनका पक्वाशय बहुत अच्छी दशा में न हो- आधे संतरे में नहीं बल्कि आधे

संतरे के रस मात्र से भोजन आरंभ करना चाहिए। उचित समय तक उपवास करने से कभी कोई हानि नहीं होती। हानि उसी समय होती है जब उपवास छोड़ने के समय भोजन का उचित ध्यान न रखा जाय और उसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम हो। उपवास-काल में यदि भय का कोई चिह्न हो तो एलोपैथिक या होमियोपैथिक चिकित्सा करने वाले डॉक्टर्स से सलाह लेने की अपेक्षा स्वयं अपनी बुद्धि से काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वयं हमारी प्रकृति ही हमारी सबसे बड़ी रक्षक और शुभचिंतक है। बहुधा वही हमें समय पर हमारा कर्तव्य बतलाती रहेगी। भय के अधिक चिह्न उसी दशा में उत्पन्न होंगे जब कि उपवास अधिक दिनों तक किया जायेगा। साधारणत: कभी अधिक दिनों का उपवास न करना चाहिए। सब प्रकार के भय के चिह्नों से बचने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य उसका आरंभ बहुत थोड़े से करें। यदि मनुष्य का शरीर साधारणत: स्वस्थ रहता हो पर उसके अंदर कोई रोग हो तो उसे उचित है कि पहले महीने वह एक या दो दिन तक उपवास करें। तीन चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करने के उपरांत वह तीन चार दिनों तक उपवास करें। इस प्रकार साल दो साल बाद वह आठ दस दिन तक का उपवास करने को योग्य हो जायेगा। उस दशा में किसी प्रकार के भय के चिह्नों के उत्पन्न होने का कोई कारण न रह जायेगा। यह तो हुई साधारणत: स्वस्थ और निरोग मनुष्यों की बात पर यदि मनुष्य को अचानक कोई भारी रोग आ घेरे तो केवल उस रोग के कारण ही वह आठ दस दिनों तक निराहार रह सकता है और उसके शरीर में भय का कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवास का लक्षण यह है कि मनुष्य का मन बहुत ही स्वच्छ और संतुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकार की घबराहट या बैचेनी आदि न हो। यदि मन में प्रसन्नता के बदले घबराहट या बैचेनी हो और इच्छा-शक्ति निर्बल पड़ती जाये तो उपवास काल में बहुत सावधानी से रहना चाहिए और यदि उस प्रकार रह सकना असंभव हो और किसी योग्य उपवास-चिकित्सक की सम्मति भी न मिल सकती हो तो उपवास छोड़ देना ही उत्तम है।

नींद और प्यास

जो लोग उपवास करते हैं उन्हें प्राय: नींद बहुत कम आती है। बहुधा ऐसा जान पड़ता है कि सारे शरीर के ज्ञान-तंतुओं में तनाव आ गया है या खींचातानी हो रही है। मनुष्य को निद्रा उसी समय आती है जबकि उसका सारा शरीर सब प्रकार के तनाव से छुटकारा पा जाय और आराम में हो पर ज्ञान-तंतुओं के व्यतिक्रम के कारण शरीर को आराम नहीं मिलता और फलत: मनुष्य को नींद भी नहीं आती। ऐसी अवस्था में मनुष्य को उचित है कि वह जल पीए। जल ठंडा हो या गरम, यह पीने वाले की इच्छा और मुँह के स्वाद पर निर्भर है। यदि जल पीने से कुछ लाभ न हो तो उचित और आवश्यक जान पड़ने पर गरम पानी से नहा लेना चाहिए। नहाने से उस समय के शारीरिक कष्ट दूर हो जायेंगे और शरीर को आराम मिलने के कारण नींद आवेगी। यदि नहाने का मौका न हो तो निचोड़े हुए गीले अंगोछे की तहें लगाकर और उसे किसी तौलिये आदि में इस प्रकार लपेटकर कि उसका पानी बिछौने पर न पड़े, छाती, पेट और जाँध पर रखना या फेरना चाहिए। उपवास-काल में नींद न आने का मुख्य कारण यह है कि उस समय शरीर में रक्त का संचार बहुत ही कम होता है। कभी-कभी पैर बिल्कुल ठंडे हो जाते हैं और भारी कपड़ों से ढ़कने पर उनमें आवश्यक गरमी नहीं आती। उस समय पैरों पर या तो खूब गरम कपड़ा या कोई भारी तकिया रख लेना चाहिए। यदि उससे भी अभीष्ट सिद्धि न हो तो बोतल में गरम पानी रखकर और उसे कपड़े से लपेटकर पैरों पर फेरना चाहिए, इससे तुरंत पैरो में गरमी आ जायेगी। उस समय पैरों में खून खिंच जावेगा और तुरंत नींद आने लगेगी। जो लोग उपवास न करते हों वे भी नींद न आने और पैर ठंडे हो जाने के समय यह उपाय कर सकते हैं। नींद न आने के कारण बहुत से तड़फड़ाने वाले रोगी इस उपाय से थोड़ी ही देर में गहरी नींद में सो जाते हैं।

इस अवसर पर यह बात भी भूल न जानी चाहिए कि उपवास काल में बहुत अधिक नींद आने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। उपवासकाल में शारीरिक शक्तियों को किसी प्रकार का भोजन नहीं पचाना पड़ता और न कोई

परिश्रम ही करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे शिथिल नहीं होती। अधिक निद्रा की आवश्यकता उसी समय होती जबकि सब शारीरिक शक्तियाँ शिथिल हों। साधारणत: जिन लोगों को सात या आठ घंटो तक सोने की आवश्यकता होती हो, उपवास काल में उनके लिए केवल चार से छ: घंटे तक की निद्रा भी यथेष्ट होती है। यदि उपवास काल में किसी को नियमित रूप से कुछ ही कम नींद आवे तो उसे नींद बढ़ाने के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न न करना चाहिए। उपवास-काल में जल अधिक परिमाण में पीना चाहिए। यदि उपवास करने वाला स्वच्छ और यथेष्ट जल पीए तो उपवास काल में होने वाली बहुत सी कठिनाईयों से बचा रहेगा। अधिक और उत्तम जल पीने से उसके शरीर के भीतरी भाग मानों अच्छी तरह से धुलते रहेंगे और उनमें जो कुछ दूषित पदार्थ होंगे वे सब बाहर निकलते रहेंगे। जिसकी जीभ खराब हो जाये, मुँह का स्वाद बिगड़ जाय या साँस में बहुत बदबू आती हो, उसके लिए तो अधिक पानी पीने की और भी विशेष आवश्यकता है। जिस मनुष्य के पाचन-क्रिया करने वाले अवयवों को किसी प्रकार का भोजन ग्रहण और पाचन न करना पड़ता हो और जिसका शरीर बहुत से विषों और दूषित पदार्थों से भरा हो उसे अवश्य ही अधिक जल पीना चाहिए क्योंकि बहुधा विष और दूषित पदार्थ आकर पेट में ही इकट्ठे होते हैं। अधिक पानी पीने से वे सब विकार सहज में ही शरीर के बाहर निकल जाते हैं। यदि कभी-कभी पानी में दो चार बूंद नींबू का रस छोड़ दिया जाये तो और भी अधिक लाभ होता है। शरीर के भीतरी अवयवों पर विकारों के कारण जो पपडियाँ सी जम जाती है, नींबू के रस से वे सहज में ही अपना स्थान छोड़ देती हैं और जल उन्हें बाहर निकालने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त जल पीने से एक और लाभ यह भी होता है कि उपवास करने वाले का शरीर तौल में बहुत अधिक नहीं घटता। यदि हर एक घंटे के बाद एक गिलास स्वच्छ जल पी लिया जाये तो बहुत ही उत्तम है। यदि इतना पानी न पिया जा सके तो कम से कम बैचेनी होने या भूख मालूम पड़ने पर तो अवश्य ही ठंडा और साफ जल पी लेना चाहिए। इससे उदर और शरीर को बहुत कुछ शांति मिलेगी और उपवास काल सहज में ही बिताया जा सकेगा। इसलिए

उपवास करने वाले को उचित है कि वह जहाँ तक अधिक पानी पी सके वहाँ तक पीए।

आहार-काल में भी बहुत से डॉक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजन के साथ कभी जल न पीना चाहिए पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणतः सब लोगों को और विशेषतः उपवास कर चुकने वाले लोगों को भोजन के साथ और उसके उपरांत बीच-बीच में भी यथेष्ट जल का व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँ के वैद्यक शास्त्र में जल को अमृत कहा है और उसके विषय में यह बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशा में कोई हानि नहीं होती। बहुत से डॉक्टर्स वैद्य और हकीम आदि ज्वर काल में अपने रोगियों को पानी नहीं पीने देते पर यह बड़ी भूल है। बहुधा बहुत अधिक पानी से और कुछ विशेष दशाओं में थोड़े पानी से बहुत ही लाभ होता है पर पानी न पीना सदा हानिकारक ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और निरोगी, अशक्त और सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जल का खूब सेवन करना चाहिए। अन्न की अपेक्षा जल में कहीं अधिक संजीवनी शक्ति होती है। जल सदा शरीर को लाभ ही पहुँचाता है हानि नहीं।

जल के अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास काल में जिसका व्यवहार करने से बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शुद्ध और साफ की हुई रेत। यह रेत थोड़ी-थोड़ी मात्रा में उपवास काल में फाँकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फाँकने का नाम सुनकर हँस पड़ेंगे और यह बात है भी बहुत से अंशों में हँसी आने योग्य ही पर वास्तव में रेत फाँकने का शरीर पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। रेत फाँकने के गुणों की जानकारी पहले पहल बोस्टन नगर के प्रो.विलियम विंडरसर ने प्राप्त की थी।

* उन्होंने यह सिद्धांत निकाला था कि मनुष्य के अतिरिक्त प्रायः सभी

* अवध प्रांत में रेत फाँकने की प्रणाली बहुत पहले से प्रचलित है। यह एक धर्म की बात समझी जाती है कि लोग गंगाजी की रेणु का फाँके। बहुत से असाध्य उदर रोगों में गंगाजल और गंगाजी की रेणु का सेवन की जाती है और इससे रोग आराम हो जाते हैं। हमारी ग्रंथमाला के एक प्रेमी पाठक श्रीयुत बनारसीदासजी अग्रवाल ने हमें इस बात की सूचना देने की कृपा की है।

जानवर अपने भोजन में थोड़ी बहुत रेत सदा और अवश्य मिला लेते हैं। उस रेत से उनकी भोजनवाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और इसके कारण भोजन गुठलों में बंधकर कब्जियत नहीं उत्पन्न कर सकता। स्वयं डॉक्टर मैकफेडन ने यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था क्योंकि रेत को कोई मनुष्य का स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता है पर जब डॉक्टर महाशय ने लगातार तीन वर्षों तक हजारों रोगियों को उसका व्यवहार कराया तब उसके गुणों के संबंध में उनका आश्चर्य और भी बढ़ गया। हजारों में से एक रोगी भी ऐसा न निकला जिसे रेत के व्यवहार से किसी प्रकार की हानि पहुँची हो।

फाँकने के लिए रेत ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने गोल और खुरदरे हो, जो पानी में न घुल सके और जो बहुत साफ हो जिस रेत के दाने नुकीले या धारदार हों उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे शरीर के भीतरी कोमल भागों पर रगड़ लगती है इसके अतिरिक्त वैसी रेत के दाने परस्पर एक दूसरे के साथ मिल जाते है पर गोल दाने परस्पर एक दूसरे से अलग रहते हैं और वे ही हमारी कब्जियत दूर कर सकते हैं। उनसे बिना किसी प्रकार की कठिनाई या कष्ट के हमारी अँतडियाँ आदि बिल्कुल साफ और मल रहित हो जाती हैं। इस स्थान पर कदाचित यह बतलाने की कोई आवश्यकता न होगी कि फाँकने के लिए रेत बहुत ही साफ होनी चाहिए। सफेद रेत की अपेक्षा भूरे काले रंग की रेत बहुत अच्छी होती है। यदि रेत साफ न हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। खूब खौलते हुए गरम पानी में उबालने से रेत साफ हो जाती है। साधारणत: दिन भर में एक से तीन चम्मच तक रेत फाँकी जा सकती है। रेत फाँकने के उपरांत ऊपर से बहुत सा स्वच्छ जल पीना चाहिए। उपवास न करने वाले लोगों को भी यदि बहुत कब्जियत हो तो वे थोड़ी सी रेत फाँक कर और ऊपर से स्वच्छ जल पीकर अपनी कब्जियत दूर कर सकते हैं। कब्जियत दूर करने का यह बहुत ही सादा और सर्वोत्तम उपाय है।

उपवास-काल में एनिमा

एनिमा उस क्रिया का नाम है जिससे गुदा के मार्ग से अँतडियाँ तथा पेट के दूसरे भीतरी भाग धोये जाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सक बहुधा इसका व्यवहार करते हैं और कुछ विशेष प्रकार की पिचकारियों से औषधि मिश्रित जल गुदा-द्वारा पेट में पहुँचाते हैं। इन पिचकारियों को ही एनिमा कहते हैं। अंग्रेजी दवा बेचने वालों के यहाँ दो तीन रुपये में एनिमा मिलता है। इस क्रिया से पेट और पेडू आदि में फँसा हुआ सारा दूषित और गंदा मल बाहर निकल जाता है और रोगी की दशा बहुत सुधर जाती है। कब्जियत और अँतडियों की दूसरी बीमारियों के समय प्राय: इसका व्यवहार होता है। हम पहले कह आये हैं कि शरीर को निरोग और शुद्ध करने के लिए जहाँ तक हो सके प्रकृति के नियमों से काम लेना चाहिए। अप्राकृतिक नियमों से काम लेने का परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमा का विधान बतलाने के कारण हम पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं पर इस संबंध में केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाब की गोलियाँ या अरंडी के तेल आदि की तरह एनिमा का कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीर में अधिक समय तक स्थायी रूप से रहकर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशा में उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभों का वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्य के निरोग होने का सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पैखाना साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकार की कब्जियत हो तो यही माना जायेगा कि अभी उसके शरीर में कुछ रोग बाकी है। एनिमा के व्यवहार से मनुष्य की कब्जियत बहुत ही सरलतापूर्वक- बिना उसे किसी प्रकार की हानि पहुँचाये दूर हो जाती है और उसका मलमार्ग बहुत ही सहज में साफ हो जाता है। हमारी आँतों में यह गुण है कि वे सदा फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचने के उपरांत जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहता है वह आँतों की इसी फैलने और सिकुड़ने वाली क्रिया के कारण मल रूप में हमारे शरीर के बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरंभ करता है, उस समय भोजन के अभाव के

कारण आँतों का सिकुड़ना और फैलना बंद हो जाता है जिसके कारण मल हमारे शरीर से बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतों के ऊपर का मल ऊपर ही रह जाता है और उस मल को सरलतापूर्वक बाहर निकालने के लिए एनिमा का उपयोग लाभदायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमा से और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीर में हरदम जो तरह-तरह के विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवास-काल में भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहन न निकाले जायें तो उनका दुष्परिणाम सारे शरीर पर और विशेषत: रोगग्रस्त अंगों पर पड़ता है। एनिमा से उन विषों को बाहर निकालने में भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक जल पीने से तो शरीर का ऊपरी भाग स्वच्छ होता रहता है और एनिमा लेने से पेट, पेडू और आँतो आदि की सफाई होती रहती है। * अधिक जल पीने और एनिमा लेने वाले उपवासकारियों की साँस बहुत साफ हो जाती है और उनकी जीभ पर जमी हुई पपड़ी छूट जाती है और उनकी जीभ की रंगत ठीक वैसी ही गुलाबी हो जाती है, जैसी किसी छोटे निरोग बालक की जीभ होती है। साँस में किसी प्रकार की बदबू नहीं रह जाती और मुँह का स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

* एनीमा लेने की विधि हमारे यहाँ से प्रकाशित ''विद्यार्थियों का सच्चा मित्र'' नामक पुस्तक में देखिए।

कुछ ज्ञातव्य बातें

बहुत संभव है कि कुछ लोग उपवास करने को बड़ा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होने का प्रयत्न करें। ऐसे लोगों से हमारा निवेदन है कि उपवास के लिए पहले से कभी किसी प्रकार की तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहले से उपवास के उद्देश्य से ही लंबी चौड़ी कसरतें करने की आवश्यकता है और न खाने-पीने में कोई बड़ा परहेज करने की ही। उपवास एक बहुत ही सीधी सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगने पर जल पीने के लिए किसी प्रकार के सोच विचार की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोग ग्रस्त होने पर उपवास करने के लिए भी किसी प्रकार का सोच विचार न होना चाहिए। उपवास के आरंभ में केवल मन को शांत और अविकल रखने की आवश्यकता होती है। जहाँ मन की उपवास संबंधी उद्विग्नता का नाश हुआ वहाँ उपवास में फिर और किसी प्रकार की अड़चन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-काल में किसी प्रकार की औषधि आदि का कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रिया का व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लकवे के एक रोगी ने चालीस दिनों का उपवास किया था। उपवास के अंत में उसे शरीर के एक ऐसे अंग में कुछ पीड़ा पड़ी जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी। मंगल के दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवार के दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उपवास छोड़ने के दूसरे ही दिन वह एक डॉक्टर के पास चला गया था, जिसने उसे औषधि के अतिरिक्त कुछ दूध और फलों का रस भी दिया था और उसकी मृत्यु इसी कारण से हुई थी। उपवास करने वालों को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-काल में और उसके उपरांत शरीर की हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है उस दशा में औषधियों आदि का शरीर पर बहुत ही भयंकर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगों की चिकित्सा औषधि आदि से करते हैं बहुधा औषध छोड़-देने पर उनके रोग फिर से उन्हें कष्ट देने लगते हैं पर उपवास की सहायता से निरोग हो जाने पर रोग के फिर से उभड़ आने की कभी कोई संभावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करने के कुछ दिनों बाद यदि वह फिर औषधियों का सेवन आंरभ कर दे तो अवश्य ही वह फिर से रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दें तो क्या उससे हमें लाभ न होगा? इसका उत्तर यही है कि बहुत छोटे और साधारण रोगों में तो थोड़े भोजन से अवश्य लाभ होता है पर तीव्र और भयंकर रोगों के समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि रोगी होने पर हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीर की अपेक्षा रोग का ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोग को पालने की अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। बहुत से लोगों ने बहुत दिनों तक थोड़ा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि उपवास करने की अपेक्षा थोड़ा भोजन करके रहना बहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवास में तो केवल दो तीन दिनों तक ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मर जाती है तब मनुष्य बड़े-सुखपूर्वक रहता है पर थोड़ा-भोजन करने वालों का कष्ट सदा बना रहता है। थोड़ा भोजन करने से भूख बढ़ती है और तब मनुष्य को विवश होकर अधिक भोजन करना ही पड़ता है। अप्टन सिंक्लेअर ने एक बार केवल थोड़े से फल खाकर ही कुछ दिनों तक रहना निश्चय किया था पर उस काल में उन्हें इतनी अधिक दुर्बलता जान पड़ने लगी, जितनी उपवास-काल में कभी नहीं जान पड़ती थी। इसलिए थोड़ा भोजन करके रहना कष्टदायक भी है और व्यर्थ भी। जो लोग एकदम उपवास न कर सकते हों वे पहले महीने में एक या दो दिन का ही उपवास करें और इसी प्रकार उपवास का अभ्यास बढ़ाते जायें तो अवश्य ही फायदे में रह सकते हैं।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि मनुष्य को उपवास-काल में अपना नियमित काम धंधा करना चाहिए या नहीं। जिस प्रकार और बातों में कुछ शर्तें होती हैं उसी प्रकार इसमें भी कुछ खास शर्तें हैं। जिस मनुष्य की जीवन शक्ति

बहुत ही घट गई हो, वह यदि अधिक समय तक या कठिन और भारी काम करेगा तो अवश्य ही उसके शरीर पर उनका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। तथापि ऐसे मनुष्य को कुछ टहलना फिरना या थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य बिछौने पर से भी न उठ सकता हो वह भी बिछौने पर पड़ा-पड़ा ही अपने शरीर को इधर उधर हिला डुला सकता और इस प्रकार व्यायाम से होने वाला थोड़ा बहुत लाभ उठा सकता है पर जिस मनुष्य के शरीर में थोड़ी बहुत शक्ति हो उसके लिए यथासाध्य अपने काम-काज में लगा रहना ही अधिक उत्तम है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि प्रत्येक दशा में मन की स्थिति का शरीर पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस मनुष्य का मन काम में लगा रहेगा उसका शरीर बहुधा ठीक दशा में ही रहेगा। मन को इधर-उधर भटकाने से बचाने और कृत्रिम भूख के फेर में न पड़ने के वास्ते काम धंधे से बहुत अच्छी सहायता मिलती है। खाली बैठे रहने वाले लोग कृत्रिम भूख के फंदे में फँसकर अपना उपवास छोड़ भी सकते हैं। बहुत ही प्रबल इच्छा शक्तिवाले लोगों के लिए भी काम धंधे में लगे रहना बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है। उपवास-काल में जहाँ तक हो सके हाथों, पैरों और मन को किसी न किसी काम में लगाए रखना चाहिए। इस अवसर पर यह बतला देना भी आवश्यक है कि गरमी के दिनों में उपवास करना बहुत कठिन होता है। उस समय मनुष्य बहुत ही निबल हो जाता है। जाड़े में उपवास तो अवश्य अच्छी तरह हो सकता है पर उन दिनों कठिनता यह होती है कि मनुष्य को भूख अधिक लगने लगती है पर यदि आरोग्य पर पड़ने वाले प्रभाव के विचार से देखा जाय तो जाड़े के दिन ही अधिक उत्तम ठहरते हैं क्योंकि अनुभव से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गरमी में तीन दिनों तक उपवास करने से शरीर की जितना लाभ पहुँचता है, जाड़े में उतना ही लाभ केवल दो दिनों में होता है।

बड़ा और छोटा उपवास

उपवास दो प्रकार के होते है। एक उपवास तो बहुत दिनों का और दूसरा उपवास थोड़े दिनों का होता है। जो लोग बहुत दिनों के उपवास को उत्तम बतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते- वे यह नहीं बतलाते की अधिक से अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवास की अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह बतला देती है कि हम एक सप्ताह तक निराहार रहें या एक मास तक। उनका यह भी मत है कि जब तक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे तब तक भोजन न करना चाहिए। भोजन की वास्तविक रुचि या असली भूख की निशानी साधारण और अभ्यास जन्य रुचि से कुछ भिन्न प्रकार की होती है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के सामने और सब प्रकार के प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं उसी प्रकार वास्तविक क्षुधा के सामने कृत्रिम और किसी प्रकार की क्षुधा बिल्कुल ही तुच्छ लगती है। उपवास करने वालों को वास्तविक भूख और खाने की इच्छा मात्र का भेद तुंरत मालूम हो जाता है। इस सिद्धांत की सत्यता के प्रमाण स्वरूप वे लोग उपस्थित किये जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नब्बे दिनों तक के उपवास किये हैं।

साधारण रोगों के समय यही बात ठीक जान पड़ती है कि जब तक रोग का जोर बिल्कुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भूख न लगे तब तक उपवास बराबर जारी रखना चाहिए। जिन लोगों की जीवन की शक्ति बहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण अधिक दिनों तक उपवास न कर सकते हों, वे बड़े-बड़े उपवास न करके छोटे-छोटे उपवासों से ही बहुत कुछ लाभ उठा सकते है। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि छोटे उपवास करके बिल्कुल निरोग और स्वस्थ होने में बहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समय तक विशेष सावधान रहने की आवश्यकता होती है। बड़े और छोटे उपवास के गुण और लाभ अप्टन सिंक्लेअर ने बड़ी ही उत्तमता से बतलाये हैं। इस अवसर पर उन्हीं का सारांश देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता

है। आप कहते हैं-

बहुधा लोग प्रश्न किया करते हैं कि कितने दिनों तक उपवास करना चाहिए और यह किस प्रकार मालूम हो सकता है कि अब उपवास छोड़ने का समय आ गया। मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका। मैंने दो बार बारह-बारह दिनों के उपवास किये हैं। दोनों बार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था। इसका कारण यह था कि मैं बारह दिनों में ही बहुत दुर्बल हो गया था और मेरी बहुत इच्छा होती थी कि मेरा शरीर बहुत जल्दी फिर से पहले की भाँति सबल हो जाये। यद्यपि उन बारह दिनों तक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी तो भी कई डाक्टर्स ने मुझसे कहा था कि इन बारह दिनों के उपवास से ही तुम्हें बहुत कुछ लाभ पहुँच चुका है और बात भी वास्तव में कुछ ऐसी ही थी। मेरी समझ में पाचन शक्ति के मंद पड़ने, आँतो में मल जमा होने, सिर में दर्द रहने, कब्जियत होने अथवा इसी प्रकार की और दूसरी साधारण छोटी-मोटी शिकायतों के लिए दस बारह दिनों का उपवास बहुत ठीक होता है पर जिन लोगों को नासूर, गरमी, बवासीर, गठिया आदि भारी और भयंकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनों तक उपवास करना चाहिए।

यदि कोई मनुष्य एक बार उपवास आरंभ करे और उपवास-काल में उसे किसी प्रकार की कठिनता या कष्ट बोध न हो तो उसे यथासाध्य कुछ अधिक समय तक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए। लोगों को केवल अपना सामर्थ्य दिखलाने, अपना कौतुहल शांत करने या दिल्लगी देखने के लिए कभी बड़ा उपवास न करना चाहिए। बार-बार छोटे या बड़े उपवास करना भी ठीक नहीं। यदि किसी को कई बार बराबर उपवास करने की आवश्यकता जान पड़े तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी बहुत बुरी आदत या क्रिया के कारण उसका शारीरिक संगठन बिलकुल बिगड़ गया है। ऐसी दशा में उसे सब प्रकार के अनुचित कार्यों और अभ्यासों को सदा के लिए छोड़कर तब उपवास करना चाहिए। जो लोग दुबले पतले हों उन्हें अधिक दिनों तक कदापि उपवास न करना चाहिए। अधिक दिनों तक उपवास करने की शक्ति का आधार मनुष्य के शरीर को मोटाई है। जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीर

में जितना ही अधिक फालतू द्रव्य संग्रहित होगा, वह उतना ही लंबा उपवास कर सकेगा। जब तक मनुष्य का स्वयं यह निश्चय न हो जाये कि मुझे केवल बड़े उपवास से ही लाभ होगा तब तक उसे कभी अधिक दिनों तक उपवास न करना चाहिए। जिसे इस विषय में तनिक भी शंका हो उसे सदा थोड़े दिनों का उपवास करना ही उचित है। यदि थोड़े दिनों के उपवास का अनुभव प्राप्त करने के उपरांत भविष्य में उसे किसी प्रकार का भय या संकट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवास को कुछ अधिक दिनों तक जारी रख सकता है अथवा आवश्यकता पड़ने पर एक बार उपवास छोड़कर दूसरी बार अधिक दिनों का उपवास कर सकता है।

छोटे बच्चों के लिए उपवास

छोटे बच्चों को उपवास से इतने अधिक लाभ होते हैं जितने वयस्क पुरुषों को नहीं होते। दूध मुँह और पालने में झूलने वाले बच्चों से लेकर १४-१५ वर्ष तक की अवस्था के बच्चों के लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है। बालकों को बहुधा छोटी-मोटी बीमारियां हो जाया करती हैं। यदि माता-पिता में इतना साहस और विश्वास हो कि बालक को किसी प्रकार का छोटा-मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बंद कर दें तो वे रोग देखते ही देखते आश्चर्यजनक रूप से दूर हो जायेंगे। जुकाम और खाँसी से लेकर बड़े-बड़े भयंकर ज्वरों तक सब रोग इस प्रकार बहुत ही सहज में दूर किये जा सकते हैं।

इस अवसर पर बड़े उपवास के संबंध में यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि चार-छह दिन से अधिक लंबा उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषतः उपवास-चिकित्सक की सम्मति और देख-रेख के कदापि न करना चाहिए क्योंकि कभी-कभी उसके संबंध में पूर्ण नियम आदि न जानने अथवा उनके पालन न करने से बहुत कुछ हानि की संभावना है। जो लोग अधिक लंबा उपवास करना चाहते हों, उन्हें उचित है कि वे किसी उपवास चिकित्सक की सम्मति लेकर अथवा अपने ही नगर के किसी योग्य चिकित्सक की देखरेख में रहकर उपवास करें।

बालकों का शारीरिक संगठन ही इतना उत्तम और आरोग्यवर्द्धक होता है कि उन्हें कभी किसी प्रकार की औषधि की आवश्यकता ही नहीं होती। ज्यों ही किसी बालक को कोई रोग हो त्यों ही उसका भोजन बंद कर दो, उसे केवल स्वच्छ जल पीने के लिए दो और उसे उसकी प्रकृति पर छोड़ दो और तब देखो की वह कितनी जल्दी निरोग और स्वस्थ हो जाता है। इस संबंध में तनिक भी भय या चिंता का कभी कोई कारण नहीं है क्योंकि इससे बढ़कर आश्चर्यजनक और रामबाण चिकित्सा हो ही नहीं सकती। जो माता पिता एक दो बार भी इस चिकित्सा की परीक्षा करेंगे, वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरों के व्यर्थ भय आदि पर हँसने लगेंगे।

यदि किसी बालक के रोगी होने पर महीनों तरह-तरह की औषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य बिल्कुल बिगाड़ दिया जायेगा और उसे मृत्युमुख तक पहुँचा दिया जायेगा तो उसको बचा लेने की शक्ति उपवास में भी न दिखलाई पड़ेगी। उस दशा में अपनी मूर्खता का दोष उपवास के मत्थे न मढ़ना चाहिए। हाँ, यदि दूषित उपायों से बालक का शरीर बिगड़ न गया हो, उसके शरीर में तरह-तरह के विष न भरे गये हों तो अवश्य ही उपवास का चमत्कार देखा जा सकता है। सबसे पहली बात तो यह है कि स्वयं बालक के शरीर में कभी किसी प्रकार का रोग नहीं होता। या तो यह रोग माता-पिता के कुपथ्य और दोषों आदि के कारण हो सकता है या तरह-तरह की औषधियों आदि की सहायता से उसमें आरोपित किया जाता है। जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित भले आदमी की प्रवृत्ति चोर, डाकू या खूनी बनने की ओर नहीं हो सकती, उसी प्रकार किसी बालक के शरीर की प्रवृत्ति रोगी होने की ओर नहीं हो सकती। बहुत सी अवस्थाओं में तो यहाँ तक देखा गया है कि यदि बालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न हो तो आगे चलकर उसका बाल-शरीर ही उस रोग को नष्ट कर देता है पर दुर्भाग्यवश हम लोगों को यह मिथ्या भ्रम हो जाता है कि बालक को सदा भोजन की आवश्यकता बनी रहती है। रोगी होने के समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए। यदि उसे नींद न आती हो तो थोड़ी अफीम या और कोई नशीली चीज खिला देनी चाहिए आदि-आदि। इसी भ्रम के कारण हम लोग जानबूझकर बालकों के शरीर को रोगों का घर बना देते हैं।

प्रकृति हमें यह बात बतलाती है कि किसी बालक को जन्म लेने के उपरांत कम से कम तीन दिन तक किसी प्रकार के भोजन की आवश्यकता नहीं होती। साधारणतः प्रत्येक दाई और माता यह बात अच्छी तरह जानती है कि बालक को जन्म लेने के तीसरे दिन दूध पिलाया जाता है। वह दूध भी बहुत ही थोड़ी मात्रा में होता है पर उसके बाद ही माता या दासी उसे थोड़ी-थोड़ी देर के बाद जबरदस्ती अथवा जब-जब वह रोता है तब-तब उसे दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही बालक की पाचन क्रिया और शक्ति बिगाड़ी जाती है। धीरे-धीरे बालक पर भूख का अधिकार बढ़ता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी

बुरी आदत लगा दी जाती है कि जो आजन्म उसका पीछा न छोड़ने के अतिरिक्त उसे तरह-तरह के रोगों का पात्र बना देती है। छोटे बालकों को केवल दिन के समय और वह भी कम से कम दो घंटों का अंतर देकर बहुत ही थोड़ी मात्रा में दूध पिलाना चाहिए और रात को कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रोता हो उस समय उसे दूध पिलाने के बदले एक चमचा पानी पिला देना चाहिए। अधिकांश अवसरों पर बालक का रोना उसी पानी से ही शांत होगा और वह तुरंत सो जायगा। यह बात चाहे साधारणत: लोगों के मन में न बैठे पर इसमें संदेह नहीं कि यदि अनुभव करके देखा जाये तो जान पड़ेगा कि इस प्रकार पाले हुए बालकों में से ७५ प्रति सैकड़े सदा निरोग और हष्टपुष्ट बने रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और जीभ को काबू में न रखने के कारण ही होता है। जिस बालक को आरंभ से भी भूख और जीभ को काबू में रखने की शिक्षा दी जायेगी, वह वयस्क होने पर कभी रोगी न होगा पर दुर्भाग्यवश आज कल के जमाने में बहुत ही थोड़े बालक इस प्रकार पाले जाते हैं। प्राय: उन्हें बार-बार और इतना अधिक दूध पिलाया जाता है कि पाचन क्रिया के प्राकृतिक नियमों और प्राणों आदि का बुरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक कि जब बालक उनकी समझ से कम दूध पीता है तब वह रोगी माना जाता है और उसकी चिकित्सा की चिंता होने लगती है पर जो लोग ध्यान और विचार-पूर्वक उपवास से होने वाले लाभों की जाँच करते हैं उन्हें तुंरत यह मालूम हो जाता है कि बालकों के प्राय: सभी रोगो का संबंध उनके अनियमित और अधिक भोजन से ही होता है। वास्तव में स्वयं शरीर कभी रोगी नहीं होता। प्रकृति के नियमों के उल्लंघन, कुपथ्य और परिस्थिति आदि के विरोध के कारण उसे रोगी होने के लिए विवश होना पड़ता है। प्रत्येक माता-पिता का यह प्रधान कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने बालक के स्वास्थ्य की, इन सब बातों से बचाकर रक्षा करें।

उपवास किसे न करना चाहिए

अनुभव और परीक्षा से पता लगा है कि कई रोग ऐसे भी हैं जिनमें उपवास से कोई लाभ नहीं होता। उनमें से एक क्षय रोग भी है। इस रोग में रोगी की जीवन शक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है वह अधिक दिनों तक उपवास कर ही नहीं सकता। ऐसे लोग यदि थोड़ा-थोड़ा भोजन करें अथवा छोटे-छोटे उपवास करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। थोड़े विचार से ही इस सिद्धान्त की उपयुक्तता का पता चल जाता है। बहुत ही थोड़ीसी बची हुई शक्तिवाले रोगी के लिए बड़ा उपवास करना कदापि युक्तिसंगत नहीं हो सकता क्योंकि उपवास के आरंभ में शक्ति का ह्रास होता है। यदि थोड़ी सी बची हुई शक्ति का इस प्रकार नाश कर दिया जायेगा तो रोग रहे न रोगी वाली कहावत ही चरितार्थ होगी। हाँ, यदि उसे पहले एक या दो दिन का उपवास कराया जायेगा। तो पाचन-शक्ति और पक्वाशय को कुछ आराम मिलेगा और उनसे रोग को पचाने और विषों को बाहर निकालने में कुछ सहायता मिलेगी। इसके उपरांत उसे थोड़ी मात्रा में ऐसा भोजन देना उचित होगा जो शीघ्र ही पच सके और तदुपरान्त एक दूसरा छोटा उपवास करना ठीक होगा। इस क्रिया से धीरे-धीरे उसका शरीर निरोग होने लगेगा और उसका बल भी न घटने पावेगा।

यदि क्षय के रोगी को आरंभ में ही उपवास कराया जाये तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। डॉ. मैकफेडन ने अपने चिकित्सालय में कई ऐसे रोगियों को जिन्हें क्षय रोग आरंभ हुआ था, उपवास कराके चंगा किया था। कुछ अवस्थाओं में यह भी देखा गया है कि उपवास-काल में रोगी के शरीर का जो वजन घटा था, वह निरोग होने पर फिर न बढ़ा, ज्यों का त्यों बना रहा। बहुत संभव है कि ऐसे रोगी उपवास के उपरांत भोजन आदि में कुपथ्य करते हों और उसी के फलस्वरूप उनका वजन न बढ़ता है।

यह बात आवश्यक नहीं है कि संसार के प्रत्येक रोग में उपवास ही किया जाये। जो मनुष्य आवश्यकता से अधिक खाता हो, यह समझकर कि

अधिक भोजन से हमारे शरीर का बल बढ़ेगा, थोड़ी-थोड़ी देर के बाद और बहुत सा खाता हो तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि वह बहुत अधिक भोजन करने के कारण ही रोगी हुआ है। ऐसे मनुष्य के रक्त में बहुत सा विष उत्पन्न हो जाता है। जिसका परिणाम उसके शरीर के लिए बहुत ही हानिकारक होता है। प्राकृतिक नियम यह है कि यदि ऐसा मनुष्य उपवास करे और कुछ समय के लिए भोजन छोड़ दे तो अवश्य ही उसके रक्त का विष नष्ट हो जावेगा और उसके शरीर का बल बढ़ेगा पर जो मनुष्य बहुत दिनों से आवश्यकता से कम भोजन करता आया हो और इस प्रकार बहुत ही दुर्बल हो गया हो, उसे उपवास कराने के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता होती है। एक दो अथवा अधिक से अधिक तीन दिनों के उपवास से ही ऐसे मनुष्य की पाचन शक्ति सुधरकर अपनी साधारण अवस्था तक पहुँच जायेगी और वह यथेष्ट भोजन पचाने के योग्य हो जायेगा। ऐसे लोगों को तीन दिन से अधिक निराहार रहने की आवश्यकता न होगी। उपवास की समाप्ति पर ऐसे लोगों को थोड़ा-सा हलका और अधिक पोषक भोजन देना चाहिए जो जल्दी पच जाये और जिससे उसके शरीर का बल अधिक बढ़े और उसका अधिक पोषण हो। साधारणत: ऐसा उत्तम भोजन दूध ही माना जाता है और उससे बहुधा यथेष्ट लाभ पहुँचता है। बहुत से रोगियों की शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि वे दूध भी नहीं पचा सकते पर ऐसे लोगों को भी कभी निराश न होना चाहिए और बहुत ही थोड़ी मात्रा में दूध या फलों आदि का रस पीते रहना चाहिए।

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि जिन लोगों की जीवन शक्ति बहुत अधिक नष्ट हो गई हो उन्हें कभी अधिक दिनों तक उपवास नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार जिन लोगों का रोग औषध खाते-खाते बहुत अधिक बढ़ गया हो उन्हें भी उपवास को व्यर्थ बदनाम करने के लिए भोजन न छोड़ना चाहिए। गर्भवती स्त्रियों के लिए भी उपवास करना युक्तिसंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त केवल मनोविनोद या दिखाने के लिए भी कभी उपवास न करना चाहिए। भारी शोक या चिंता के समय भी उपवास करना हानिकारक होता है क्योंकि उपवास-काल में सदा प्रसन्नचित्त रहने की आवश्यकता होती है। जो

लोग सब प्रकार से निरोग हों और जिनके शरीर में किसी प्रकार की बीमारी न हो, उन्हें भी व्यर्थ उपवास न करना चाहिए क्योंकि उपवास केवल रोग को शरीर से बाहर निकाल देने की एक सर्वोत्तम क्रिया है। स्वयं उपवास से शारीरिक संगठन और बल-वृद्धि आदि में कोई सहायता नहीं मिलती। हाँ, जो विष और विकार आदि शरीर संगठन और बल-वृद्धि आदि में बाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारों को उपवास अवश्य ही शरीर के बाहर निकाल देता है।

जिस युवक अथवा युवती की पाचन शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकार का रोग न हो, जिसका जिगर और फेफड़ा ठीक तरह से काम करता हो, उसे उपवास की कभी कोई कोई आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्य का शरीर सब प्रकार से निरोग हो उसे केवल इसी बात की आवश्यकता होती है कि वह पथ्य से रहे, स्वच्छ वायु का सेवन करे और खूब कसरत करे। इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र उपवास की सब रोगों को नष्ट करने का उपाय नहीं है बल्कि उसके लिए शारीरिक संयम, खुली हवा, सूर्य के प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रम की भी बहुत कुछ आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सदा निरोग रहने के लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ़ निश्चय और प्रफुल्लता आदि की भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

उपवास संबंधी कुछ परीक्षायें

जो लोग इस बात की परीक्षा करना चाहें कि उपवास से रोग का नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिन तक उपवास करें। उस एक या दो दिन में ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा और उस दशा में यदि उनको अच्छी तरह संतोष हो जाये तो वे और अधिक दिनों तक उपवास कर सकते हैं अथवा यदि उनकी हिम्मत न पड़ती हो तो वे पहले बहुत छोटे-छोटे उपवास करें और ज्यों-ज्यों उन्हें उसके लाभ मालूम होते जाये त्यों-त्यों वे अधिक दिनों के उपवास करते जायें। जिन लोगों की देखरेख के लिए योग्य उपवास चिकित्सक न मिल सकते हों और जिन्हें स्वयं भी उपवास संबंधी विशेष जानकारी न हो, उनके लिए इस उपाय का उल्लंघन बहुत ही उत्तम और उपयुक्त है।

जिस उपवास की समाप्ति पर जीभ का स्वाद न सुधरे, जीभ पर जमी हुई पपड़ी आपसे आप न उतर जाये तथा इसी प्रकार के और दूसरे ऐसे चिह्न न प्रकट हों जिनसे विषों के बाहर निकल जाने का पूरा-पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवास को अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए। साधारणतः आठ दस दिन के उपवास को योग्य उपवास-चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं क्योंकि उन आठ दस दिनों में भी वास्तविक उपवास के दिन चार या पाँच ही होते हैं और ऐसे छोटे उपवास बिना किसी प्रकार की कठिनता या कष्ट के ही किये जा सकते हैं। ऐसे अधूरे उपवासों से शरीर की कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती। शक्ति के संबंध में सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करने के उपरांत तुरंत ही उत्पन्न होती है और न दुर्बलता सदा थोड़ा खाने से ही होती है। दुर्बलता का मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्त में मिल जाते हैं।

इस अवसर पर हम एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे उपवास की परीक्षा भी हो सकती है और आरंभ भी। जो लोग उपवास पर विश्वास न करते हों अथवा विश्वास करने पर भी जिनमें उससे लाभ उठाने का साहस न हो उनके

लिए यह उपाय बहुत ही अच्छा है। ऐसे मनुष्यों को उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिन तक नियमित भोजन करें और तब दो दिनों तक उपवास करके चार दिन नियमित भोजन करें। तदनंतर वे चार दिन बिना भोजन के रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम बराबर जारी रखें। इसमें सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक बार वे जितने दिनों का उपवास करें, उपवास के उपरांत उससे दूने दिनों तक वे भोजन करें। इस प्रकार उन्हें उपवास के लाभ भी मालूम हो जायेंगे और वे बिना अधिक कष्ट सहे उपवास का अभ्यास भी कर लेंगे। इसके सिवा उन्हें उपवास काल में प्रकट होने वाले अनेक चिह्नों तथा उसके संबंध में दूसरी बहुत सी आवश्यक और जानने योग्य बातों का पता भी लग जायेगा और वे उस संबंध में सब प्रकार का अनुभव भी प्राप्त कर लेंगे। इस अवसर पर हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि उपवास काल में कभी स्वच्छ जल के अतिरिक्त और किसी चीज का बहुत छोटा टुकड़ा या एक दाना भी न खाना चाहिए, नहीं तो भूख उमड़ जावेगी और तब विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पड़ेगा। उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।

बहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशा में और प्रत्येक अवसर पर किया जा सकता है। एक निरोग मनुष्य जब चाहे तब एक या दो बार का भोजन छोड़कर अच्छा लाभ उठा सकता है। उपवास के लाभों का बहुत कुछ पता उसी से लग जाता है जो मनुष्य यह समझता हो कि मुझे उपवास करने की आवश्यकता है पर उसे लंबे या बड़े उपवासों से भय लगता हो वह पहले एक बार का भोजन छोड़े। तदुपरान्त जब उसे बहुत अधिक भूख लगे तब वह एक या दो गिलास साफ गरम पानी पी ले अथवा एक गिलास ठंडा पानी बहुत ही धीरे-धीरे मानों चूस-चूसकर पीए। यदि उस समय मुँह का स्वाद कुछ बिगड़ जाये और पानी अच्छा न लगे, तो उसमें नींबू या किसी और फल का बहुत थोड़ा सा रस डाल ले। जिस समय मुँह का स्वाद बदल हो अथवा भूख न मालूम हो उस समय कदापि भोजन न करना चाहिए। भूख की सबसे अच्छी परीक्षा यही है कि मुँह का स्वाद ठीक हो और जो कुछ खाया जाये वह बहुत स्वादिष्ट मालूम हो। भोजन उसी समय अच्छी तरह पचता है जबकि वह सादे से सादा होने पर भी

बहुत स्वादिष्ट जान पड़े। मुँह के अंदर कुछ विशेष भाग ऐसे हैं जिन्हें अंग्रेजी टेस्टग्लेंड में कहते हैं। भोजन का स्वाद उसी समय मिलता है जबकि भोजन का उन भागों में समावेश होता है और उनमें भोजन का समावेश उसी समय होता है जबकि मनुष्य का पक्वाशय खाली और भोजन ग्रहण करने के लिए तैयार हो। जिस समय पाचन शक्ति के लिए पहले से ही बहुत सा काम तैयार हो और उसे नये भोजन को पचाने की आवश्यकता न हो उस समय मनुष्य को भोजन का वास्तविक स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद हमें यह बतलाता है कि इस समय हमें भोजन की आवश्यकता है या नहीं।

जो लोग उपवास करते हों उनके लिए बीच-बीच में यह जानने की भी बड़ी आवश्यकता होती है कि अभी उपवास पूरा हुआ है या नहीं। यद्यपि उपवास की समाप्ति पर मनुष्य को वास्तविक भूख लगती है और उसे भोजन की बहुत अधिक आवश्यकता होती है तथापि इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय हैं जिनसे उपवास की समाप्ति का पता चल जाता है। कभी -कभी उपवास की समाप्ति से पहले ही किसी विशेष कारणवश कृत्रिम भूख लगने की भी संभावना होती है और उस दशा में अनेक दूसरे चिह्नों से इस बात का पता लगता है कि अभी उपवास समाप्त हुआ या नहीं। उपवास से शरीर का पूरा-पूरा लाभ पहुँचाने का सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उपवास काल में जीभ पर जो पपड़ी जमती है वह स्वयं ही धीरे-धीरे साफ हो जाये और जीभ का वास्तविक गुलाबी रंग भीतर से निकल जावे। इसके अतिरिक्त उस समय मुँह का स्वाद भी बहुत अच्छा और मीठा हो जाता है और सांस बहुत साफ हो जाती है। पहले जो असाधारण और बहुत विलक्षण भूख लगी रहती थी वह मिट जाती है और उसके स्थान पर हलकी और स्वाभाविक भूख उत्पन्न होती है। उस समय बहुत हलके और स्वास्थ्यप्रद भोजन की ओर रुचि होती है। सभी अच्छी बुरी चीजों पर मन नहीं चलता।

कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं जिनमें रोगी को बीच में ही उपवास छोड़ देना चाहिए। जिस पर रोगी में चलने फिरने, यहाँ तक कि उठने बैठने की भी

शक्ति न रह जाय और जबकि वह इतना निर्बल हो जाये कि सदा बिछौने पर ही पड़ा रहे तो उसे अपना उपवास छोड़कर भोजन आरंभ कर देना चाहिए। उस समय उसे बहुत थोड़ा दूध या फलों आदि का रस पीना चाहिए जिसमें उसका शरीर धीरे-धीरे हरा होने लगे पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास काल में बहुधा कृत्रिम दुर्बलता भी हो आती है। यदि प्रातःकाल सोकर उठने के समय दुर्बलता जान पड़े और सिर में चक्कर आवे अथवा उठा न जाये तो उस समय थोड़ा साहस करके उठ बैठना चाहिए और धीरे-धीरे या लकड़ी आदि के सहारे इधर-उधर टहलना चाहिए। इस प्रकार थोड़ी ही देर के बाद शरीर की सब शक्तियाँ चैतन्य और जाग्रत हो जायेंगी और शरीर में साधारण शक्ति आ जायेगी। बहुत से ऐसे रोगी देखे गये हैं जिन्हें पहले तो बहुत अधिक दुर्बलता जान पड़ती थी पर जहाँ उन्होंने थोड़ी सी गहरी और लम्बी साँसे लीं और दो चार बार उठने बैठने का प्रयत्न किया वहाँ उनमें इतनी शक्ति आ गई कि वे बिना थके हुए मीलों का चक्कर लगा आये। ऐसे लोगों को कभी उपवास छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, जो लोग वास्तव में एकदम निर्बल हो गये हों और सब कुछ प्रयत्न करने पर भी उठने-बैठने तक में असमर्थ हों, उन्हें अवश्य उपवास छोड़ देना चाहिए। बात केवल यही है कि उपवास-काल में शरीर की शक्तियों को जागृत करने और काम करने के योग्य बनाने के लिए थोड़े से परिश्रम की आवश्यकता होती है। शरीर में से आलस्य निकलते ही मनुष्य ज्यों का त्यों हो जाता है और अपने सब काम बड़े आनंद से पहले की तरह करने लगता है। वास्तविक दुर्बलता बहुधा उन्हीं लोगों को होती है जो आवश्यकता से अधिक उपवास कर जाते हैं या उपवास-काल में यथेष्ट व्यायाम नहीं करते।

* यह चिह्न सर्वथा ही विश्वसनीय नहीं हैं, इसके लिए परिशिष्ट में विस्तार से लिखा गया है, उसे पढ़िए।

उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए ?

उपवास करने वालों के लिए यह जानना बहुत अधिक आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए। यदि उपवास छोड़ने के समय किसी प्रकार की असावधानता या कुपथ्य हो जाये तो उपवास का सारा लाभ नष्ट हो जाता है और कभी-कभी उलटे हानि भी सहनी पड़ती है। यदि नियमों का ठीक-ठीक पालन किया जाये तो चिन्ता की कोई बात नहीं रह जाती और शरीर बिल्कुल निरोग और पुष्ट हो जाता है। उपवास छोड़ने के उपरांत कुछ अधिक खा लेने से मृत्यु तक की संभावना होती है। इसलिए बहुत तेज भूख के फेर में पड़कर एक ही बार में बहुत सा भोजन न कर लेना चाहिए। उपवास छोड़ने के उपरांत खाने की इच्छा इतनी अधिक होती है कि उस समय जो कुछ मिले वही खा जाने का मन करता है। इसका यह कारण नहीं है कि उस समय उपवास करने के उपरांत भूख का जोर ही इतना अधिक बढ़ जाता है बल्कि उस समय मन की अवस्था ही ऐसी हो जाती है। इस संबंध में एक अच्छे विद्वान का मत है-

उपवास छोड़ने के समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। उपवास की समाप्ति के उपरांत शरीर की रचना मानो पुनः नये सिरे से होती है और उस समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हम क्या खायें, किस प्रकार खाएँ और कितना खायें। उपवास छोड़ने के उपरांत जब हम भोजन आरंभ करते हैं, उस समय यदि अधिक खाना आरंभ कर दें तो उपवास करने से हमारे शरीर को जितने लाभ हुए होंगे वे सब नष्ट हो जायेंगे इसलिए उपवास छोड़ने के समय किसी अच्छे उपवास चिकित्सक की सम्मति लेनी चाहिए और जिस प्रकार वह बतलाए उस प्रकार हमें भोजन करना चाहिए और बराबर कसरत जारी रखनी चाहिए।

अधिक दिनों तक उपवास करने वाले लोगों को उपवास छोड़ने के समय भोजन पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। हाँ, एक दो या चार दिनों का उपवास करने वालों को उसके लिए उतनी चिन्ता न करना चाहिए पर जो लोग कई सप्ताहों या मासों तक बिना भोजन के रह चुके हों उन्हें उस समय

तक भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिए जब तक उनके भोजन पचाने वाले अवयव भोजन को अच्छी तरह पचाने में समर्थ न हो जायें। उपवास छोड़ने के उपरांत पहले या नित्य के अनुसार भोजन करने का प्रयत्न कदापि न करना चाहिए और न भोजन करने में किसी प्रकार का उतावलापन करना चाहिए। भोजन बहुत ही थोड़ी मात्रा में आरंभ करके बहुत धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

बहुत दिनों तक बिना भोजन के रहने के कारण रोगी के शरीर की हालत बहुत नाजुक हो जाती है और उपवास छोड़ने पर बल्कि बहुधा बीच में भी उसे इतनी भूख लगती है कि यदि वह किसी अच्छे डॉक्टर की देखरेख में हो तो कभी-कभी लुक छिपकर भी कुछ खाने का प्रयत्न करता है। अतः डाक्टर्स की देखरेख में उपवास करने वालों को यह बात दृढ़तापूर्वक अपने मन में अंकित कर लेनी चाहिए कि बिना डॉक्टर की सम्मति के अथवा उसे बतलाये हुए कभी कोई काम करना न चाहिए, विशेषतः कभी कोई चीज खानी न चाहिए। उस समय भूख ऐसी लगती है कि जो चीज और जितनी मात्रा में मिले वह सब खाई जा सकती है। उस समय लोग कभी-कभी ऐसी चीजें भी खा लेते हैं, जिनका शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। उस दशा में डॉक्टर को भी भारी विपत्ति का सामना करना पड़ता है और रोगी को भी बहुत कष्ट सहना पड़ता है। यदि इस बात का पता लग जाय कि उपवास छोड़ने के उपरांत किसी ने कोई अधिक अथवा हानिकारक पदार्थ खा लिया है तो तुरंत कै कराके अथवा एनिमा की सहायता से उसके पेट में से वह पदार्थ निकलवा देना चाहिए। यदि उपवास करने वाले से न रहा जाय तो उसे कम से कम डॉक्टर की सम्मति के अनुसार अवश्य चलना चाहिए जिससे वह बहुत सी भूलों और दोषों से बचा रहे।

जिन लोगो का शरीर दुर्बल हो उनके लिए और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। उनमें से कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तव में दो तीन सप्ताह तक उपवास करने की आवश्यकता होती है पर एक ही सप्ताह तक उपवास करने के उपरान्त वे इतने दुर्बल हो जाते हैं कि उन्हें उपवास छोड़ देने की आवश्यकता होती है। यदि पहली बार ही रोगी अधिक दिनों का उपवास न कर सके तो उसके लिए सुगम उपाय यह है कि जिस रोग के लिए उपवास

कराया जाता हो वह रोग जब तक अच्छा न हो जाये तब तक वह रोगी थोड़े-थोड़े दिनों का उपवास करता रहे और ज्यों-ज्यों उसकी शक्ति बढ़ती जाय त्यों-त्यों वह उपवास की मुद्दत भी बढ़ाता जाय। जो लोग दुर्बल होते हैं वे आरंभ में अधिक लंबे उपवास नहीं कर सकते पर यदि वे धीरे-धीरे अपने उपवास की मुद्दत बढ़ाते जायें तो आगे चलकर अधिक उपवास कर सकते हैं।

प्रत्येक उपवास करने वालों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि छोटे या बड़े प्रत्येक उपवास से होने वाला लाभ उपवास छोड़ने के प्रकार पर ही अवलंबित रहता है। जिस प्रकार कोई बहुत दुःखभरी बात किसी को बहुत धीरे-धीरे सुनाई जाती है, उसी प्रकार उपवास भी बहुत धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए। उपवास छोड़ने के पहले अच्छे फलों के रस के सिवा और कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। अंगूर या संतरे आदि का रस सबसे अच्छा है। इनमें से किसी फल का रस एक छोटे से गिलास में लेकर उसमें थोड़ी चीनी डाल देनी चाहिए और उसमें से बहुत ही धीरे-धीरे एक-एक घूंट करके और स्वाद ले लेकर गले में उतारना चाहिए। एक दम से बहुत सा रस गटर-गटर करके पी जाना बहुत ही हानि कारक है। इस प्रकार दिन में दो तीन बार पीना चाहिए। दूसरे दिन ताजा, बढ़िया और गरम दूध एक-एक गिलास करके दिन में तीन चार बार पीना चाहिए। दूध या रस को बराबर उस समय तक मुँह में ही रखना चाहिए, जब तक उसमें किसी प्रकार का स्वाद रहे। तीसरे दिन दूध की मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए और उसके साथ कुछ खट्टे (एसिड वाले) फल भी खाने चाहिए। चौथे दिन दूध की मात्रा और फलों की संख्या कुछ बढ़ा देनी चाहिए। पाँचवे दिन सदा के नियमानुसार अपना साधारण पर सादा भोजन करना चाहिए लेकिन वह भोजन नित्य की मात्रा से कम हो। जो लोग एक सप्ताह या इससे अधिक समय तक उपवास कर चुके हों उनके लिए इस नियमों का पालन बहुत ही आवश्यक है।

इस अवसर पर यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि उपवास काल में शरीर के भीतर क्या-क्या फेरफार होते हैं। शरीर में से सदा कुछ ऐसे रस निकलते रहते हैं, जिनसे भोजन पचता है। उपवास काल में उन रसों का

निकलना बंद नहीं होता बल्कि बराबर जारी रहता है पर स्वयं पक्वाशय की शक्ति बहुत मंद पड़ जाती हैं और यही कारण है कि उपवास की समाप्ति पर उसके लिए एक दम से भारी या अधिक भोजन पचा लेना असंभव होता है। शरीर के भीतरी भाग से निकलने वाले पाचक रसों की मात्र चार पाँच दिनों बाद कुछ कम होने लगती है। इसलिए चार दिनों तक का उपवास करने वाले लोग उपवास के उपरांत नियमानुसार भोजन कर सकते हैं क्योंकि उन लोगों को उस भोजन से कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताह तक उपवास करने के उपरांत भी बिना किसी प्रकार की जोखिम सहे नियमानुसार भोजन कर लेते हैं पर तो भी सर्व साधारण को इसके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगों को उपवास छोड़ने के दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगने के कारण बैचेनी हो उनकी बैचेनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायेगी और शरीर को किसी प्रकार की हानि भी न पहुँचेगी। उपवास छोड़ने के पाँच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरंभ किया जाय तब कुछ दिनों तक इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और सदा से कम हो। जीभ के स्वाद अथवा और किसी कारण से कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणतः उपवास चिकित्सालयों में जब तक सप्ताह या इससे अधिक समय तक उपवास करने वाले का उपवास छुड़ाया जाता है तब पहले दो दिनों तक उसे केवल फलों के रस ही देते हैं। और तब उसके बाद तीसरे दिन से दूध आरंभ करते है। तीसरे दिन दो-दो घंटे पर और चौथे दिन एक-एक घंटे पर एक गिलास दूध किया जाता है पाँचवे और छठे दिन इसी प्रकार अंतर कम किया जाता है और ज्यों-ज्यों उपवास करने वाले ही पाचनशक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसे अधिक दूध मिलता जाता है। दूध की मात्रा इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाने से तौल में शरीर भी बहुत जल्दी-जल्दी बढ़ने लगता है। कभी-कभी तो वह एक ही दिन में डेढ़ दो सेर तक बढ़ जाता है। बहुत से उपवास करने वाले एक ही सप्ताह में तौल में १२-१३ सेर तक बढ़ गये हैं।

उपवास के उपरांत दूध पीने से अनेक लाभ होते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि दूध हल्का और लघुपाक होता है और दूसरे शरीर का बल बहुत

बढ़ता है। उसका तीसरा लाभ यह भी होता है कि भोजन करने की बहुत प्रबल इच्छा इससे कुछ दब जाती है पर जो लोग दूध पर किसी प्रकार रह ही न सकते हों उन्हें बहुत ही अल्प मात्रा में चौथे या पाँचवें दिन से अपना नियमित भोजन आरंभ करना चाहिए। जो लोग चार दिनों तक का उपवास कर चुके हों उन्हें अपना नियमित भोजन आरंभ करने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिस दिन वे भोजन आरंभ करें उस दिन रोज से आधा भोजन करें। जो लोग एक दो सप्ताह तक का उपवास कर चुके हों उन्हें भोजन आरंभ करने के दिन नित्य के भोजन का पाँचवाँ भाग खाना चाहिए, उसके दूसरे दिन नित्य के भोजन का तीसरा भाग, तीसरे दिन आधा भाग और चौथे दिन नित्य से कुछ कम खाना चाहिए। पाँचवे दिन से यदि वे नियमित रूप से भोजन करें तो कोई हानि नहीं है। उपवास के उपरांत जो कुछ कम खाय जाय वह बहुत ही सादा और बलवर्द्धक होना चाहिए। जितना ही सादा भोजन किया जायेगा उतना ही अधिक स्वाद मिलेगा।

अब हम उपवास छोड़ने के संबंध में दो सज्जनों के मत देकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं। अप्टन सिंक्लेअर अपने निज के अनुभव के अनुसार लिखते है-

बरनर्ड मैकफेडन का उपवास-चिकित्सालय छोड़ने के उपरांत मैंने कई बार उपवास किये हैं ओर प्रत्येक बार मैंने भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन लेकर उपवास छोड़ने का प्रयत्न किया है। जिस समय मैं एलबामा में था उस समय मैंने बारह दिनों का उपवास किया था। उपवास काल में मेरी इच्छा वहाँ के एक विशेष प्रकार के फल पर बहुत अधिक थी, इसलिए जब मैंने उपवास छोड़ा तब वही फल खाया था पर उसके खाने से मेरे पेट में मरोड़ होने लगा। तबसे मैं बराबर लोगों को वह फल खाने से मना करता हूँ। मेरे एक मित्र ने एक बार उपवास छोड़ने के उपरांत मीठे नींबू का रस लिया था, उसे भी मेरी ही तरह मरोड़ हुआ था पर वह ऐसी प्रकृति का मनुष्य था, जिसे खट्टे या एसिड वाले फल जरा भी अच्छे न लगते थे। मैं एक ऐसे आदमी को भी जानता हूँ जिसने

घास खाकर उपवास छोड़ा था पर यह भोजन इस योग्य नहीं है कि इसकी सिफारिश की जाय। मेरी एक परिचिताजी ने एक सप्ताह का उपवास किया था और उसे छोड़ते समय उसने चावल और उबाले हुए अंडे खाये थे पर इस भोजन से उसे किसी प्रकार का लाभ न जान पड़ा क्योंकि उसकी भूख जितनी अधिक बढ़नी चाहिए थी उतनी उससे न बड़ी थी। लगातार कई सप्ताह तक चावल और अंडा खाते रहने से पैखाना बिल्कुल नहीं होता था।

मेरा अनुभव यह है कि उपवास के उपरांत पक्वाशय बहुत ही दुर्बल जान पड़ता है और उस पर बहुत ही शीघ्र हानिकारक प्रभाव पड़ने की संभावना होती है। इसके अतिरिक्त उस समय आँतो की शक्ति भी बहुत कम होती जाती है। इसलिए उस अवसर पर ऐसा भोजन पसंद करना चाहिए, जो बहुत जल्दी हजम हो सके साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जब तक आँतो में शरीर का मल बाहर निकालने की पूरी -पूरी शक्ति न आ जाये तब तक एनिमा का उपयोग बराबर जारी रखना चाहिए। उपवास छोड़ने के समय पहले दो या तीन दिनों तक केवल मीठे नींबू या अंगूर के रस पर रहना चाहिए और तदुपरांत दूध का सेवन आरंभ कर देना चाहिए। उस समय पहले-पहले आधा गिलास गरम दूध पीना चाहिए। यदि केवल दूध अच्छा न लगता हो तो उसमें अंगूर, खजूर या आलू भी मिला लेना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो चावल, काँजी और शोरवे आदि का व्यवहार भी आरंभ कर देना चाहिए पर उसके साथ ही साथ एनिमा लेना भी भूल न जाना चाहिए। मैंने तीन-तीन दिन के कई उपवास छोड़े हैं। मुझे निश्चय हो गया है कि उस समय के लिए दूध से बढ़कर और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है।

उपवास चिकित्सा के प्रसिद्ध विद्वान डॉक्टर टेनर ने अपना पहला उपवास छोड़ते समय आरंभ से ही तरबूज खाना शुरू किया था। यद्यपि कुछ विशेष अवस्थाओं में तरबूज उपयुक्त हो सकता है तथापि प्रत्येक मनुष्य के लिए आरंभ से ही तरबूज खाना ठीक न होगा। एक व्यक्ति ने पहले कुछ अखरोट पानी में भिगो लिए थे और तब उन्हें आठ दस पहर तक सुखाया था। उपवास छोड़ने के

समय उसने यही सुखाये हुए अखरोट खाये थे। उसका कथन है कि इस भोजन से मेरा पूरा संतोष हुआ था और मुझे कोई हानि नहीं पहुँची थी। अपने इच्छानुसार कोई हल्का और शीघ्र पचनेवाला भोजन लिया जा सकता है। उसमें विशेष ध्यान रखने योग्य केवल एक यही बात है कि उपवास छोड़ने के उपरांत बहुत अधिक भूख लगने पर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो चार दिनों तक नहीं बल्कि दो तीन सप्ताहों तक रहना चाहिए।

डॉक्टर हरवर्ड केरिंगटन उपवास-चिकित्सा के बहुत बड़े ज्ञाता और पंडित माने जाते हैं। उपवास छोड़ने और उस समय भोजन करने के संबंध में आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझ कर हम इस स्थान पर उसका आशय दे देते हैं-

उपवास छोड़ने की क्रिया मेरी समझ में बहुत ही महत्वपूर्ण और विचारणीय है क्योंकि यदि उपवास छोड़ने में किसी प्रकार की असावधानी की जायेगी तो उपवास से उत्पन्न अधिकांश लाभ प्राय: बहुत कम हो जायेंगे। जिन लोगों को उपवास संबंधी विशेष अनुभव हैं वे यह बात भलीभाँति समझते होंगे कि उपवास छोड़ने के समय कितनी अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभव के अनुसार इस संबंध में कुछ बातें बतलाता हूँ।

उपवास संबंधी सबसे बड़े इस नियम का ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि प्रकृति हमें स्वयं यह बतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए। इस संबंध में हमारे शरीर में कुछ विशेष और स्पष्ट चिह्न प्रकट होते हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है-

१. उपवास- काल में शरीर की जो गरमी साधारण से अधिक अथवा कम हो जाती है, वह उपवास छोड़ने के समय अपनी ठीक अवस्था में आ जाती है।

२. उपवास काल में जीभ पर जो पपड़ी जमी होती है वह धीरे-धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

३. उपवास–काल में नाड़ी अधिक शीघ्रता से अथवा धीमी चलती है पर उपवास छोड़ने की आवश्यकता होने पर वह अपने नियमित रूप से चलने लगती है।

४. उपवास काल में जो साँस दुर्गन्धियुक्त रहती है वह उपवास पूरा होने पर बिल्कुल साफ और बिना दुर्गन्ध की हो जाती है।

५. त्वचा तथा शरीर के दूसरे अंग जो पहले विशेष या न्यून रीति से काम करते थे वे अपनी साधारण स्थिति में आकर पूर्णरूप से काम करने लगते हैं।

६. अन्तिम और सबसे बड़ा चिह्न यह है कि भूख नियमित रूप से और अपनी साधारण अवस्था में लगती है। कृत्रिम भूख की तरह विशेष रूप से नहीं लगती।

कई दिनों तक किसी प्रकार का भोजन न करने के उपरांत जब शरीर अपनी साधारण अवस्था में पहुँच जाता है तब उक्त चिह्न प्रकट होते हैं।

इस अवसर पर प्रश्न हो सकता है कि वास्तविक और कृत्रिम भूख की पहचान क्या है ? दोनों अवस्थाओं में ही मनुष्य कह सकता है कि मुझे प्राकृतिक भूख लगी है पर उनमें से एक को भोजन की वास्तविक आवश्यकता है पर दूसरे को वैसी आवश्यकता नहीं होती। ऐसी दशा में वह किस प्रकार जान सकता है उनमें से किसे भोजन दिया जाना चाहिए और किसे नहीं ?

इसलिए वास्तविक और कृत्रिम भूख को पहचानने के लिए यहाँ उनका कुछ अंतर बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय झूठी भूख लगती है उस समय पेट में एक प्रकार की थोड़ी बहुत गुड़गुड़ी होती है पर जिस समय वास्तविक या सच्ची भूख लगती है उस समय शरीर में वे चिह्न उत्पन्न होते हैं जो ऊपर बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गले में एक विशेष प्रकार खुश्की सी होती हैं जो वास्तव में प्यास तो नहीं होती पर प्यास सी जान पड़ती है। गले की गिलटियों में से एक प्रकार का पानी या रस निकलने लगता है। यह

पानी या रस निकलना ही वास्तविक भूख का सबसे अच्छा और प्रमाणिक चिह्न है। उपवास-काल की समाप्ति के और चाहे जितने लक्षण शरीर में उत्पन्न हो जायें पर जब तक गले की गिलटियों से पानी न निकलने लगे तब तक कभी उपवास न छोड़ना चाहिए।

दूसरा लक्षण यह है कि जिस मनुष्य को झूठी भूख लगी होगी, वह जो कुछ पावेगा सो सब अपने पेट की ज्वाला शांत करने के लिए खा लेगा पर जिसे वास्तविक भूख लगी होगी वह खाने के लिए कोई विशेष पदार्थ माँगेगा। उस अवस्था में समझ लेना चाहिए कि अब वास्तविक भूख लगी है।

इस अवसर पर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक वास्तविक भूख के चिह्न प्रकट न हों तब तक उपवास करने में कोई जोखिम तो नहीं है ? उपवास समाप्ति के चिह्न उत्पन्न होने से पहले ही उपवास करने वाला मर तो न जायेगा ? इस प्रश्न का बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि ऐसा कदापि न होगा। इसमें न तो किसी प्रकार की जोखिम है और न जान जाने का भय है। जोखिम अथवा मृत्यु की अवस्था तक पहुँचने से बहुत पहले ही वास्तविक भूख के चिह्न अवश्य प्रकट हो जायेंगे। बात यह है कि अन्न के बिना मरने से पहले कुछ समय तक मनुष्य का शरीर धीरे-धीरे गलता रहता है और उस अवस्था तक पहुँचने से बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग आती है।

जो लोग बिना अन्न के भूखों मरते हैं उनके शव की परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरने के समय उनके शरीर में से नीचे लिखे पदार्थ इतने मान में घटते हैं-

चरबी	97%
स्नायु (Tissue)	30%
कलेजा (Liver)	56%
तिल्ली (Spllen)	63%
और खून केवल	16% नष्ट होता है।

ज्ञानतन्तुओं (Nervous System) का कोई अंश नष्ट नहीं होता। इस कथन के प्रमाण शरीर शास्त्र के प्रत्येक प्रमाणिक ग्रंथ में मिल सकते हैं।

ऊपर के अंको से इस बात का पता लग जाता है कि उपवास काल में शरीर का वही अंश सबसे अधिक नष्ट होता है जिसका उपयोग हमारे शरीर के अस्तित्व के लिए बहुत ही कम होता है। वह अंश चरबी है। इसके अतिरिक्त शरीर में और भी अनेक अनावश्यक पदार्थ होते हैं जिन से उपवास-काल में शरीर का पोषण होता है ओर यही शरीर के निरोग होने का प्रधान कारण है।

उपवास छोड़ने के संबंध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि भोजन आरंभ करने के समय बहुत सावधानी से और समझ बूझकर सब काम करना चाहिए। उपवास जितने अधिक दिनों का हो उसे छोड़ने के समय उतनी ही अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। साधारण कागज छापने का प्रेस जब कुछ समय तक बंद रहने के उपरांत फिर से चलाया जाता है उस समय आरंभ में उसे हमेशा बहुत धीरे-धीरे चलाते है और उसकी गति क्रमशः बढ़ाते जाते हैं पर यदि उसे आरंभ में ही पूरी तेजी से साथ चलाया जायेगा तो वह अवश्य ही टूट जायेगा अथवा उसका कोई कल पुरजा बिगड़ जायेगा। उस समय वह यंत्र ऐसा बिगड़ जायेगा कि उसे बहुत समय तक बंद रखने की आवश्यकता होगी। ठीक यही दशा अपने शारीरिक यंत्र की भी समझिए। यदि कुछ दिनों के उपवास के उपरान्त तुरंत ही इससे पूरी तेजी से काम लिया जायेगा तो वह अवश्य ही बेकाम हो जावेगा। इसलिए उपवास हमेशा धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए और ज्यों ज्यों दिन बीतते जायें त्यों-त्यों भोजन की मात्रा बढ़ती जानी चाहिए। इस प्रकार पाचन क्रिया उत्तम रूप से होती रहेगी और शरीर का बल भी क्रमशः बढ़ता जायेगा।

उपवास जब तक स्वाभाविक रूप से स्वयं ही पूरा न हो जाये, जब तक उसकी पूर्ति के सब लक्षण दिखाई न देने लगें तब तक उसे स्वयं न छोड़ देना चाहिए। बीच में ही उपवास छोड़ना मानो चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। शरीर की आरोग्य क्रिया में इससे बहुत विघ्न पड़ेगा। पेट में आये हुए नये पदार्थों

को ठिकाने लगाने में ही शक्ति लगने लगेगी और आरोग्य क्रिया बहुत मंद पड़ जायेगी। इसलिए उपवास को बिना पूरा किये बीच में ही छोड़ देना ठीक नहीं है। मान लीजिए कि किसी मनुष्य ने १५ दिनों तक उपवास किया। उसकी जीभ पर पपड़ी अभी तक जमी हुई है और उसकी साँस में से बदबू निकलती है उस समय यदि वह एक ग्रास भी खा लेगा तो बहुत शीघ्र उसकी भूख बढ़ने लगेगी और शरीर की आरोग्य क्रिया बंद हो जायेगी। उसकी जीभ पर की पपड़ी उतर जायेगी, साँस की बदबू आती रहेगी, उसके शरीर के विषों का बाहर निकलना बंद हो जायेगा और शरीर की अधिकांश शक्ति भोजन पचाने में लगने लगेगी।

इस अवसर पर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि उपवास आरंभ करने के दो दिन बाद मनुष्य को भूख ही नहीं लगती। यदि आरंभिक दो दिन बड़ी कठिनता से बीतते हैं और यह कठिनता शरीर के अस्वाभाविक दशा से स्वाभाविक अथवा शांत दशा में आने के कारण होती है। इन दो-तीन दिनों के उपरांत उपवास करने वाले का समय बहुधा बहुत शांतिपूर्वक और आनंद से कटता है। जब तक उसके शरीर के विषों का शमन नहीं हो जाता तब तक उसे वास्तविक भूख नहीं लगती।

सच्ची भूख लगना ही उपवास की समाप्ति का सबसे अच्छा लक्षण है। सच्ची भूख हमें यह बतलाती है कि हमारे शरीर से सब प्रकार के विष बाहर निकल गये हैं और अब वह भोजन के लिए तैयार हो गया है। उस अवस्था में भोजन के विषय में दो बातें विचारणीय होती हैं। एक तो यह कि भोजन कितना होना चाहिए और दूसरे यह कि वह किस प्रकार का होना चाहिए।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि आरंभ में भोजन बहुत ही कम होना चाहिए । पहले सप्ताह तो बहुत ही कम भोजन करना चाहिए और उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए और तदुपरांत साधारण और नियमित भोजन करना चाहिए पर उस दशा में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दिन रात में केवल दो बार भोजन किया जाये और कुछ भूख बाकी रहने पर ही भोजन से हाथ खींच लिया जाये। उपवास छोड़ने के उपरांत सबसे पहले दो दिनों तक

केवल तरल पदार्थों से ही भूख शांत करनी चाहिए। उस समय दृढ़तापूर्वक भूख को अपने वश में रखने की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

उपवास छोड़ने के समय किस प्रकार का भोजन करना चाहिए इसके विषय में कुछ मतभेद हैं। डॉक्टर डेवी की सम्मति है कि उस समय जिस चीज की इच्छा हो वही चीज खाई जाये पर मेरी समझ में यह विधान ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि उस समय मनुष्य का मन तरह-तरह की चीजों पर चलता है यदि वह सभी चीजें खाने लगा तो उनमें से बहुत सी उसके लिए हानिकारक प्रमाणित होंगी। बहुत से रोगियों के अनुभव से मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि मनुष्य जन्म से जो पदार्थ अधिक मान में खाता आता है, उपवास छोड़ने के समय उसकी रुचि साधारणतः उसी पदार्थ की ओर होती है। उत्तरीय ध्रुव के एस्किमों लोग उपवास छोड़ने के उपरांत चरबी और आलू ही माँगेंगे। जो लोग जन्म से अन्न, शाक और फल खाते आये होंगे वे सदा अन्न और फल ही माँगेंगे परन्तु प्रेरणा और बुद्धि दोनों सदा साथ ही साथ काम नहीं करतीं। इसलिए क्षुधातुर की मांगी हुई चीज उसे देना सब दशाओं में ठीक नहीं। मनुष्य मात्र के शरीर का संगठन समान प्रकार का और समान पदार्थों से ही होता है। इसलिए उन सबके लिए कम से कम स्वाभाविक दशा में एक ही प्रकार का ऐसा निश्चित भोजन होना चाहिए जो उनके शरीर के लिए लाभदायक और पुष्टिकर हो। मेरी समझ में उपवास छोड़ने के समय इस प्रकार भोजन आरंभ करना चाहिए।

पहला दिन- जब उपवास छोड़ने का समय आवे और उसकी समाप्ति के सब लक्षण दिखाई दें उस समय उपवास करने वालों को एक गिलास संतरे का पतला रस पीना चाहिए। यदि वह कुछ गाढ़ा हो तो उसमें थोड़ा पानी भी मिला लेना चाहिए। इसी प्रकार और दूसरे फलों का रस भी लिया जा सकता है पर वह रस न तो बहुत ठंडा होना चाहिए और न उसमें चीनी मिली होनी चाहिए।

दूसरा दिन- रोगी को इस बात का विशेष ध्यान रहना चाहिए कि पेट

में अधिक पदार्थ न चला जाय क्योंकि उस दिन भूख बहुत लगती है और भीषण रूप धारण कर लेती है। उस समय इच्छा और भूख को वश में रखने की बहुत आवश्यकता होती है। यदि उस समय विशेष सावधानी न रखी जायेगी तो परिणाम बहुत ही भयंकर होगा।

दूसरे दिन के लिए सबसे अच्छी खुराक संतरा है। खजूर और अंजीर आदि और अवसरों पर भले ही लाभदायक हों पर उपवास छोड़ने के समय उनका व्यवहार करने की सम्मति मैं नहीं देता। दूसरे दिन जहाँ तक हो सके एक फल खाकर काम चलाना चाहिए। यदि एक फल खाकर न रहा जाये तो एक और खा लेना चाहिए, इससे अधिक नहीं।

तीसरा दिन– उपवास छोड़ने के दो ही तीन दिन बाद तक बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। इसके बाद यदि दिन पर दिन भोजन बढ़ाया जाये तो कोई हानि नहीं होती। तीसरे दिन एक आध रोटी, थोड़ी तरकारी और एक गिलास गरम दूध तक लिया जा सकता है। उस दिन एक तो भोजन बहुत सादा होना चाहिए और दूसरे मात्रा में भी कम होना चाहिए।

उपवास छोड़ने के उपरांत बहुधा दूध ही सबसे अधिक उपयुक्त और लाभदायक होता है। उपवास छोड़ने के दूसरे दिन जो दूध पिया जाय वह इतना ही गरम हो कि उससे मुँह न जले। दूध एक-एक घूंट करके बहुत धीरे-धीरे पीना चाहिए। हर एक घंटे बाद एक गिलास दूध पिया जा सकता है। तीसरे दिन हर घण्टे पर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूध से शरीर का बल भी बढ़ता है और वजन भी। शरीर के लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशा में इससे लाभ ही होता है, हानि कभी नहीं होती।

दिन रात में एक बार भोजन

प्रत्येक बुद्धिमान यह बात स्वयं ही समझ सकता है कि बहुत अधिक या आवश्यकता से अधिक भोजन करने का शरीर पर बहुत बुरा परिणाम होता है। यदि पहला भोजन न पचा हो, पेट में मौजूद ही हो और ऊपर से एक बार और भोजन कर लिया जाये तो निश्चय ही शरीर को उसका बहुत बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। आरंभ के पृष्ठों में एक स्थान पर बतलाया जा चुका है कि सभ्य देशों में प्रत्येक तीन घंटे के बाद भोजन करने की प्रथा है। भारतवासी भी दिन में कम से कम तीन चार बार अवश्य ही भोजन और जल-पान करते हैं पर बहुत अधिक भोजन करने का यह रोग हाल का ही है। आज से डेढ़ दो हजार वर्ष पहले संसार के किसी भाग के निवासियों को इतना अधिक खाने की लत नहीं थी। उन दिनों सभी देशों और जातियों के लोग इस उन्नत और सभ्य काल की अपेक्षा स्वास्थ्य के प्राकृतिक नियमों का कहीं अधिक पालन करते थे, वे सदा खुली हवा में रहते थे, बहुत सा परिश्रम और लंबी यात्रायें करते थे और जब तक अच्छी तरह भूख न लगती थी तब तक भोजन न करते थे बल्कि यह कहा जाये कि वे एक बार का किया हुआ भोजन पहले खूब परिश्रम करके पचा लेते थे तब दूसरी बार भोजन करते थे तो अधिक उत्तम होगा। प्राचीन भारत, चीन, मिस्त्र, रोम और यूनान आदि सभी देशों के प्राचीन निवासी यह बात भलीभाँति समझते थे कि कब, कैसा और कितना भोजन करना चाहिए पर आजकल की सभ्यता, शिक्षा और उन्नति ने जहाँ हमें बहुत से लाभ पहुँचाये हैं वहाँ स्वास्थ्य संबंधी बहुत कुछ हानि भी पहुँचाई है। प्राचीन काल में लोग अधिक परिश्रम भी करते थे और तरह-तरह के कष्ट भी सहज में सह लेते थे पर आजकल की सभ्यता ने लोगों को बहुत ही सुकुमार और आराम तलब बना दिया है। इस सुकुमारता और आराम-तलबी का यथेष्ट फल भी लोगों को भोगना पड़ता है। यह फल सैकड़ों बल्कि हजारों तरह के नये-नये रोगों के रूप में प्रकट होता है।

संसार के अधिकांश प्राचीन निवासी दिन रात में केवल एक बार संध्या के समय भोजन किया करते थे। दिन भर अपने काम धंधों में लगे रहते थे, भरपूर

परिश्रम करते थे और तब संध्या के समय परिवार के सब लोग एकत्र होकर आनंदपूर्वक भोजन करते थे। दिनभर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करने के कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते। उनका रूखा-सूखा, हल्का और थोड़ा भोजन उनके शरीर के पोषण और बलवृद्धि के लिए यथेष्ट होता था, रोग, आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करने के लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजन के उपरान्त संगीत, नृत्य और हास्यविनोद आदि का आरंभ होता था और यही सब बातें उन दिनों आज कल के सुलेमानी नमक और हिंगाष्टक की गोलियों का काम देती थीं। कुछ जातियों में केवल दिन के समय ही खाने की प्रथा थी। उन लोगों का मुख्य भोजन आठ पहर में केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रा में, जितनी मात्रा में आजकल के लोग जल पान करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्ति का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज है जो सबको और फलतः प्रवृत्ति को भी दबा लेती है। आप दिन भर में पसेरी भर अन्न का भी सत्यानाश कर सकते हैं और डेढ़ पाव या आध सेर में भी आपका निर्वाह बहुत मजे में हो सकता है। इसमें आवश्यकता है केवल अभ्यास की। यदि आप आवश्यकता से अधिक भोजन करने का अभ्यास करेंगे तो अवश्य ही आपकी भूख संबंधी प्रवृत्ति और सहजबुद्धि थोड़े समय में नाश हो जायेगी और आप उस अभ्यास के वशीभूत हो जायेंगे। यदि बहुत ही छोटी अवस्था में दो बालक भिन्न-भिन्न दाइयों को दे दिये जायें और उनमें से एक दाई बहुत थोड़ी-थोड़ी देर के बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूप से दो-दो या तीन-तीन घंटो के बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाइवाला बालक चाहे बीमार ही क्यों न हो जाय हर दम दूध के लिए रोया करेगा पर जिस बालक को नियमित रूप से छः या आठ बार दूध पिलाया जायेगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायेगा। इसका कारण वही है कि बार-बार दूध पीने के अभ्यास के कारण उसकी प्रकृतिक अच्छी और सहज बुद्धि का नाश हो जायेगा और इस नाश का

परिणाम सदा घातक और अत्यंत हानिकारक ही होगा। उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा।

बहुधा हम लोग देखा करते हैं कि नागरिकों को देहातियों का स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुत सा घी-चीनी, पूरी-पकवान मेवा-मिठाई, मांस-मछली, पुआ-पकोड़ी खाया करते हैं लेकिन देहातवाले बाजरे, जौ और मकई की सूखी रोटी खाकर इतने निरोगी और हष्ट-पुष्ट बने रहते हैं कि यदि वे चाहें तो दो एक नागरिकों को बड़े-आनंद से बगल में दबाकर कोस दो कोस का चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यह है कि वे स्वच्छ वायु में रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजन के समय तक उन्हें खूब गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रात: काल चार बजे उठकर अपनी गौंओं-भैसों के सानी-पानी का सब प्रबंध करेगा और ग्यारह बारह बजे तक या तो एकाध बीघा खेत जोतकर रख देगा या घी दूध, मक्खन, खोआ आदि बेचने के लिए चार पाँच कोस के किसी शहर का चक्कर लगा आवेगा। शहर में ही वह थोड़े से भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँच कर थोड़ी देर तक सुस्ताने के बाद फिर किसी शारीरिक परिश्रम में लग जायेगा। ऐसी दशा में सन्ध्या या रात के समय उसे खूब तेज भूख लगना बहुत ही स्वाभाविक है और तेज भूख लगने पर जो कुछ खाया जायेगा वह अवश्य ही बहुत अच्छी तरह पचकर हमारे शरीर में लगेगा और हमारे अंग-प्रत्यंग को पुष्ट करेगा। शहर के रहने वाले सबेरे उठते ही स्नान आदि से निश्चिन्त होकर जल पान पर टूटेंगे मानो रातभर उन्होंने चक्की ही पीसी हो। जल-पान के उपरांत वे हाथ में या तो ताश, अखबार या किताब आदि उठा लेंगे या अपने मकान के नीचे वाली अपनी दुकान पर जा बैठेंगे। ग्यारह बजे आप यह कहते हुए उठेंगे कि आज कुछ भूख तो नहीं मालूम पड़ती पर चलो खा ही आवें, नहीं तो रसोई ठंडी हो जायेगी। नौकरी पेशा लोग ज्यों-त्यों करके इस विचार से पेट खूब कस लेंगे कि अब दिनभर तो कुछ मिलेगा ही नहीं और चटपट कपड़े पहनकर इक्के या ट्रायवेपर घिसटते हुए कचहरी या दफ्तर में पहुँच जायेंगे। दिनभर उनके हाथ में खाली कलम रहेगी और वह भी बड़ा भारी बोझ

मालूम पड़ेगी। अमीर लोग दिनभर तो तकियों और गद्दियों में गड़े हुए पड़े रहेंगे और संध्या समय गाड़ी पर सवार होकर अपने बदले अपने घोड़ों से थोड़ा शारीरिक परिश्रम करवा के निश्चिन्त हो जावेंगे। इन सभी लोगों को सेवेर के जलपान और दोपहर के भोजन के अतिरिक्त संध्या का जलपान और रात का भोजन भी अवश्य ही चाहिए। यदि दोपहर के भोजन के बाद कुछ फल और रात के भोजन के उपरान्त थोड़ा दूध मिल जाये तो उसके लिए भी पेट में जगह की कमी नहीं है। ऐसी अवस्था में यदि देहातियों का स्वास्थ्य देखकर शहर वाले अपना मन न मसोसेंगे तो और क्या करेंगे? आपको नगरों में जो दुबले-पतले, जन्मरोगी और धँसी हुई आँखों वाले हजारों लाखों दुकानदार, फेरीदार, मुंशी, शिक्षक, वकील और छात्र आदि मिलेंगे उनके शारीरिक कष्टों का कारण भीमसेनी भोजन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इन शारीरिक कष्टों से बहुत ही सहज में छुटकारा पाने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि मनुष्य अपना भोजन धीरे-धीरे कम और परिमित करता हुआ दिन-रात में केवल एक बार भोजन करने का अभ्यास डाले। इस अभ्यास कम भोजन से एक मास में होने के लाभ बहुत अच्छी तरह समझ लेगा तब नियमित भोजन के अतिरिक्त उसे अमृत तक पिलाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव सा हो जायेगा। दिन-रात में केवल एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य कभी आवश्यकता से अधिक खा ही नहीं सकता। उसके गले के नीचे उतना ही भोजन उतरेगा, जितना उसका पक्वाशय चौबीस घंटों में पचा सकेगा। भारतवर्ष में ऐसे सैकड़ों हजारों आदमी मिलेंगे जो व्रत रूप में केवल एकाहार करते हैं। ऐसे लोग देखने में स्वभावतः प्रसन्नचित्त, शरीर से हष्ट-पुष्ट और सात्विक प्रवृत्ति के होंगे। निश्चित समय को छोड़कर और कभी कुछ खाने की उनकी प्रकृति ही न होगी। क्यों? इसीलिए कि वे प्रकृति के अनुकूल आचरण करते हैं। वे कभी रोगी नहीं

आयुर्वेद एवं जैन धर्म में सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच के काल को ही भोजन के लिए उचित बताया गया है क्योंकि इस काल में प्रत्येक प्राणी की जठराग्नि स्वाभाविक रूप से अच्छी तरह प्रदीप्त रहती है। रात में वह मंद पड़ जाती है। अतः रात में किया हुआ भोजन ठीक से पचता नहीं है।

होते क्यों ? इसीलिए कि वे अपने पेट की मशीन कभी व्यर्थ नहीं चलाते।

जो लोग दिन रात में केवल एक बार भोजन करना चाहते हों उनके लिए भोजन का सबसे अच्छा समय संध्या है। यह एक बहुत ही साधारण बात है कि पेट भरे होने पर न तो परिश्रम होता है और न परिश्रम करना उचित ही है। दिन के समय मनुष्य को बहुत कुछ शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसी दशा में दिन के समय किसी प्रकार का भोजन न करके केवल रात के समय भोजन करना बहुत ही श्रेष्ठ और लाभदायक है। एक बार जब अनुभव से दिन को भोजन न करने के गुण मालूम हो जायेंगे तब फिर कभी किसी तरह की चीज पर आदमी का मन ही न चलेगा। वयस्क लोग एक मास में बहुत अच्छी तरह इसका अभ्यास कर सकते हैं और बालकों को दस वर्ष की अवस्था तक सहज में इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डॉ. लिंकन नामक एक विद्वान अपने बालकों को दिन में कभी किसी प्रकार की चीज खाने के लिए नहीं देते थे और प्राय: कहा करते थे कि बिना दिन भर काम किये भोजन की इच्छा करना ठीक वैसा है जैसा कि किसी कारीगर का बिना दिन भर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी मांगना।

मनुष्यों को बहुत से रोग ऐसे होते हैं, अधिक भोजन के अतिरिक्त जिनका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगों को जो अधिक भोजन करके ही अपने शरीर को रोगी बनाते हैं दिन रात में केवल एक बार भोजन करने से बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। एक बार भारत में एक पादरी महाशय ज्वर से बुरी तरह पीड़ित हुए। सात महिने तक डाक्टरों ने उनका शरीर दिन में तीन बार भोजन, छ: बार औषध और कदाचित इससे भी अधिक बार दूध और व्हिस्की से खूब भरा। यहाँ तक कि अंत में वे सूख कर कांटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिका को चले गये। वहाँ सौभाग्वश उनकी भेंट एक योग्य उपवास चिकित्सक से हो गई। उपवास-चिकित्सक ने उन्हें दिन रात में केवल एक बार ही भोजन देना आरंभ किया और थोड़े ही दिनों में उनकी सारी शिकायतें दूर हो गईं। चार महिने के अंदर ही वे बहुत हष्ट-पुष्ट हो गये और तोल में आध मन बढ़ गये। वहाँ से निरोग होकर वे फिर भारत चले आये और

खूब परिश्रम करके दिन-रात में केवल एक ही बार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे चार वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीच में वे या उनके परिवार के लोग भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन में एक बार डॉ. रैबेग्लैटि ने एक ऐसी बालिका का हाल सुनाया था, जिसकी अस्वस्थता चार वर्ष की थी और जिसके दाहिने घुटने से भयंकर अस्थिक्षय हो गया था। उस बालिका को दिन रात में चार बार के बदले केवल एक बार भोजन दिया जाने लगा। सुबह और शाम को उसे थोड़ा-थोड़ा दूध भी दिया जाता था। उस बालिका को और भी कई भयंकर रोग थे पर सवा बरस में उसके सब रोग समूल नष्ट हो गये और वह वजन में चौदह सेर के बढ़कर उन्नीस सेर हो गई। इस अवसर पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अस्थि-क्षय एक ऐसा रोग है, जिसका अच्छा होना प्राय: असंभव समझा जाता है और जो रोगी के प्राण बिना लिये छूटता ही नहीं।

इंग्लैण्ड में एक बार एक स्त्री के गर्भ में पथरी का सा एक रोग हो गया और उसमें कई सेर तोल की एक गाँठ पड़ गई। उसका चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था, दिन-रात सिर में दर्द रहता था, कब्जियत थी, कै आती थी और इसी तरह की बीसियों शिकायतें थी। शल्य चिकित्सा करके उसके गर्भ की गाँठ तो निकाल दी गई थी पर उसकी दुर्बलता और दूसरी सब शिकायतें बराबर बढ़ती ही जाती थी। जब उसके बचने की कोई आशा न रही तब उसे दिन-रात में दो बार भोजन दिया जाने लगा पर जब उससे कुछ लाभ न हुआ तब केवल एक बार के भोजन की ठहरी। इससे उसकी सारी शिकायतें दूर होने के सिवा छ: सप्ताह में उसका वजन तीन सेर बढ़ गया। जुलाई १९०१ में उसकी शल्य चिकित्सा हुई थी और दिसम्बर में वह पूर्ण रूप से निरोग और अपने सब काम करने में समर्थ हो गई थी। यदि वह औषधियों और भोजन के सहारे ही रक्खी जाती तो इसमें कोई संदेह नहीं था कि वह उन्हीं का शिकार बन जाती।

जल-पान न करना

यदि आरंभ में ही आप एक दम से दोपहर का भोजन न छोड़ सकें तो कम से कम सवेरे का जल पान या कलेवा करना अवश्य छोड़ दें। इससे होने वाले लाभ भी अपेक्षाकृत कुछ कम नहीं है। इस अवसर पर हम अपनी ओर से कुछ अधिक न कहकर प्रसिद्ध विद्वान डॉक्टर डेवी के अनुभव का सारांश यहाँ पर दे देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। आने लिखा है-

जिस दिन मैंने पहले पहल जल-पान छोड़ा था उस दिन मेरा शरीर और मन इतना हल्का और प्रसन्न हुआ जितना कभी बाल्य या युवा अवस्था में भी नहीं हुआ था। दोपहर के समय भूख लगने पर मैंने बहुत अच्छी तरह भोजन किया। उस समय बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ता था। रात भर सोने के बाद प्रातःकाल कभी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। सोना कोई ऐसी क्रिया नहीं है जिससे कि उसकी समाप्ति पर ही भूख लग आवे। हजारों ऐसे आदमी हैं जिन्होंने अपना प्रातःकाल का जल-पान छोड़ दिया है और थोड़े ही दिनों बाद जिन्हें कभी उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी। यदि जल-पान आवश्यक होता तो यह बात कभी न होती क्योंकि प्रकृति अपनी आवश्यकता को पूरा किये बिना कभी नहीं मानती। यह कदापि संभव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकता को बिना पूरा किए ही अथवा थोड़े भोजन पर ही हमारे शरीर को बिल्कुल ज्यों का त्यों बनाये रखे। जो जल-पान तुम बिना आवश्यकता के और केवल अपने अभ्यास के कारण करते हो, वह बड़ी सरलता से तुम्हें उसके छोड़ देने की आज्ञा दे सकती है। पर यदि तुम उसकी आवश्यकताओं को पूरी तरह से पूरा न करोगे तो आगे चलकर तुम्हें उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

जल-पान करना छोड़ दो और जब तक खूब तेज भूख न लगे तब तक कभी कुछ मत खाओ। जब तुम उस भूख के आसरे रहोगे तब अवश्य ही वह अपने समय पर उचित रूप में मालूम पड़ेगी। उस अवसर पर तुम स्वयं ही यह निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितनी खानी चाहिए। जब तक भोजन

की पूरी-पूरी आवश्यकता न हो तब तक कोई भोजन बल-वर्द्धक और स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता। वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करने के लिए खूब तेज भूख, खूब स्वादिष्ट मालूम होने वाले सादे भोजन, खाद्य पदार्थ को बहुत अच्छी तरह चबाने और पाचन के समय मन को खूब शांत रखने की आवश्यकता होती है।

बिना जल-पान किये अपने काम पर जाओ, दोपहर के भोजन के समय तुम्हें खूब तेज भूख लगेगी। इतनी तेज भूख लगेगी कि यदि तुम भोजन से पहले किसी प्रकार की शक्ति-वर्द्धक औषध खाने के अभ्यस्त होगे तो वह औषध खाना भूल जाओगे। तुमको भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ेगा और भोजन के उपरांत तुम्हारी तबियत इतनी अच्छी जान पड़ेगी कि तुम्हें किसी तरह का पाचक या चूरन खाने की भी आवश्यकता न रह जायेगी। कितनी सीधी बात है। जब तक वास्तविक और खूब भूख न लगे तब तक कुछ मत खाओ, चाहे सारा दिन सप्ताह या महीना भी क्यों न बीत जाय। उपवास करना बहुत ही सुरक्षित है। उसमें किसी प्रकार की हानि की कोई संभावना नहीं है।

यदि परिवार में एक मनुष्य प्रात:काल का जल-पान करना छोड़ देगा तो उससे होने वाले लाभों को देखकर संभवत: परिवार के और लोग भी बहुत ही शीघ्र अपना-अपना जल पान छोड़ देंगे। जल-पान न करने वालों का चित्त सदा प्रसन्न रहता है, उन्हें कभी किसी तरह की शिकायत नहीं होती। अमेरिका वालों की देखा देखी यूरोप वाले भी जल पान न करने के गुण समझने लगे हैं। अभी हाल में इंग्लैण्ड में एक स्वास्थ्य संवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जल-पान की प्रथा रोकना है। जिस दिन उस सभा की स्थापना हुई उस दिन उसमें नगर के बहुत बड़े-बड़े अधिकारी, रईस और विद्वान इकट्ठे हुए थे। यह सभा इंग्लैण्ड के मैंचेस्टर नगर में हुई थी। उस अवसर पर वहाँ के मैंचेस्टर गार्डियन नामक प्रसिद्ध पत्र ने लिखा था- आज मैंचेस्टर नगर में पहले दिनों की अपेक्षा सैकड़ों जल-पान कम हो जायेंगे और यहाँ की स्वास्थ्य सभा थोड़े ही घंटो में अपनी स्थापना का शुभ फल देख लेगी। संभवत: उसकी देखा देखी जल पान का निषेध करने वाली सैकड़ों सभायें स्थापित होंगी। लोगों का बहुत

सा समय केवल जल पान तैयार करने में ही लग जाता है। स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढ़ाने और सुखी रहने के लिए इससे अच्छा कौन सा काम हो सकता है ? इस तरह के रोगों से बचने और प्राप्त रोगों से मुक्त होने का इससे अच्छा कौन-सा उपाय हो सकता है ? मनुष्य जाति के लिए इससे अधिक उपकारक और कौन-सी बात हो सकती है ? यदि प्रकृति के नियमों का पालन किया जाये और अपने शरीर को अवसर दिया जाये तो अवश्य ही वह अपनी सारी मरम्मत आप ही कर लेगा। यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथा की पुनरावृत्ति है। यह सर्वरोगनाशक कोई पेटेंट दवा नहीं है बल्कि हमारे जीवन की रक्षा का सर्वोत्तम उपाय है। इस नये उपाय से उन पुराने कुछ उपायों का नाश होगा जिनके कारण शरीर रक्षा के बहाने से मनुष्य जाति को तरह-तरह के कठोर दण्ड सहने पड़ते हैं।

लंडन के एक दिग्गज डॉक्टर ने जो इंग्लैण्ड के कई विशाल अस्पतालों में चिकित्सक का काम कर चुके हैं- रोगों के कारण के सम्बंध में एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में आपने एक स्थल पर लिखा है-

अमेरिका के डॉ.डेवी ने एक ग्रंथ लिखा हैं, जिसका मुख्य तात्पर्य यह है कि कुछ दिनों तक पूरा-पूरा उपवास करने से सैकड़ों तरह के रोग नष्ट हो जाते हैं और बहुत से साधारण रोग केवल जलपान छोड़ देने से ही छूट जाते हैं। यदि पक्वाशय को सोलह घंटो या उससे अधिक समय तक शांतिपूर्वक अपना काम करने दिया जाये तो बहुत से रोगों से मुक्ति हो सकती है। उस पुस्तक में इस क्रिया से अच्छे होने वाले बहुत से लोगों के विवरण दिये गये है। मैं जहाँ तक समझता हूँ उनका तर्क अकाट्य है और कथन बिल्कुल सत्य है।

यह परिणाम निकालकर मैंने स्वयं अपने ऊपर उसका अनुभव आरंभ किया और मैं जल-पान छोड़कर दिन में केवल दो बार भोजन करके रहने लगा। जब मैंने सवेरे और संध्या का जलपान छोड़ दिया तब दोपहर को एक बजे मुझे बहुत अच्छी तरह भूख लगने लगी। उस समय अच्छी तरह खाने के बाद रात

को आठ बजे तक कभी कुछ खाने की मेरी इच्छा न होती थी। इसका परिणाम ठीक वैसा ही हुआ, जैसा डॉ. डेवी ने अपनी पुस्तक में बतलाया है। प्रातःकाल मेरी तबीयत बहुत प्रसन्न रहने लगी और मैं बहुत अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने के योग्य हो गया। एक बजे मुझे तेजी से भूख लगती थी जैसी पहले कभी बरसों से न लगी थी। जब मैं जलपान किया करता था तब उसके उपरान्त मुझे बहुत सुस्ती मालूम हुआ करती थी और उसके घंटे दो घंटे बाद तक अच्छी तरह मानसिक परिश्रम न हो सकता था। इस प्रकार मैं दिन में दो बार भोजन करके बहुत अच्छी तरह रहने लगा।

यह मिथ्या भ्रम मन से निकाल डालो कि अपना स्वास्थ्य और बल बनाये रखने के लिए हमको दिन में तीन बार भोजन करना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य के लिए दिन रात में दो बार भोजन करना यथेष्ट है। बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम करने वाले और युवावस्था के लोग भी बड़े आनंद से दिन-रात में केवल दो बार भोजन करके रह सकते हैं। इससे उनका स्वास्थ्य सुधरेगा तथा बल बढ़ेगा। बहुधा लोग सबेरे स्नान आदि से निवृत्त होते ही बिना भूख लगे जबरदस्ती कुछ न कुछ खा ही लेते हैं। शरीर पर इस जबरदस्ती का बहुत ही बुरा परिणाम होता है। यदि यह अभ्यास छोड़ दिया जाये और प्राकृतिक नियमों का अनुसरण किया जाय, केवल उसी समय भोजन किया जाय जबकि खूब तेज भूख लगे तो संसार में बहुत से रोग और फलतः चिकित्सकों के चिकित्सालय आदि भी कम हो जायें।

खान-पान का विचार

प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने खान-पान का विचार रखना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि हम जो कुछ खाते या पीते हैं उसका प्रभाव केवल हमारे शारीरिक संगठन पर ही नहीं पड़ता बल्कि हमारे आचार-विचार और स्वभाव के साथ भी उनका बहुत ही घनिष्ट संबंध होता है। संसार में जितने जीव हैं प्राय: उन सबके लिए कुछ न कुछ विशिष्ट प्राकृतिक भोजन निश्चित होता है और निश्चित भोजन को छोड़कर वह जीव और किसी प्रकार का पदार्थ नहीं खाता। आप किसी शाकाहारी पशु को लाख प्रयत्न करने पर भी कभी किसी प्रकार का मांस या कीड़े-मकोड़े आदि नहीं खिला सकते। किसी मांसाहारी पशु को फल आदि खिलाने का प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता पर संसार के समस्त जीवों में अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझने वाला मनुष्य अपने खान-पान के संबंध में कभी किसी प्रकार का विचार नहीं रखता। बहुधा उसे जब जो कुछ मिलता है वह सब खा लेता है। तरह-तरह के विषाक्त और मादक द्रव्य और झींगुर, बिल्ली, कुत्ते, चूहे आदि सभी उसके लिए खाद्य हैं। संसार में कठिनता से कोई ऐसा पदार्थ मिलेगा जिसे मनुष्य किसी रूप में भी अपने पेट में न उतार सकता हो। यही नहीं वह अपने खाने के लिए नित्य तरह-तरह के नये पदार्थों का अन्वेषण और अविष्कार किया करता है पर खान-पान संबंधी यह अत्याचार मनुष्य जाति के लिए कितना हानिकारक और कितना दुखदायक है इसका विचार करने का कष्ट बहुत ही कम लोगों ने उठाया होगा।

मोटे हिसाब से संसार में दो प्रकार के खाने वाले लोग माने जाते हैं, एक शाकाहारी और दूसरे मांसाहारी। शाकाहारियों के संबंध में किसी को कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि फल और शाक आदि मनुष्य का निसर्गसिद्ध भोजन है। मांस के कट्टर से कट्टर पक्षपाती भी चाहे केवल शाहाकार की निन्दा भले ही करें पर शाकाहार पर वे किसी प्रकार का आक्षेप नहीं कर सकते क्योंकि प्रत्येक मांसाहारी अवश्य ही शाकाहारी भी होता है। आक्षेप करने

योग्य केवल मांसाहारी ही हैं। अब देखना यह है कि मांसाहारियों पर जो आक्षेप किये जाते हैं वे वास्तव में कहाँ तक सत्य हैं।

कदाचित यहाँ इस बात को विशेष रूप से सिद्ध करने की कोई आवश्यकता न होगी कि मांस खाने वालों की प्रकृति बहुधा उग्र, उद्दण्ड और हिंसक हो जाती है और फलत: वे लोग क्रूर, निरंकुश और अत्याचारी हो जाते हैं। मांसाहारियों के कारण दूसरे मनुष्यों और जीवों को बहुत कुछ अत्याचार सहना और पीड़ित होना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप शेर और गौ, बाज और तोते पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल-प्रयोग आदि की गणना गुणों में की जा सकती हो तो अवश्य ही मांसाहार भी उत्तम और प्रशंसित हो सकता है अन्यथा यह इसके विरुद्ध प्रमाणित होगा। कुछ लोग मांसाहार के पक्ष का समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्य को अपने अधिकारों की रक्षा करने और अपना अस्तित्व बना रखने के लिए ही मांसाहारी होना बहुत आवश्यक है। इसी कोटी के एक सज्जन ने एक बार अपने पक्ष के समर्थन के लिए लेखक को किसी आर्ष ग्रंथ का इस आशय का एक मंत्र सुनाया था कि सृष्टि का यह परंपरागत नियम है कि चार पैरों वाले दो पैरों वालों को खायें और दो पैरों वाले बिना हाथ पैरवालों को खायें। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक सबल अपने से निर्बल को खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों में भी इस सिद्धान्त के अनुयायियों की कमी नहीं है। वे लोग दुर्बलता को महान पाप समझते हैं और उत्तरोत्तर सशक्त बनना अपना परम धर्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विचारवान बिना किसी प्रकार का आगा पीछा किये राजनीतिक और सामाजिक आदि कारणों से यह सिद्धान्त तुरंत स्वीकार कर लेगा और उसकी उपयोगिता में कभी किसी प्रकार का संदेह नहीं करेगा पर यदि कोई मांसाहारी इस सिद्धान्त को अपनी पाशविक वृत्ति के समर्थन और पोषण के लिए सामने रखेगा तो विचारवानों को अवश्य ही उस पर दया और हँसी आवेगी। अपना अस्तित्व बनाये रखने, राजनीतिक अधिकार रक्षण के लिए अधिक से अधिक बल की हो आवश्यकता हो सकती है। क्रूर, भीषण और अत्याचारी प्रकृति से उसमें क्या सहायता मिलेगी? कोई मांसाहारी दावे के साथ यह बात नहीं कह सकता कि उसमें

किसी शाकाहारी की अपेक्षा अधिक बल है। शारीरिक बल बहुधा शारीरिक शक्तियों के निरंतर और सदुपयोग से ही बढ़ता है। प्रत्येक मनुष्य जिसका आचरण आदि परिमित हों बलिष्ठ हो जाता है। मांसाहार से शरीर की बलवृद्धि में कभी किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती बल्कि उल्टे उससे मनुष्य का शरीर तरह-तरह के भयंकर रोगों का घर हो जाता है और वह उसकी मृत्यु का कारण होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है।

भारत सरीखे दरिद्र देशों में कुछ लोग मांस मछली खाना इसलिए उपयुक्त समझते हैं कि उसमें दाम कम लगता है। मांस तो अन्न से सस्ता पड़ ही नहीं सकता। रही मछली, सो उससे भी सस्ते दाम के शाक आदि प्रायः सभी स्थानों में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह बात भी मान ली जाये कि मांस मछली बिल्कुल मुफ्त मिलती है और अन्न, फल और दूध आदि में घर की सारी जमा लग जाती है तो भी मांसाहार का समर्थन नहीं होता। क्या कोई पदार्थ केवल इसी विचार से खाद्य सिद्ध हो सकता है कि उसमें हमारा दाम नहीं लगता ? कदापि नहीं। किसी पदार्थ को खाद्य सिद्ध करने के लिए उसमें प्रधानतः कुछ विशिष्ट गुणों की आवश्यकता होती है, मूल्य का प्रश्न तो बहुत ही गौण है। साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि मांस मछली आदि कहाँ तक सस्ती पड़ती है पर उसके सस्तेपन का विचार करने के समय डॉक्टर्स की उस फीस और औषधियों आदि के मूल्य को न भूल जाना चाहिए जो मांसाहार के परिणाम स्वरूप हमारी गाँठ से निकल जाता है। यदि मांसाहार के कारण होने वाले भीषण और प्राणघातक रोगों का भी विचार कर लिया जाये तो संभवतः संसार में इससे बढ़कर महंगा सौदा और कोई न दिखाई देगा।

माँसाहारियों ने अपने पक्ष के समर्थन के लिए जहाँ तरह-तरह की युक्तियाँ लड़ाई हैं वहाँ मनुष्य के शारीरिक और विशेषतः मौलिक संगठन की भी बहुत कुछ आड़ ली है पर शरीर शास्त्र के आधुनिक बड़े-बड़े विद्वानों ने परीक्षा और अनुभव से यह बात सिद्ध कर दी है कि शरीर संगठन के विचार से मनुष्य

शाकाहारी ही है मांसाहारी नहीं। इसके अतिरिक्त लेखक ने एक बार स्वर्गीय पं.खुन्नीलाल शर्मा को जिन्होंने बरेली में शायद बौद्ध धर्म से मिलता जुलता निर्विकल्प नाम का एक नया सम्प्रदाय खड़ा करने का विचार किया था, अपने व्याख्यान में यह कहते सुना था कि संसार का कोई जीव वास्तव में और स्वभावतः मांसाहारी नहीं होता। यहाँ तक कि शेरनी का बच्चा भी जन्म लेते ही पहले अपनी माता का दूध पीता है, बकरी या भैंसे का मांस नहीं खाता पर ये सब विषय अपेक्षाकृत अधिक गूढ़ हैं, इन पर विचार करना बड़े-बड़े विद्वानों का ही काम है पर मानव शरीर पर पड़ने वाले मांस के प्रभाव आदि का विचार बहुत कुछ वाद-विवाद और अनुभव आदि के कारण इतना सरल, स्पष्ट और सिद्ध हो गया है कि हम बिना किसी प्रकार की कठिनता से उसे अपने पाठकों के सामने रख सकते हैं।

जो पदार्थ दाँतों से अच्छी तरह कुचलकर चबाया और पीसा न जा सके वह मनुष्य के लिए कदापि खाद्य नहीं हो सकता। मांस में जो रेशे होते हैं वे भी ऐसे ही होते हैं। और फलतः वह खाये जाने के योग्य नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जो पदार्थ मनुष्य के खाने और पचाने योग्य नहीं है उसके खाने की प्रथा कब, क्यों और कैसे चली ? इसका उत्तर इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि बहुत प्राचीन काल में बहुत ही विवश होने पर कुछ लोगों ने मांस खाना आरंभ किया होगा और तभी से वह खाद्य पदार्थों में गिना जाने लगा और वास्तव में पराकाष्ठा की विवशता के अतिरिक्त माँस सीखे सरिखे घृणित पदार्थ के खाने का और कोई कारण हो ही नहीं सकता। बहुत संभव है कि मनुष्य को मांस खाने की कुछ शिक्षा हिंसक पशुओं आदि से भी मिली हो। आजकल जब मनुष्य को संसार के कोने-कोने में उत्तम वानस्पतिक और स्वाभाविक भोजन मिल सकता है तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य ऐसे अस्वाभाविक और हानिकारक पदार्थ का खाना बराबर जारी रखे। मांस के अस्वाभाविक भोजन होने का सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि कभी कोई बालक या वयस्क जिसने कभी मांस न खाया हो पहले पहल बिना बहुत अधिक अरूचि प्रकट किये कभी उसे खाना आरंभ नहीं कर सकता। मांस खाने का आरंभ अरूचि को दबाकर

अपनी प्रकृति और इच्छा के विरुद्ध करना पड़ता है। माँस खाना मनुष्य के लिए कितना अधिक हानिकारक है, इसके प्रमाण-स्वरूप यदि बड़े-बड़े डॉक्टर्स की सम्मतियाँ एकत्र की जायें तो शायद बहुत बड़ा पोथा बन जायेगा। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने रासायनिक परीक्षा से यह बात सिद्ध की है कि मांस में शरीर को हानि पहुँचाने वाले द्रव्य तो बहुत से होते हैं पर कोई ऐसा पौष्टिक द्रव्य नहीं होता जो हमें वनस्पतिजन्य खाद्य पदार्थों में न मिलता है। सब प्रकार के अन्नों में पौष्टिक द्रव्य मांस की अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं। परीक्षा द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शाकाहारी लोग मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक बलवान, अधिक परिश्रमी, अधिक शांत और अधिक विचारवान होते हैं। संसार में अब तक जितने बड़े-बड़े महात्मा, दार्शनिक, ऋषि और विद्वान हो गये हैं उनमें से बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो मांसाहारी हों और उनमें भी मांस के पक्षपातियों की संख्या तो और कम होगी।

मांस में यदि अन्न की अपेक्षा कोई विशेषता होती है तो वह उन उत्तेजक तत्त्वों की अधिकता है, जो प्रायः सब प्रकार के मादक द्रव्यों में हुआ करते हैं। जिस प्रकार मादक द्रव्य हमारे शरीर में पहुँचकर उसकी संजीवनी शक्ति को अपने साथ युद्ध में प्रवृत्त करके उसे चंचल बना देते हैं, ठीक उसी प्रकार का प्रभाव हमारे लिए उतना ही हानिकारक है जितना कोई मादक द्रव्य। यदि मांस में बल बढ़ाने की शक्ति होती तो मांसाहारी शेर को शाकाहारी भैंसे या ओरंग-ओटान से अपनी दुर्दशा कराने की नौबत न आती। जिस मांस से मनुष्य को क्षय, कण्ठमाला, पक्षाघात तथा तरह-तरह के सैकड़ों भयंकर फोड़े हो सकते और होते हैं वह मांस क्या कभी बलवर्धक अथवा कम से कम खाद्य हो सकता है ? हृदय रोगों की उत्पत्ति की भी, मांस खाने में, बहुत अधिक संभावना हुआ करती है। यूरिक एसिड नामक एक विषैला द्रव्य होता है जो मूत्र के साथ मनुष्य की शरीर से बाहर निकलता है। माँस खाने वालों के मूत्र में यह एसिड बढ़कर दुगुना और तिगुना तक हो जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि मांस खाने का गुरदों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और मांस खाने से रक्त संचालन में भी बड़ी बाधा पहुँचती है। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में आजकल कैंसर नाम का एक बहुत

भयंकर फोड़ा फैल रहा है जिससे लाखों मनुष्यों के प्राण जाते हैं। बहुत बड़े-बड़े डॉक्टर्स ने परीक्षा और अनुभव से यही निश्चित किया है कि इस भयंकर फोड़े का कारण मांसाहार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वहाँ इस भयंकर फोड़े को रोकने के लिए मांस की बिक्री तक बंद करने के लिए आंदोलन हो रहा है। तात्पर्य यह कि मनुष्य के लिए मांस खाना अत्यंत हानिकर और अनुचित है। मांस खाना मानों प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करना है। मांस में अनेक प्रकार के कीड़े होते हैं जो उसके साथ हमारे पेट में उतर जाते हैं और हमारा स्वास्थ्य नष्ट कर देते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं मांस पूरी तरह से नहीं पचता और उसका बहुत सा अंश पेट में पड़ा सड़ता है। अतः जो लोग सदा निरोग और हष्ट-पुष्ट बने रहकर अपनी पूरी आयु भोगना चाहते हों, उन्हें अन्न फल आदि सात्विक, स्वाभाविक और श्रेष्ठ पदार्थों को छोड़कर मांस आदि तामसिक, अस्वाभाविक और निकृष्ट पदार्थ कभी न खाने चाहिए।

मांस आदि के बाद शरीर के लिए बहुत ही हानिकारक पर प्रचलित द्रव्यों में दूसरा नंबर मादक द्रव्यों का है। शरीर पर मादक द्रव्यों का जो दुष्परिणाम होता है वह मांस के दुष्परिणामों से भी कहीं अधिक स्पष्ट और व्यक्त है, अतः उसके लिए बहुत अधिक विवेचना की आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्य को यह समझाने की आवश्यकता पड़े कि मादक द्रव्यों के व्यवहार से मनुष्य की आर्थिक, शारीरिक, धार्मिक और नैतिक आदि सभी दृष्टियों से बहुत हानि होती है, उससे बढ़कर अभागा और दुर्बुद्धि शायद ही कोई होगा। मादक द्रव्यों का व्यवहार करना अपने शरीर, बुद्धि और बल आदि को जानबूझकर बेतरह तंग करना नहीं हैं तो और क्या है ? जिस मनुष्य का मस्तिष्क शराब या गाँजे के प्रभाव से चकराया हुआ होगा वह कौनसी उत्तम बात सोचने, समझने अथवा करने में समर्थ हो सकता है ? तात्पर्य यह कि मादक द्रव्यों से संसार का सब प्रकार का अपकार ही होता है, उपकार कुछ भी नहीं होता। बहुधा लोग जब कुछ अधिक परिश्रम करने के कारण थक जाते हैं तब उस समय थकावट उतारने के लिए किसी प्रकार के मादक द्रव्य का व्यवहार करते हैं पर नशे के उतार के समय कोई उनकी थकावट के उतार का हाल पूछे। उस समय केवल

उनकी थकावट ही बढ़ जाती बल्कि उनके शरीर में बहुत कुछ बेचैनी भी उत्पन्न हो जाती है। थकावट दूर करने के लिए मादक द्रव्यों का व्यवहार करना वैसा ही है, जैसा कि जलती हुई आग बुझाने के लिए उस पर घी या तेल छोड़ना। जो थकावट केवल थोड़ा सा ठंडा जल पीने और कुछ देर तक खुली हवा में टहलने से ही दूर हो सकती है, उसे उतारने के लिए किसी प्रकार के मादक पदार्थ का सेवन करना मूर्खता ही है। एक गिलास शराब पी लेने के उपरांत दूसरा गिलास पीने की इच्छा होगी और उसके बाद बोतल खाली करने की नौबत आवेगी। यहाँ तक कि अंत में नशे का भूत उसे मनुष्यता से एकदम गिरा देगा। कुछ लोग केवल संग-साथ के विचार से ही मादक द्रव्यों का व्यवहार करने लगते हैं पर केवल संग साथ के विचार से ही ऐसे पदार्थों का व्यवहार करना जो हमारी शारीरिक-मानसिक और आत्मिक शक्तियों के नाशक हों, जिनसे हमारे जीवन की उपयोगिता का नाश हो और जिनसे हमारे कर्तव्यों में बाधा पड़े-बड़ी भारी मूर्खता है। कुछ लोग कोई बड़ा काम करने से पहले केवल इसीलिए कोई नशा खा या पी लेते हैं कि उसकी सहायता से उनके शरीर में खूब फुरती आ जायेगी और वे उस काम को शीघ्रता और उत्तमता से कर सकेंगे पर इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितना शीघ्रता और उत्तमता से स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्ति की सहायता के कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमता से किसी दूसरे पदार्थ की सहायता से और विशेषत: मादक सरीखे नाशक पदार्थों की सहायता से कदापि नहीं कर सकती है। इन सब बातों के अतिरिक्त नशीली चीजों से तरह-तरह के रोग उत्पन्न होते हैं। शराब पीने वालों का जिगर सड़ जाता है, गाँजा या चरस आदि पीने वाले पागल हो जाते हैं, अफीमचियों की आँते बेकाम हो जाती हैं और भाँग का आँखों पर बहुत ही नाशक प्रभाव पड़ता हैं। संसार के जितने मादक पदार्थ हैं वह सब विष हैं और विष सदा हमारे शरीर के शत्रु ही प्रमाणित होंगे उनसे किसी प्रकार के हित या कल्याण की आशा रखना व्यर्थ है।

खान-पान के विचार के अंतर्गत माँस और मादक पदार्थ आदि छोड़ देने के अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं, जिनका ध्यान रखना स्वास्थ्य बनाये रखने

के लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि जहाँ तक हो सके मनुष्य को सादा, सूखा और हल्का भोजन करना चाहिए। इस संबंध में यह बात सबसे अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठन में उन्हीं पदार्थों से सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं। शेष सब पदार्थों, हम चाहे उन्हें कितना ही पौष्टिक क्यों न समझें हमें कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। वे तो एक मार्ग से हमारे शरीर में केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्ग से निकल जाते हैं, हमारे शारीरिक संगठन में उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। दस पाँच सेर दूध केवल पी लेने से उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना पाव भर या आध सेर दूध के पच जाने से होता है। अत: केवल बलवृद्धि आदि के विचार से तरह-तरह के पौष्टिक पदार्थों को बराबर उदरस्थ करते रहने का फल उल्टा ही होता है। हल्के भोजन का विधान इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजन से पाचन शक्ति का नाश होता है और अग्नि मंद पड़ जाती है। पूरियों और पकवानों की अपेक्षा रोटियाँ सहज में पच जाती हैं और इसीलिए उनसे हमें अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन सूखा भी होना चाहिए। घी, मक्खन, पक्वान्न आदि से भी पाचन शक्ति बहुत मंद पड़ जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ पूरी खाने वाले भोजन के समय एक बार में चार पाँच पूरियों से अधिक नहीं खा सकते पर सूखी रोटियाँ अथवा भुने हुए दाने खाने वाले उनसे चौगुना और पंचगुना भोजन कर जाते है। उनके भोजन की केवल मात्रा ही नहीं बढ़ जाती बल्कि उससे होने वाले लाभ का मान भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। रूखा भोजन करने वाले लोग सदा खूब निरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खाने वाले दुर्बल होते हैं। तरह-तरह के मसालों आदि का भी कभी व्यवहार न करना चाहिए क्योंकि उनके संयोग से खाद्य पदार्थों के स्वाभाविक गुणों का नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने वास्तविक स्वरूप में हों अथवा जिनमें बहुत ही थोड़ा परिवर्तन हुआ हो। किसी पदार्थ के प्राकृतिक स्वरूप में जितना ही परिवर्तन किया जायेगा उसके गुणों का उतना ही अधिक नाश भी होगा। दरदरे पीसे हुए गेहूँ का व्यवहार करना लोग आजकल की सभ्यता के जमाने में भले ही हास्यास्पद

समझें पर इस बात से कोई समझदार आदमी इंकार नहीं कर सकता कि आटा जितना ही अधिक पीसकर महीन किया और छाना जाता है वह उतना ही गरिष्ठ भी होता जाता है। बिना छाने हुए आटे की अपेक्षा छाने हुए आटे की रोटी और छाने हुए आटा की रोटी की अपेक्षा बढ़िया मैदे की पूरी कहीं अधिक गरिष्ठ और हानिकारक होती है। इसी प्रकार दूध जितना औटाया जायेगा वह भी उतना ही गरिष्ठ होता जायेगा। पदार्थों का प्राकृतिक रूप ज्यों-ज्यों बदलते जाइएगा त्यों-त्यों उनके प्राकृति गुणों का भी नाश ही होता जायेगा। मनुष्य के लिए दूध तथा फलों से बढ़कर बलकारक और स्वास्थ्यप्रद और कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता पर जो लोग सदा दूध और फलों पर ही न रह सकते हों और दूसरे पदार्थों पर भी जिनका मन चलता हो उन्हें इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि उनका भोजन जहाँ तक हो सके सादा, हल्का और रूखा हो। मनुष्य का मन सहज ही में चल जाता है पर मांस के लोथड़े रखे हुए देखकर मनुष्य को सदा घृणा ही होती है तो भी आजकल के जमाने में मनुष्य मात्र के लिए केवल फल खाकर और दूध पीकर रहना प्रायः असंभव है। मनुष्य का स्वाभाविक भोजन अन्न ही है क्योंकि यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो वह भी फल की कोटी में ही आ जायेगा। अतः मनुष्य को फलों के साथ अन्न भी खाना चाहिए पर यह अन्न जहाँ तक हो सके बहुत ही कम विकृत रूप में आया हो और उसमें दूसरी चीजों का बहुत ही कम योग हो क्योंकि मनुष्य को निरोग और बलिष्ठ बनाये रखने में सबसे अधिक सहायता ऐसे ही पदार्थों से मिल सकती है। छौंके, बघारे और तले हुए पदार्थ तो हमारे शरीर के लिए किसी न किसी अंश में हानिकारक ही होंगे।

खान-पान के संबंध में दूसरी सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि मनुष्य को जब तक खूब तेज और खुलकर भूख न लगे तब तक कभी कुछ न खाना चाहिए। यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि अनावश्यक रूप से या अनिच्छापूर्वक किया हुआ काम सदा हानिकारक ही होता है। भोजन के समय भी इस सिद्धान्त की सत्यता भूल न जानी चाहिए। भूख का आस्तित्व हमें बतलाता है कि हमारे शरीर को पोषक द्रव्यों की आवश्यकता है पर उसका अभाव यही सूचित करता है कि अभी शरीर में यथेष्ट पोषक द्रव्य उपस्थित हैं।

खूब तेज भूख लगने पर हम जो कुछ खायेंगे वह हम तुरंत पचा सकेंगे और इसीलिए उसके द्वारा हमारे शरीर का पोषण भी होगा। केवल दैनिक चर्या समझकर खाया हुआ भोजन न तो खाने में ही स्वादिष्ट मालूम होगा और न हमारे तन में ही लगेगा। उल्टे उससे हमारे शरीर को हानि ही पहुँचती है और तरह-तरह के रोग उत्पन्न होते हैं। दूसरी बात यह है कि जब थोड़ी-सी भूख बाकी रह जाये तभी भोजन से हाथ खींच लेना चाहिए। खूब ठूंसकर भोजन करना और नाक तक भर लेना ही शरीर की सारी खराबियों की जड़ है। यदि भोजन करने के समय कोई पदार्थ बहुत ही चरपरा या बढ़िया होने के कारण स्वादिष्ट जान पड़े और उसे अधिक खाने की इच्छा हो तो कदापि उस इच्छा के फेरे में न पड़ना चाहिए और तुरंत भोजन से हाथ खींच लेना चाहिए। ऐसे अवसर के लिए एक विद्वान का आदेश हैं कि अपने कल्याण के लिए अपनी इच्छा और रसना को वश में रखो। यह प्रमाणित करो कि तुममें इतना नैतिक बल है कि तुम तुच्छ वासनाओं के फेर में नहीं पड़ सकते। बहुत से लोग पारलौकिक स्वर्ग की कामना से बड़े-बड़े व्रत करते और इन्द्रिय-दमन का अभ्यास करते हैं। तुम इहलौकिक स्वर्ग की इच्छा से ही पेटू बनना छोड़ दो। इस पेटूपन से छुटकारा पाने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम सदा सादा और रूखा भोजन करें। पहले तो सादे और रूखे भोजन पर तुम्हारा मन ही नहीं चलेगा, परन्तु जब कुछ दिनों में तुम अभ्यस्त होकर उसके गुण जान लोगे तब अच्छी से अच्छी चीज पर भी तुम्हारा मन नहीं चलेगा। साधारण फल खाने या दूध पीने के कारण कभी मनुष्य को अपचन नहीं होता और न खट्टे डकार ही आते हैं। उन दोषों को उत्पन्न करने का गुण पूरी, हलुए और मिठाई में ही है। खान-पान के संबंध में प्रकृति की आज्ञाओं का पालन करो। खूब तेज भूख लगने पर सादा भोजन उसी समय तक करो जब तक कि वह तुम्हें खूब स्वादिष्ट जान पड़े, तुम्हें कभी कोई शारीरिक व्यथा न होगी।

जल और वायु

जीवमात्र को अपने जीवन काल में जिस पदार्थ की जितनी अधिक आवश्यकता पड़ती है प्रकृति ने वह पदार्थ उतनी ही अधिक मात्रा में उत्पन्न और संग्रह करके पहले से ही रख दिया है। जीवनमात्र के लिए बहुत अधिक मात्रा में परम आवश्यक वायु होती है। यह वायु संसार में सब पदार्थों से अधिक मान में है और बिना किसी प्रकार के प्रयास का व्यय के सब जगह मिल सकती है। यही नहीं बल्कि प्रकृति ने ऐसी योजना कर रखी है कि वह छोटे, बड़े, अरक्षित सभी स्थानों में आपसे आप पहुँच जाती है। प्रत्येक जीव को कुछ न कुछ वायु की आवश्यकता होती है और यदि कोई विशेष प्रतिबंध न हो तो उसके लिए प्रत्येक स्थान में वायु पहुंच भी जाती है। परम उपयोगिता और आवश्यकता के विचार से सांसारिक पदार्थों में दूसरा स्थान जल का है। हजारों ऐसे जीवों के नाम बतालये जा सकते है, जो हजारों भिन्न-भिन्न पदार्थ खाते हैं पर वायु के अतिरिक्त संसार में यदि कोई ऐसी चीज है जिसकी आवश्यकता उन हजारों जीवों को पड़ती है तो वह जल ही है। सृष्टि में जहाँ-तहाँ जल की अधिकता इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए है।

जिस वायु और जल की संसार को इतनी अधिक आवश्यकता हो, उस वायु और जल में अनंत गुणों का होना केवल सहज और स्वभाविक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। वायु और जल में हमारे यहाँ ईश्वर का वास माना गया है। वास्तव में इन्हीं दोनों पदार्थों में सबसे अधिक संजीवनी शक्ति है। जेठ असाढ़ की धूप में दो-चार कोस चलने या दिनभर बहुत अधिक परिश्रम करने के उपरांत जितनी शान्ति एक गिलास ठंडे जल और ठंडी हवा के दस पाँच झकोरों से होती है उतनी शान्ति, उतना संतोष, उतना सुख संसार के और किसी पदार्थ से संभावित नहीं है। यदि अधिक सुख और अधिक संतोष मिल सकता है तो केवल अधिक जल या अधिक वायु से ही मिल सकता है। कपड़े उतार दीजिये और शरीर में ठंडी हवा लगने दीजिये, आपके सारे कष्ट मिट जायेंगे और मन प्रफुल्लित हो जायेगा। बढ़िया ठंडे जल से स्नान कर डालिए, सारी थकावट

दूर हो जायेगी और शरीर हल्का हो जायगा। उस समय आप भी हमारी तरह कहने लगेंगे कि ऐसे सुंदर पदार्थों से लाभ उठाने की अपेक्षा जो लोग और तरह के दूषित, निंदनीय और हानिकारक उपाय करते हैं, वे महामूर्ख हैं।

तो भी संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो ठंडी हवा और ठंडे जल को हौआ समझते हों जिन्हें ठंडी हवा और ठंडे जल में बड़े-बड़े दाँत दिखाई देते हों। खुली हवा में रहने और खुले जल में स्नान करने से जितने लाभ होते हैं उनका वर्णन नहीं हो सकता। पाश्चात्य विद्यानों ने तो उनकी उपयोगिता का यहाँ तक पता लगा लिया है कि अन्त में उन्हें जल चिकित्सा और वायु चिकित्सा को निश्चत और नियमित विज्ञान का रूप देना पड़ा है। संसार की प्राचीन जातियों ने भी अपने-अपने समय में आवश्यकतानुसार उनके लाभ समझ लिये थे और उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी थी। ब्रह्म मुहुर्त में जिस समय की वायु सबसे अधिक शुद्ध होती है उठना, पास या दूर की नदी में स्नान करना और खुली हवा में बैठकर ईश्वराधना करना प्राचीन आर्यों का सर्वप्रधान कर्तव्य होता था। आज तक उनकी बहुत सी संतानें उस कर्तव्य का बहुत से अंशों में पालन करती ही हैं। मिश्र तथा यूनान के प्राचीन निवासी भी इन प्राकृतिक और स्वास्थ्यप्रद आवश्यकताओं को बहुत अच्छी तरह समझते थे। वहाँ के प्रत्येक नगर में बढ़िया-बढ़िया स्नानागार होते थे जिनमें से अधिकांश के व्यय निर्वाह के लिए सर्वसाधरण पर कर लगाया जाता था। दक्षिण यूरोप में इस प्रकार के स्नानागार ईसा से पाँच छ: सौ वर्ष पहले तक हुआ करते थे। रोम के प्राचीन निवासियों ने अपने उन्नति-काल में इसी प्रकार के अनेक प्रबंध किये थे। आज तक संसार में खुले जल में तैरने अथवा खुली हवा में टहलने से बढ़कर और कोई व्यायाम लाभदायक प्रमाणित नहीं हुआ। इन दोनों की श्रेष्ठता का मुख्य कारण जल और वायु की ही श्रेष्ठता है, हमारे शरीर-संचालन का इसमें कोई निहोरा नहीं है।

संसार की सारी गंदगी का नाश या तो जल से होता है या वायु से। सूर्य के प्रकाश से भी उसके नष्ट होने में बहुत सहायता मिलती है पर गंदगी दूर करने

वाले पदार्थों में उसका नंबर तीसरा ही है। मैले कपड़े या स्थान आदि धोने के लिए जल का ही व्यवहार होता है। यहाँ तक कि हमारे शरीर के भीतर की गंदगी भी जल से ही नष्ट होती है। हर तरह की बैचेनी और घबराहट दूर करने में जल पीने से ही सहायता मिलती है। शरीर के किसी कटे हुए स्थान पर पानी डालने या गीला कपड़ा बाँधने से ही आराम मिलता है।

यहाँ तक कि फोड़े फुंसियों आदि में भी गीला का कपड़ा बाँधना ही लाभदायक होता है। पाश्चात्य जल-चिकित्सक तो सारे रोगों की चिकित्सा जल के अनेक प्रकार के प्रयोग से ही करते हैं। ऐसे उपयोगी पदार्थ से कभी किसी दशा में डरने का कोई कारण नहीं है। आरोग्यता की इच्छा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हर एक चौबीस घंटे में यदि संभव हो तो दो बार और नहीं तो कम से कम एक बार अवश्य खुले जल में स्नान करना चाहिए और यथासाध्य बहुत सा स्वच्छ और ताजा जल पीना चाहिए। स्नान करने से सारे शरीर के रोम-कूप खुले और साफ हो जाते हैं और उनमें से शरीर का बहुत सा विकार अनायास ही निकल जाता है। जल पीने से भी प्राय: यही लाभ होता है बल्कि कुछ अंशों में उससे होने वाला लाभ विशेष होता है क्योंकि पेट में उतारा हुआ जल पेट और पेडू के बहुत से विकारों को भी निकाल बाहर करता है।

वायु और रोग

ठंडे स्वच्छ और अधिक जल के अभाव में उसका बहुत सा काम ठंडी, स्वच्छ और अधिक वायु से भी निकल जाता है। प्राय: सभी देशों में वर्ष के अधिकांश समय में ठंडी ही हवा चलती है। गरम हवा कम। बहुत गरम देशों में भी कम से कम सवेरे और संध्या के समय चलने वाली हवा तो अवश्य ही ठंडी होती है। ठंडी हवा में गहरी साँस लेने से हमारे फेफड़ों के सारे विकारों का नाश हो जाता है। यह बात सभी लोग जानते हैं कि गंदी और थोड़ी हवा के कारण मनुष्य को अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं और उन रोगों में क्षय प्रधान है। स्वच्छ और ठंडी वायु के यथेष्ट सेवन से कम से कम श्वास और फेफड़े संबंधी सभी रोग बहुत सहज में नष्ट हो जाते हैं। रोगियों और चिकित्सकों की इतनी अधिकता होने पर भी आजकल रोगों के कारणों का किसी को ठीक पता नहीं चलता। एक जुकाम को ही लीजिए। सब लोग समझते है कि ठंडी हवा लेने से ही जुकाम हो सकता है अथवा जुकाम का कारण किसी न प्रकार की ठंडक है। साल में कम से कम दो-तीन बार तो सभी को जुकाम होता है पर बहुत से लोगों को हर महिने भी जुकाम हो जाया करता है। यदि कहीं जुकाम बिगड़ गया तो बनफशा या इसी प्रकार की और कोई दवा पीते-पीते नाक में दम आ जाता है। लोग बरसात या जाड़े के दिनों में सब खिड़कियों और किवाड़ों को इस प्रकार बंद कर लेते हैं कि उनमें से जरासी भी हवा न आ सके और उस कमरे की गरम हवा में रातभर बंद रहते हैं। यदि आप किसी से पूछिए कि भाई तुम्हें जुकाम कैसे हो गया? तो उत्तर मिलता है कि रात को सोए-सोए बहुत गरमी मालूम हुई। जरा खिड़की खोली, उसके खोलते ही ठंडी हवा का झकोरा लगा और जुकाम हो गया अथवा इसी प्रकार जहाँ और कहीं थोड़ी सी ठंडक मिली कि लोगों को जुकाम हो गया। पाश्चाचात्य देशों के विद्वानों ने तो अन्य रोगों के कीटाणुओं की तरह जुकाम में रोगियों को तरह-तरह की औषधियों दी जाती है पर कोई बुद्धिमान इस बात का जरा भी विचार करने की आवश्यकता नहीं समझता कि जुकाम उन्हीं लोगों को होता है जो ठंडी हवा को हौआ समझकर

उससे डरते हैं। जो लोग सदा ठंडी हवा में घूमते फिरते हैं उन्हें कभी जुकाम होता ही नहीं। जुकाम के सार कीड़े मैदानों और गरम स्थानों में फैलते हैं। ठंडे बर्फीले या पहाड़ी स्थानों पर उनकी कोई दाल नहीं गलती। जो लोग उत्तरी ध्रुव तक हो आये हैं उनका कथन है कि वहाँ के देशों में जुकाम या इसी प्रकार का और कोई रोग नहीं होता। यहीं नहीं बल्कि दिन-रात ठंडी हवा और बरफ में रहने वाले वहाँ के निवासी फेफड़े की किसी बिमारी का नाम भी नहीं जानते। ये सब रोग उन्हीं लोगों को होते है जो ठंडी हवा से डरते और घबराते हैं। स्वच्छ, खुली और ठंडी हवा का सेवन करने वालों से स्वयं उन रोगों को डर लगता रहता है।

गरमी के दिनों में मच्छरों से बचने के लिए घर-घर मसहरियाँ टांगी जाती हैं। उस मसहरियों पर बहुत से रूपये भी खर्च होते हैं। इस देश में तो मसहरियों का व्यवहार केवल मच्छरों के डंक से बचने के लिए ही होता है पर पाश्चात्य देशों में उन रोगों से बचने के लिए भी होता है, जो मच्छरों के द्वारा भयंकर रूप से फैलते हैं पर लाख उपाय करने पर भी मच्छर काटते ही हैं और रोग फैलते ही हैं पर क्या मच्छरों के डंक और उनके द्वारा फैलने वाले रोगों से डरने वाले लोगों ने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक बार मच्छरों ने जाकर अल्लाह मिया से फरियाद की थी सरकार हवा हमें बहुत दिक करती है, कहीं ठहरने नहीं देती। अल्लाह मियां ने जब हवा को बुलवाया तो मच्छर वहाँ से भी भाग गये। हवा के वहाँ से चले जाने पर मच्छर फिर रोते हुए अल्लाह मियां के पास पहुँचे। उस बार अल्लाह मियां ने मच्छरों को बहुत फटकारा और कहा कि फैसलता तभी हो सकता है जब मुद्दई और मुद्दालह दोनों मौजूद हों। जब तुम हवा के आने पर यहाँ ठहरते नहीं तब फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ? यदि मच्छरों के द्वारा फैलने वाले रोगों से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न करने वाले रोगियों और डाक्टर्स तथा मच्छरों के डंक से बचने की इच्छा रखने वाले शौकीनों ने यह किस्सा न सुना हो तो अब सुन लें और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अब समझ लें कि मच्छरों को दूर करने का सबसे सहज उपाय है बढ़िया, ठंडी और तेज हवा। मकान ऐसे बनवाइये जिनमें हर तरफ से बढ़िया हवा आती

हो। फिर क्या मजाल जो मच्छर आपको काटे या दूसरों के रोग लगाकर आपको रोगी करें।

बारहों महीने जुकाम और खाँसी आदि रोगों से पीड़ित रहने वाले लोग अधिक समय तक खुली और ठंडी हवा में रहने का अभ्यास करें तो बहुत सहज में और सदा के लिए आप का उन रोगों से उनका छुटकारा हो जाय। ठंडी हवा एक ऐसा पौष्टिक द्रव्य है जो हमारे फेफड़ों आदि को ऐसी दशाओं में भी बल प्रदान करती है जबकि संसार भर की सारी पौष्टिक औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। ज्यों ही तुम्हें गले या फेफड़े आदि में किसी तरह की शिकायत उठती हुई जान पड़े त्यों ही ठंडी और साफ हवा का खूब सेवन करो, उस शिकायत का नाम भी न रह जायेगा। बात यह है कि जिस स्थान पर किसी प्राकृति तत्त्व की आवश्यकता होती है। वहाँ औषधियों अथवा इसी प्रकार के और किसी पदार्थ से काम नहीं चल सकता। जब हमें बहुत तेज धूप या आँच लगती है तब हमारी त्वचा किसी प्रकार का मरहम या तेल नहीं मांगती, बल्कि यह वहाँ से हटकर केवल ठंडे स्थान में जाना चाहती है। दूसरे पदार्थ से उसका कष्ट दूर नहीं हो सकता। इस प्रकार जो रोग शुद्ध, स्वच्छ और अधिक वायु के अभाव के कारण होते हैं, क्या गोलियाँ, पुडियाँ और शीशियाँ उन्हें दूर करने में कभी समर्थ हो सकती हैं ? कदापि नहीं। उनकी आवश्यकता तो केवल स्वच्छ और अधिक हवा ही पूरी कर सकती हैं।

पाचन संबंधी दोषों को दूर करने के लिए भी स्वच्छ वायु ही रामबाण है। इसका प्रमाण आपको सारे संसार में मिलेगा। जो लोग विषुवत रेखा से जितनी ही दूर रहते हैं उनकी पाचन शक्ति उतनी ही अधिक होती है। उत्तरी ध्रुव में रहने वाले एस्किमों लोग इतना अधिक भोजन पचाते हैं जितना छः हिन्दु भी नहीं पचा सकते। जो लोग सदा खुली हवा में रहते हैं, उनकी शारीरिक और पाचन शक्ति बिना किसी प्रकार के परिश्रम या व्यायाम के ही बढ़ जाती है। खुली हवा में साँस लेने से रक्त खूब शुद्ध होता है और उसका संचार भी बढ़ जाता है। इस शुद्धि और संचार का शरीर के सभी अंगों पर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। जब डॉक्टर्स लोग औषधि आदि देते-देते थक जाते हैं और रोगों की दशा किसी

प्रकार नहीं सुधरती तब रोगियों को वे लोग पहाड़ या समुद्र तट जाने की सम्मति इसीलिए देते हैं। जिन लोगों को अनपच हो गया हो वे और दिनों में रात भर खुली हवा में सोकर तथा जाड़े के दिनों में अधखुली खिड़कियों पास सोकर ही अपने रोग से छुटकारा पा सकते हैं। घी,मक्खन आदि अथवा इसी प्रकार के अन्य ऐसे पदार्थ जिनमें नाइट्रोजन नहीं होता, ठंडी और सहज वायु की सहायता से बहुत ही सहज में पचाये जा सकते हैं।

ठंडी और स्वच्छ वायु में अनिद्रा रोग को दूर करने की विलक्षण शक्ति है। बहुत ठंडे प्रदेशों में जाड़ा आते ही बहुत से जानवर किसी एकान्त स्थान में चले जाते है और बसंत ऋतु के आगमन तक बिना किसी प्रकार का आहार किये महीनों सोते या ऊँघते रहते हैं। स्वयं हम सब लोगों को और दिनों की अपेक्षा जाड़े में कहीं अच्छी और अधिक नींद आती है। इसका कारण यही है कि जाड़े में हवा ठंडी और अधिक होती है। डॉ.फ्रान्किल्लन की सम्मति में ठंडी हवा नींद आने की बहुत अच्छी दवा है। आप लिखते हैं-

गरमियों में रात के समय जब मैं सोने के अनेक निरर्थक प्रयत्न कर चुकता हूँ तब उठकर बैठ जाता हूँ अपने सामने की खिड़की खोलकर प्रायः पन्द्रह मिनिट तक नंगे बदन हवा के रूख पर बैठा रहता हूँ। उस समय नींद न आने का चाहे जो कारण हो वह दूर हो जाता है और उसके बाद जब मैं लेटता हूँ तब मुझे कम से कम दो तीन घंटों के लिए खूब गहरी नींद आ जाती है।

यदि नींद न आने पर स्वच्छ वायु का सेवन करने के समय थोड़ी हल्की कसरत भी कर ली जाये तो उससे और भी अधिक लाभ होता है। सोने के समय रक्त की यथेष्ट रूप से शुद्धि नहीं होती, इसीलिए बहुधा सोए-सोए नींद खुल जाया करती है। यदि संध्या के समय थोड़ा सा व्यायाम कर लिया जाये या दो चार मील का चक्कर लगा लिया जाये तो उस दोष की संभावना नहीं रह जाती और मनुष्य बड़े आनंद से सारी रात खूब गहरी नींद में सोया रह सकता है।

वायु-सेवन

पिछले पृष्ठों में एक स्थान पर यह बतलाया जा चुका है कि शरीर को निरोग करने और स्वस्थ बनाये रखने में एक मात्र उपवास ही सहायक नहीं हो सकता बल्कि उसके लिए स्वच्छ वायु और व्यायाम आदि की भी आवश्यकता होती है। स्वच्छ वायु के सेवन से जितने लाभ हो सकते हैं, उन सबका वर्णन करना कम से कम हमारे सामर्थ्य के तो बाहर है। केवल घरों में बंद रहकर रटन्त करने वाले बालकों की अपेक्षा गलियों, सड़कों और मैदानों में चक्कर लगाने वाले बालक और उनकी अपेक्षा सदा खुली हवा में रहने वाले देहाती बालक कहीं अधिक निरोग और बलिष्ठ हुआ करते हैं। पालतू (और फलतः साफ हवा में न रहने वाले) जानवरों की अपेक्षा जंगली (और फलतः साफ हवा में न रहने वाले) जानवर कहीं अधिक बलिष्ठ और फुर्तीले हुआ करते हैं। प्रायः सभी धर्मों में नंगे पैरों और पैदल चलकर अनेक तीर्थों की यात्रायें करने का विधान है और उस विधान में भी स्वास्थ्य संबंधी यही परमोपयोगी और लाभदायक सिद्धांत हैं। उन यात्रियों पर आजकल की नई रोशनी के लोग भले ही हँसे पर उन्हें भी किसी न किसी रूप में कम से कम किसी बड़े मैदान की ही सही यात्रा करने की अवश्य आवश्यकता होती है और यदि वे वह यात्रा न करें तो उन्हें उसका दुष्परिणाम भी भोगना पड़ता है।

वायु-सेवन का सबसे अच्छा समय प्रभात है क्योंकि उस समय वायु बहुत शुद्ध, स्वच्छ, शीतल, मंद और अधिक होती है। ऐसे समय में यदि मनुष्य नित्य दो, चार या पाँच मील का चक्कर खेतों और मैदानों आदि में लगाया करे तो उसे कभी किसी डॉक्टर वैद्य या हकीम आदि का मुँह देखने की आवश्यकता नहीं रह सकती। उस समय हमारे शरीर को वायु से जो लाभ पहुँचता है वह तो पहुँचता ही है इसके अतिरिक्त रातभर की ओस हमारे पैरों से लगकर हमें और भी अधिक लाभ पहुँचाती है। ठंडे देशों में रहने वाले लोगों को तो यह लाभ अनायास ही हो जाता है पर जो लोग गरम देशों में रहते हैं वे भी सवेरे के समय मैदानों और जंगलों में घूमकर पहाड़ों और ठंडे देशों में रहने का लाभ उठा सकते

हैं। साँस लेने से जो वायु दूषित हो जाती है वह साधारण और शुद्ध वायु की अपेक्षा कहीं अधिक भारी होती है और इसीलिए वह प्राय: बंद नीचे स्थानों कोठरियों, दालानों, तहखाने और गलियों आदि में ही रहती है। अत: वायु सेवन के लिए मनुष्य को ऐसे स्थानों पर निकल जाना चाहिए जो बस्ती से बहुत दूर और ऊँचे हों पर यह बात बहुत ऊँचे पहाड़ों पर रहने वालों के लिए नहीं है क्योंकि बहुत अधिक ऊँचाई पर वायु स्वयं ही कम और हल्की हो जाती है और साँस लेने के लिए यथेष्ट नहीं होती। वहाँ की वायु तो शरीर और विशेषत: फेफड़ों के लिए भी हानिकारक होती है। अत: ऐसे स्थानों पर जहाँ तक हो सके और नीचे ही उतर आना चाहिए। यदि संभव हो तो सोने के लिए बल्कि रहने के लिए भी नगर से दूर किसी ऐसे मैदान में प्रबंध करना चाहिए जहाँ श्वास से दूषित वायु के पहुँचने की संभावना न हो और जहाँ यथेष्ट सर्दी पड़ती हो ऐसा प्रबंध एक साधारण छोटी-मोटी झोपड़ी बनाकर भी किया जा सकता है। वहाँ मनुष्य जब चाहे तब सुंदर, स्वच्छ, शीतल और पहाड़ों की वायु के मुकाबले की वायु का सेवन कर सकता है। जिस समय ठंडी वायु न मिल सकती हो उस समय पास के किसी झरने या छोटी नदी के शीतल जल में ही स्नान कर लेना चाहिए।

उन मैदानों और जंगलों में भी मनुष्य के लिए ऐसे कामों की कमी नहीं है जिनसे उसका मनोरंजन होने के साथ ही साथ बहुत कुछ व्यायाम भी हो जाता है। घूम-घूमकर तरह-तरह के फल, मेवे आदि खाना और आवश्यकता पड़ने पर उनके पेड़ों पर चढ़ना कम स्वास्थ्यप्रद नहीं है। चतुर और दक्ष मनुष्य मधु-मक्खियों के छत्ते से बहुत सा शहद भी जमा कर सकता है। पेड़ों पर चढ़ना एक ऐसी कसरत है जिससे शरीर के अंग प्रत्यंग पर जोर पड़ता है और शरीर खूब फुर्तीला हो जाता है। यह कसरत उन लोगों के लिए और अभी अधिक उपयोगी होती है जो दम अथवा इसी प्रकार के और किसी रोग से पीड़ित हों। इसी प्रकार वहाँ और भी अनेक ऐसे काम निकाले जा सकते हैं जिनसे मनोविनोद शारीरिक श्रम और आर्थिक लाभ आदि सभी बातें हो सकती हैं। वहाँ रहकर मनुष्य तरह-तरह की प्राकृतिक शोभायें निरख सकता है, अपना ज्ञान बढ़ा सकता है, रोग से

मुक्त हो सकता है, अनेक प्रकार की बुराईयों और दोषों से बच सकता है और अपने मन तथा आत्मा को शुद्ध और सुसंस्कृत कर सकता है। यदि मनुष्य सदा ही ऐसा जीवन न व्यतीत कर सकता हो तो उसे कम से कम सप्ताह में एक दिन महीने में चार दिन अथवा वर्ष में एक महीने अवश्य ही ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन स्वास्थ्यप्रद होने के अतिरिक्त बड़ा ही सात्विक और शुद्ध होता है और उसी में मनुष्य को वास्तविक और सच्चा सुख मिल सकता है।

नगर में रहने वाले बालकों को आरंभ से ही ऐसा मनोहर जीवन व्यतीत करने का अभ्यास डालना चाहिए। जो बालक इस प्रकार प्राकृतिक शोभाओं को निरखता रहेगा वह बड़े-बड़े शहरों की गंदी गलियों में घूमने वाले बालक की अपेक्षा कहीं अधिक निरोग बुद्धिमान और धर्मात्मा होगा। रेलों, जहाजों पर चढ़कर बड़े-बड़े नगरों आदि के देखने में बहुत सा धन व्यय करने की अपेक्षा बहुत ही थोड़े खर्च से आसपास की प्राकृतिक शोभायें देखना कहीं अधिक लाभदायक है। इसमें से अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो सदा अपने व्यापारों और कार्यों आदि में ही लगे रहकर कूपमंडूक और रोगों के घर बने रहते हैं। जो कृत्य वे सुखी होने के लिए करते हैं, वे ही कृत्य उन्हें और अधिक दुःखी बनाने के साधन होते हैं। ऐसे लोगों को यह बात भलीभांति समझ लेनी चाहिए कि प्रकृति से बढ़कर हमें सुखी करने वाला और कोई संसार में नहीं है। जो लोग देहात से चलकर किसी काम धंधे के लिए शहरों में रहते हैं वे कभी-कभी छुट्टी लेकर आराम करने के लिए अपने देहाती मकानों में तो अवश्य पहुँच जाते हैं पर नगर में पड़े-हुए अभ्यास के कारण वे देहातों में होने वाले लाभ से वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे लोग थोड़ा सा भी प्रयत्न करें तो बड़ी-बड़ी पौष्टिक औषधियों की अपेक्षा कहीं अधिक पौष्टिक पदार्थों से विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं आदि के देखने और सुंदर स्वच्छ वायु सेवन करने से इतने अधिक लाभ हैं कि एक विद्वान ने उनसे वंचित रहने को बड़ा भारी पाप कहा है।

बहुत से अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायु से इतना अधिक डरते हैं

कि जब वह स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बंद कर लेते हैं। रात के समय आपको नगरों के अधिकांश मकानों की खिडकियाँ और दरवाजे आदि बंद ही मिलेंगे चाहे उनके भीतर रहने वालों को कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटी सी कोठरी से सब किवाड़ बंद कर लेते हैं और लिहाफ या ओढ़ने के अंदर मुँह ढंककर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या अधिक से अधिक कोठरी की हवा सांस लेकर गंदी करते फिर उसी गंदी हवा में साँस लेते हैं। भारतवर्ष जैसे गरम देशों में भी यह दशा साल में छ: सात महिने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमी के दिनों में भी ओस और हवा से बचने के लिए रात को छाता लगाकर, सडकों पर चलते और मसहरियाँ लगाकर सोते हैं। खुली छतों पर सोना तो मानों उनके भाग्य में लिखा ही नहीं हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से ऐसा करना बहुत ही हानिकारक है।

यूरोप, अमेरिका आदि देशों में रात को सोने के समय मकान की सारी खिड़कियाँ और दरवाले आदि बंद कर लेने की और भी अधिक प्रथा है। क्रिमिया के युद्ध में रोगियों की सेवा शुश्रूषा आदि करने में जिस देवी नाइटिंगेल ने इतना नाम पाया था, उसे रोगियों को रात के समय अस्पताल के दरवाजे बंद करके रातभर गंदी वायु में रहते देखकर अत्यंत आश्चर्य और दु:ख हुआ था। एक बार उसने कुछ रोगियों से पूछा भी था- रात की वायु से तुम लोग इतना क्यों डरते हो ? क्या तुम लोग यह समझते हो कि कुछ समय के लिए सूर्य का प्रकाश न रहने के कारण ही वायु भयंकर और नाशक हो जाती है ? सूर्यास्त के बाद तुम्हें प्रकाश पूर्ण दिन की हवा तो मिल ही नहीं सकती, अब चाहे तुम रात की स्वच्छ प्राणप्रद और स्वास्थ्यवर्द्धक बाहरी वायु का सेवन करो और चाहे रोग उत्पन्न करने वाली कमरे के अंदर की गंदी हवा में रहो।

लोग हवा से तो इतना नहीं डरते पर उसके झोकों से बहुत अधिक डरते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि यही झोंके हमारे शरीर और फेफड़ों का बल बढ़ाने में सबसे अधिक सहायक होते है। सूर्यास्त के उपरांत जब वातावरण ठंडा हो जाता है तब उसके कारण वायु में संचार शक्ति स्वभावत: बढ़ जाती है।

संचार के कारण वायु की शुद्धि में बहुत अधिक सहायता मिलती है। इसीलिए रात की वायु दिन की वायु की अपेक्षा अधिक शुद्ध होती है। बाहर की बहती हुई और कमरे के अंदर की रुकी हुई हवा में उतना ही अंतर है जितना कि हरिद्वार के पास की गंगा और किसी बंगाली गाँव की गड़ही के जल में अंतर है। वायु में ठंडक के कारण इतना अधिक गुण बढ़ जाता है कि जाड़े के दिनों में जब कि हवा अधिक ठंडी होती है, रोगों और मृत्यु की संख्या और दिनों की अपेक्षा बहुत घट जाती है। रात की उसी ठंडी हवा से लोग इतना अधिक भागते हैं और डरते हैं पर इस भागने और डरने का उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य को जहाँ तक हो सके सदा अपने कमरों की खिड़कियाँ और दरवाजे आदि खुले रखने चाहिए। आप कह सकते हैं। कि रात के समय ठंडी हवा सही नहीं जाती। वह हवा इसीलिए नहीं सही जा सकती कि आप बहुत दिनों से उसके सहने का अभ्यास छोड़ बैठे है। जिस नदी का मार्ग जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपने प्राकृतिक मार्ग पर लाने के लिए जिस प्रकार किसी विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार जिस मनुष्य का स्वभाव जबरदस्ती बदल गया हो उसे अपना प्राकृतिक स्वभाव ग्रहण करने में विशेष अड़चन नहीं होती। केवल एक महीने में आपको खिड़कियाँ और दरवाजे खोलकर सोने और बैठने का इतना अभ्यास हो जावेगा कि फिर आपको बंद कमरे में थोड़ी देर तक रहना भी बहुत कठिन जान पड़ेगा। जाड़े के दिनों में अथवा अन्य अवसरों पर जब कि ठंडी और तेज हवा चलती हो, आप सर्दी से बचने के लिए एक के बदले दो और दो के बदले तीन लिहाफ ओढ़ें पर खिडकियाँ और दरवाजे बंद करके गंदी और जहरीली हवा में कभी रात भर न पड़े रहें। किवाड़ बंद करने में यदि आपका मुख्य उद्देश्य सर्दी से बचना ही हो तो वह उद्देश्य लिहाफों की संख्या बढ़ने से भी पूरा हो जाता है पर हाँ यदि आप गंदी और विषाक्त हवा के उद्देश्य से ही किवाड़ बंद करते हों तो बात दूसरी है। आपका स्वास्थ्य बनाये रखने और सुधारने के लिए साफ हवा की आवश्यकता है आप इस बात की कभी चिंता न करें कि वह साफ हवा कितनी ठंडी है। बहुत तेज जाड़ा पड़ने पर आप यदि पूरी खिड़की न खोल सकें तो आधी अथवा थोड़ी

सी अवश्य खोल दें क्योंकि बहुत तेज ठंडक से सब प्रकार के दूषित किटाणुओं आदि का नाश होता है।

सदा खुली हवा में रहने का अभ्यास करो, तुम्हें कभी कोई रोग न होगा। यही नहीं बल्कि उस दशा में तुम गंदी और बंद हवा में थोड़ी देर तक भी न रह सकोगे। अभी हाल में कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुव की और गये थे। वहाँ के एक टापू में उनका जहाज ठहरा था। वहाँ के कुछ जंगली लोग मल्लाहों के साथ जहाज पर चले आये और थोड़ी देर तक उनकी कोठरियों में रहे। उतने ही समय में उन्हें बेतरह खाँसी आने लगी, छाती में दर्द होने लगा और उनमें से कुछ को बुखार भी आने लगा। पुश्त-दर-पुश्त से खुली हवा में रहने के कारण वे उसके इतने अभ्यस्त हो गये थे कि पाँच मिनट भी गंदी हवा में रहकर वे उसके दुष्परिणाम से न बच सके।

व्यायाम

अब हम स्वास्थ्य संबंधी अन्तिम सिद्धांत की कुछ बातें बतलाकर यह पुस्तक समाप्त कर रहें हैं। उपवास, जल और वायु आदि के अतिरिक्त मनुष्य की आरोग्यता के लिए व्यायाम भी बहुत ही आवश्यक है। व्यायाम की उपयोगिता इतनी अधिक और सर्वसम्मत है कि आज तक उसके संबंध में कभी किसी प्रकार का वाद विवाद या विरोध हुआ ही नहीं। मनुष्य जाति को व्यायाम से होने वाले लाभ हजारों वर्षों से मालूम हैं और सदा उनकी उपयोगिता का समर्थन होता आया है। एक प्रसिद्ध डॉक्टर का मत है कि जब मैं शारीरिक श्रम से होने वाले कामों की और ध्यान देता हूँ तब मुझे कहना पड़ता है कि यदि सर्वसाधारण में व्यायाम का यथेष्ट प्रचार हो जाये तो आजकल के बहुत से फैशनेवर रोगों का अपने आपसे नाश हो सकता है। रोगों को औषधि आदि की सहायता से दूर करने की अपेक्षा शारीरिक संगठन को दृढ़ करके दूर कर देना कहीं अधिक उत्तम और निर्दोष है। चिरायता या नीम की पत्तियों को औंटा-औंटा कर उनके विषतुल्य कडुए काढ़े पीने की अपेक्षा उन पेड़ों पर चढ़ना अथवा उन्हें कुल्हाड़ी से काटना कहीं अधिक उपयोगी है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध राजमंत्री ग्लैड स्टन ने भूख बढ़ाने के लिए तरह-तरह की औषधों की अपेक्षा कुल्हाड़ी और रस्सी लेकर सबेरे के समय जंगल की ओर निकल जाने को ही अधिक उपयोगी बतलाया था।

मनुष्य के शरीर की उपमा किसी ऐसी नाव से दी जा सकती है, जिसके चलाने के लिए बिजली (या भाप आदि) और पाल दोनों की आवश्यकता होती है। जिस समय हवा बंद रहेगी उस समय तो वह नाव बिजली या भाप के सहारे चलती रहेगी पर जब हवा चलने लगेगी तब उसकी गति के बढ़ाने में पाल से भी सहायता मिलेगी। ठीक यही दशा हमारे शरीर की है। साधारण स्थिति में तो वह अपनी भीतरी शक्ति से काम करता ही रहेगा पर वायु सेवन और व्यायाम आदि पाल की तरह उसकी सहायता करेंगे। यही नहीं बल्कि जब कभी हमारे शरीर के भीतरी इंजिन के बिगड़ने की बारी आयेगी तब उसी व्यायाम रूपी पाल की

सहायता से उसकी गति में कोई अंतर न आने पावेगा। व्यायाम के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह दंड, मुद्गर, बैठक, डंबेल या जिम्नास्टिक आदि के रूप में ही हो। सभी प्रकार के कठिन शारीरिक परिश्रम व्यायाम ही हैं। किसी पहाड़ी पर चढ़ने या दौड़ने से आपका केवल व्यायाम ही नहीं होगा बल्कि आप कलेजे, श्वांस संबंधी सब प्रकार के रोगों से भी मुक्त रहेंगे। अफीम के सत की गोलियाँ खाकर आप कुछ समय के लिए उन्निद्र रोग को भले ही दबा लें पर उसका अन्तिम परिणाम आपके लिए घातक ही होगा। दिन के समय मैदानों में दौड़ धूप कर अथवा चक्कर लगाकर बिना कुछ व्यय किये अथवा जोखम उठाये आप केवल अपने उन्निद्र रोग से ही मुक्त नहीं हो जायेंगे बल्कि और भी किसी रोग को अपने शरीर में घर न करने देंगे। रोगों को भयंकरता का कारण बहुधा शारीरिक दुर्बलता ही हुआ करती है और उस दुर्बलता को समूल नाश करने का मुख्य और सर्वोत्तम साधन व्यायाम है।

डॉक्टर हफलैण्ड की सम्मति है कि इधर बहुत दिनों से मनुष्य घर के अंदर बंद रहने और पका पकाया भोजन करने लग गया है। दिन पर दिन उसके रोगी और दुर्बल होने का मुख्य कारण यही है। यदि मनुष्य अपनी शारीरिक दशा सुधारना चाहे तो उसे उचित है कि वह उन्हीं प्राकृतिक नियमों का पालन फिर से आरंभ कर दें जिनके अनुसार वह बहुत प्राचीन काल में चलता था अर्थात् यदि मनुष्य निरोग-रहना और बलिष्ठ होना चाहता हो तो उसे उचित है कि वह यथासाध्य शहर के बाहर मैदान में रहे अथवा अधिक से अधिक घूमे फिरे और सदा सादा भोजन करे। डॉक्टर बरनर मैकफेडन का मत है कि मनुष्य का शारीरिक अथवा नैतिक संगठन कदाचित आधुनिक सभ्यता के लिए उपयुक्त नहीं है जो उसे सदा घरों में बंद रखता और दिन पर दिन उसको शारीरिक श्रम से वंचित करता जाता है। यदि डरविन साहब का सिद्धान्त ठीक मान लिया जाये- जो कि वास्तविक में बहुत से अंशों में ठीक होने के अतिरिक्त संसार में प्राय: सर्वमान्य सा है तो उक्त दोनों विद्वानों के मतों की और भी अधिक पुष्टि हो जाती है। उसके भाई बंदर, गुरिल्ले, चिम्पैन्जी आदि सदा एक पेड़ पर से दूसरे पेड़ पर कूदा करते हैं और जंगल घूमते रहते हैं। इस दृष्टांत से हमारा यह तात्पर्य

नहीं है कि मनुष्य भी विज्ञान और कला-कौशल आदि का पीछा छोड़कर उन्हीं का सा हो जाय। कहने का मतलब केवल यह है कि मनुष्य निकम्मा और सुस्त बने रहने के लिए नहीं है बल्कि चंचल, चपल और फुर्तीला बने रहने के लिए है।

जो लोग सभ्यता के इतिहास और विकास के सिद्धांतों से भलीभांति परिचित हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य निरी जंगली अवस्था से कितने रूपों में परिवर्तित होकर वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। उसकी सभ्यता और एकदेशीयता के साथ ही साथ अकर्मण्यता और अस्वस्थता आदि अनेक दोषों की भी समान मात्रा में ही वृद्धि होती जाती है। यद्यपि मानव समाज का फिर उसी प्राचीन स्थिति तक पहुँच जाना न तो किसी को अभीष्ट ही हो सकता है और न संभव ही है तथापि उसके शारीरिक कल्याण के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वह उस प्राचीन काल के अपने जीवन का सर्वांश में परित्याग न कर दे। जिस मनुष्य के पूर्वज सदा अपना डेरा डंडा लादे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमा करते थे, वही मनुष्य आज सभ्य हो जाने के कारण सौ पचास कदम चलने में भी अपना अपमान समझता है। आजकल मकान ऐसे स्थानों पर बनवाये या लिये जाते हैं जहाँ दरवाजे तक गाड़ी लग सके। गाड़ी पर सवार होने के लिए बाबू साहब को सड़क तक चलने की तकलीफ भी न उठानी पड़े। इस सुकुमारता का फल भी हाथों हाथ मिल जाता है। बाबू साहब सदा दो चार रोगों का अड्डा बने रहते हैं। अधिक पैदल चलने से साल में दो चार जूतों का खर्च भले ही बढ़ जाये पर डॉक्टर की फीस और नुस्खों के दाम देने से अवश्य छुटकारा हो जायेगा। खूब घूमने फिरने के लाभों की परीक्षा दो ही दिन में हो सकती है। एक दिन आनंदपूर्वक घर में ही बैठे रहकर और दूसरे दिन दो चार दस मील का चक्कर लगाकर पहले दिन आप जो कुछ खायेंगे वह छाती पर धरा रह जायेगा और रात को अच्छी तरह नींद न आवेगी और दूसरे दिन भोजन मजे में पच जायगा और रात भर आप खूब खर्राट लेंगे।

मनुष्य का शारीरिक संगठन ही कुछ ऐसा अद्भुत है कि उसके जिस अंग

से काम न लिया जायेगा वह धीरे-धीरे दुर्बल होने लगेगा और अंत में बेकाम या नष्ट हो जायेगा। हाथों पैरों से काम न लिया जाये तो वे सूख जायेंगे। बहुत ही मुलायम और पतला भोजन करने से दाँत झड़ जायेंगे। यदि हम दिन रात टोपी और साफे का व्यवहार करके बालों की आवश्यकता दूर कर देंगे तो हमारे बाल भी व्यर्थ सिर का बोझ बने रहना पसंद न करेंगे और झड़ने लगेंगे। यही दशा फेफड़ों की भी समझिए। यदि हम उनसे यथेष्ट अथवा विशेष रूप से काम लेना छोड़ देंगे तो निश्चय है कि वे भी रोगी हो जायेंगे। फैफड़ों आदि से यथेष्ट काम लेने का सबसे अच्छा उपाय व्यायाम है। जो मनुष्य सदा किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करता रहेगा वह किसी प्रकार का व्यायाम न करने वाले की अपेक्षा कहीं अधिक निरोग और बलिष्ठ रहेगा। यदि समान स्थिति की दो बहनों में से एक का विवाह किसी देहाती साधारण जमींदार के साथ और दूसरी का शहर के किसी धनी कोठीवाल के साथ कर दिया जाये तो शरीर से काम लेने की उपयोगिता सहज में सिद्ध हो जायेगी। देहाती की स्त्री को कुएँ से पानी भरना पड़ेगा, चक्की चलानी पड़ेगी। गौओं,भैंसों की सानी आदि का प्रबंध करना पड़ेगा और इसी प्रकार के और भी अनेक कार्य करने पड़ेंगे पर कोठीवाल महाशय की स्त्री दिन भर मुलायम बिछौनों पर पड़ी-पड़ी सरस्वती के पन्ने उलटेगी और दर्पण में निरखती रहेगी। जी घबराने पर हाथ में मोजा बुनने की दो तीन सलाइयाँ और दो चार तोले उन ले लेगी और मिसरानी तथा मजदूरनी पर हुकुम चलावेगी। दस बरस बाद जब कभी किसी अवसर पर दोनों बहनों की भेंट होगी तब दोनों का अंतर आप ही प्रकट हो जायेगा। देहातवाली स्त्री स्वयं हष्ट-पुष्ट होने के अतिरिक्त दो चार मौटे ताजे बालकों की माँ होगी और कोठीवाल की स्त्री दुबली, पतली और प्रदर रोग से पीड़ित। यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि पानी भरने और चक्की पीसने वाली स्त्रियों को प्रदर या उसी प्रकार का और कोई रोग बहुत ही कम और कदाचित ही होता है। यह यूरोप और अमेरिका आदि देशों में जो स्त्रियाँ खूब पढ़ लिखकर डॉक्टरी, बैरिस्टरी या कुर्की करने लगती हैं उन्हें तरह-तरह के सैकडों रोग आकर घेर लेते हैं। अत: आँखे बंद करके किसी देश की प्रथा का अनुकरण करने से पहले उस प्रथा के

गुण-दोष आदि की भी भली भाँति मीमांसा कर लेनी चाहिए। ऐसा न हो कि केवल तड़क-भड़क के भुलावें में ही पड़कर हम अपने यहाँ के उत्तम गुणों को छोड़ बैठें और पीछे हाथ मलने की बारी आवे।

आजकल की सभ्यता शरीर से काम लेने को पाप सा समझती है। उसे सब कामों के लिए कलें चाहिए। तो भी अधिकांश नगर निवासियों को अपने पैरों से तो बहुत कुछ काम लेना पड़ता है पर हाथों से काम लेने की उन्हें बहुत ही थोड़ी आवश्यकता पड़ती है पर उचित और आवश्यक यह है कि जिस अंग से हमारे व्यापार में काम कम लिया जाता हो उस अंग से काम लेने के लिए हम या तो व्यायाम करें और या अपने लिए कोई नया व्यापार निकालें। केवल मनोविनोद और स्वास्थ्य के लिए यदि हम बढ़ई या लोहार का काम सीखें और फुरसत के समय घर पर ही दो चार पाटे-पटरियाँ बना सकें तो इसमें लज्जा या संकोच की कोई बात नहीं है। जंगल में जाकर लकड़ियाँ काटने में कोई शरम नहीं है। यदि शरम हो भी तो वह अधिक से अधिक उन्हें अपने सिर पर लादकर अपने घर तक लाने में ही हो सकती है। गोलियाँ निगलने और शीशियाँ पीने की अपेक्षा दंड पैलना, बैठकें करना और मुगदर फेरना कहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल बनवाने में बहुत से रुपये लगाने की अपेक्षा अखाड़े और व्यायाम शालायें बनाने में थोड़े रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चंगा करने का प्रयत्न व्यर्थ है। प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिसमें रोग का मूल ही नष्ट हो जाये उसे उत्पन्न होने बढ़ने और फैलने का अवसर ही न मिल सके। जड़ छोड़कर पेड़ काटना कभी लाभदायक नहीं हो सकता क्योंकि जड़ फिर पनपेगी, पेड़ फिर उगेगा। यही नहीं बल्कि उसके बीज चारों और गिरकर और भी नये पेड़ उत्पन्न करेंगे। अपने शरीर रूपी भूमि को रोग रूपी वृक्ष के जमने योग्य हो न होने दें और पहले से जो रोग उत्पन्न हों उनका समूल नाश करें, इसी में तुम्हारा, तुम्हारी जाति का, तुम्हारे देश का और समस्त संसार तथा मानव जाति का कल्याण है। एवमस्तु।

----- समाप्त -----
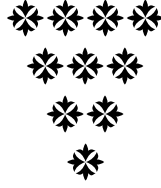
परिशिष्ट
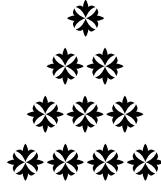
उपवासों की परीक्षाओं के परिणाम

अमेरिका के बोस्टन नगर में वहाँ के सुप्रसिद्ध धन-कुबेर और दानवीर कार्नेगी की स्थापित की हुई एक संस्था है जिसका नाम कार्नेगी इन्स्टीट्यूट ऑफ न्युट्रिशन लेबोरेटरीज है। इस संस्था की ओर से प्रोफेसर डॉ.फ्रांसिस गानो बैनेडिक्ट ने दो महत्वपूर्ण ग्रंथ (...... और.......) प्रकाशित किये हैं। इन ग्रंथों में जो उपवास संबंधी परीक्षाओं के परिणाम दिये गये हैं, उनका सारांश आगे दिया जाता है-

उपवास के पहले हफ्ते में तापमान (टेम्प्रेचर) नार्मल या नार्मल के आसपास रहा। कभी उसका झुकाव घटती की ओर रहता था और कभी बढ़ती की ओर परंतु पहले हफ्ते के बाद तापमान की निश्चित रूप से घटती हुई जो कि करीब-करीब उपवास के अंत तक कायम रही। नाड़ी-स्पंदन अर्थात् नाड़ी की चाल अधिकतर नार्मल के आसपास रही। कुछ केसों में कुछ अधिक और कुछ में कुछ कम। रेस्पिरेशन या श्वासोच्छवास की गति एकसी स्थिर रही। परिणाम यह निकाला गया कि नाड़ी की अपेक्षा श्वासोच्छवास की गति उपवास काल में अधिक स्थिर और बिना फेरफार की रहती है।

सीनेटर मूलर ने सेट्टी और ब्रिन्थॉप नामक दो रोगियों के खून की परीक्षा करके बतलाया कि दोनों के खून में लाल कोषों की वृद्धि हुई है। बाद की परीक्षाओं के परिणाम डॉ.टॉज्क ने इस प्रकार निकाले।

(१) लाल कोष आरंभ में कुछ समय तक कम होते हैं परंतु बाद में बढ़ने लगते हैं। (२) खून के सफेद कोषों की संख्या में कमी होती जाती है। (३) एककेन्द्रीय कोष अर्थात् मोनोनुक्लियर सेल्स में घटती होती है (४) इओसिनोफाइल्स और अनेक-केन्द्रीय कणों की संख्या में वृद्धि होती है। (५) खून में क्षार की कमी होती है।

---

* इस रसायनशाला में पोषण संबंधी अन्वेषण किये जाते हैं।

इसके बाद शक्ति की परीक्षा की गई और इसके लिए डायनोमीटर या शक्ति मापक यंत्र की सहायता ली गई। ये परीक्षायें बेनेडिक्ट ने डॉ.लेवान जिन पर और लुलियानी ने सुक्की पर की। उपवास के २१वें दिन उक्त यंत्र के द्वारा परीक्षा करने पर सुक्की की पकड़ या मुट्ठी उपवास के प्रथम दिन की पकड़ से कहीं अधिक मजबूत मालूम हुई परन्तु २० वें दिन से ३० वें दिन तक वह कम होती गई। इस पर टीका करते हुए डॉ लुसियानी लिखते हैं कि आरंभ में सुक्की की ताकत बढ़ने का कारण उसका इस बात का तीव्र विश्वाव था कि उपवास से मेरी ताकत दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। कमजोर इच्छा शक्ति वाले अविश्वासी लोगों में इसका परिणाम उल्टा भी हो सकता है परंतु यह निश्चित है कि उपवास के कारण उतनी शक्ति नहीं घटती जितनी कि लोग समझते हैं। थकावट की जाँच से मालूम हुआ कि २९ वें दिन भी सुक्की की थकावट का माप उतना ही था जितना कि साधारण लोगों का होता है।

मेरलाटी ने ५० उपवास किये। उपवास के दिनों में उसे बहुत बेचैनी और तकलीफ रही तथा कुछ ठंड सी मालूम होती रही। जेक्स ने ३१ उपवास किये उसे भी बेचैनी रही और उस पर १६वें दिन गठिया का हलका सा हमला हुआ परंतु अधिकांश रोगियों में जिन्हें उपवास कराये गये किसी प्रकार की स्पष्ट बेचैनी नहीं देखी गई, प्राय: सभी खुश नजर आये।

स्टॉक होम की सरकारी रसायन शाला में भी एक मनुष्य पर उपवास के प्रयोग किये गये। पहले छह दिनों में ही उसकी सारी तकलीफें रफा हो गईं और छठे दिन उसे फुर्ती और ताकत मालूम होने लगी परंतु उसके ज्ञान तंतुओं की कुछ ऐसी अवस्था हो गई कि यदि वह बिस्तर पर से एकाएक उठता था तो उसकी आँखों के आगे काले धब्बे नजर आते थे परंतु इसका कारण कमजोरी नहीं था।

डॉक्टर बेनेडिक्ट साहब इस पर से यह परिणाम निकालते हैं कि स्वयं उपवास के कारण- खासकर आरंभ में- किसी प्रकार की कमजोरी नहीं होती और जो थोड़ी बहुत कमजोरी होती भी है, उसके विषय में यह जोर देकर नहीं

कहा जा सकता कि वह उपवास के ही कारण हुई है।

डॉ. बेनेडिक्ट के कथनानुसार उपवास का सर्वप्रथम असर दस्त के परिमाण और नियमितता पर होता है। आँतो में बहुत देर पड़े रहने के कारण पाखाना बहुत ही कठिन, सूखा और गोलियों जैसा हो जाता है, जिससे प्राय: बैचेनी होती है। उसे निकालने में बड़ी कठिनाई होती है। कभी-कभी तो बहुत तकलीफ होती है और कुछ खून भी निकल आता है। उपवास के दिनों में मल निकालने के लिए एनिमा का उपयोग बहुत साधारण है। सुक्की के ३० दिनों के उपवास के अवसर पर इसका उपयोग किया गया था। उपवास के प्रथम दिन तो पाखाना नित्य के समान ही नियमित हुआ परंतु आगे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह हुई कि पाखाना अनेक दिनों तक रुका रहा और प्रकृति के द्वारा उसे निकालने का कोई भी दृश्य उद्योग नहीं किया गया।

शरीर की उष्णता पर भी उपवास का विचित्र प्रभाव पड़ता है। डॉ. रैबलग्लिटी लिखते हैं कि एक मनुष्य को जिसे सात वर्ष से कैका रोग था और इस कारण जो बहुत दुर्बल हो गया था और जिसके शरीर की गर्मी ९६ रह गई थी मैंने ३५ उपवास करने की सलाह दी। उपवास काल में उसकी गर्मी और भी कम रहने लगी परंतु उपवास के अंत में अच्छे होने से पर वह ९८.४ डिग्री हो गई।

ऊपर से दृष्टांत से वह सिद्धांत गलत ठहरता है कि शारीरिक गर्मी का मुख्य स्रोत भोजन है और यह सिद्ध होता है कि शरीर अपनी गर्मी के लिए भोजन की रासायनिक दहन क्रिया पर सीधे तौर पर अवलम्बित नहीं है।

जीभ की अवस्था रोगी के स्वास्थ्य का दर्पण मानी जाती है। यदि जीभ साफ होती है और सब बातें बराबर होती हैं तो कहा जाता है कि स्वास्थ्य ठीक है परंतु यदि उस पर मैल की तह जमी हो तो रोगी कम या अधिक अस्वस्थ समझा जाता है परंतु उपवास के कई कैसों में यह बात गलत साबित हुई है। उपवास का अध्ययन इस बात को सिद्ध करता है कि वह मनुष्य जिसकी कि जीभ पर मेल की तह जमी हो उस मनुष्य से कहीं अच्छी अवस्था में हो सकता

है जिसकी कि जीभ पूर्ण रूप से साफ है।

पहले चाहे जीभ साफ रहती हो परंतु उपवास आरंभ करते ही उस पर पपड़ी जमने लगती है और करीब-करीब अंत तक अधिकाधिक जमती जाती है। इस पर से यह नहीं कहा जा सकता कि उपवास के पहले रोगी विशेष स्वस्थ था या अब उपवास करने से उसकी दशा विशेष खराब हो गई है। जीभ पर पपड़ी जमने का कारण यह है कि प्रकृति मल को निकालने के सभी संभव रास्तों का उपयोग करती है। इससे शरीर के समस्त बारीक झिल्लीदार अंगो- मुँह, नाक, कान और आँखों में मल की तहें जमती हैं और फिर जीभ तो बृहत् अन्ननलिका का एक अंश है, इसलिए प्रकृति के द्वारा वह खास तौर से इस उपयोग में लाई जाती है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जब उपवास की आवश्यकता नहीं रहती और प्राकृतिक भूख लगने लगती है तब जीभ अपने आप साफ हो जाती है परंतु इसमें व्यक्तिक्रम भी होता है उपवास को चालू रखने के लिए केवल इसी एक बात पर अवलम्बित न रहना चाहिए। हाल में ही कई कट्टर रोगी इस हठ के कारण मर गये कि जब तक जीभ बिल्कुल साफ न हो जाएगी, तब तक कुछ न खायेंगे।

उपवास के कारण श्वासोच्छवास की गंध में भी फर्क पड़ता है। उपवास आरंभ करने के कुछ दिन बाद मुँह से एक खास और विचित्र तरह की गंध निकला करती है और उसके साथ एक और तरह की भी गंध आने लगती है। यह दोनों प्रकार की गंध मिश्रित होने पर क्लोरोफार्म की गंध के समान कुछ मीठी सी मालूम होती है। साधारण अवस्थाओं में उपवास का अंत समीप आने पर यह गंध बदल जाती है और फिर पहले के समान गंध आने लगती है।

अनेक लोगों पर अनुभव और प्रयोग करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकला है कि उपवास के समय वजन घटने का औसत परिमाण एक पौंड या आध सैर प्रतिदिन है। आरंभ में इससे कुछ अधिक घटता है और बाद में कुछ कम। चर्बीवाले स्थूल आदमियों का वजन अधिक शीघ्रता से घटता है और दुबलों का कम। ऐसे भी अनेक लोग देखे गये हैं जिनका वजन उपवास से

बिल्कुल नहीं घटा और सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि कुछ लोगों का वजन उपवास-काल में बढ़ने लगा। इस तरह की अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का विवरण डॉ.आर.टी.ट्राल ने अपने उपवास संबंधी महान ग्रंथ में दिया है। उनका कहना है कि वजन बढ़ना ऐसी अवस्था में होता है जबकि मनुष्य के शरीर का तंतुजाल बहुत घना और ठोस होता है और उपवास के समय उसके बीच की जगह स्पंज के छिद्रों की तरह खुल जाती है। उपवास काल में जो पानी पिया जाता है वह उक्त जगह में उसी तरह भरकर रह जाता है, जिस तरह स्पंज में पानी और वह शरीर के वजन को बढ़ा देता है। डॉक्टर ट्राल इस प्रयोग से इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि इस पर से उन्होंने मनुष्य की प्राकृतिक मृत्यु की भी व्याख्या कर डाली है। उनका कहना है कि प्राकृति मृत्यु शरीर की वह अवस्था है जबकि शरीर में ठोस द्रव्यों का अनुपात तरल द्रव्यों की अपेक्षा इतना अधिक बढ़ जाता है कि जीवन क्रिया ही असंभव हो जाती है। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है कि शरीर में तरलता और लचीलापन जीवन के लिए कितना महत्वपूर्ण है और उपवास इस प्रकार की अवस्था लाने का सर्वोत्तम उपवचार है।

ठोस भोजन बंद कर देने पर पेट के अंदर की दीवालें एक दूसरे के समीप झुकने लगती हैं और अंत में एक दूसरी से सट जाती हैं। यह अवस्था तब तक रहती है जब तक कि भोजन फिर शुरू नहीं कर दिया जाता है। उपवास के बाद मल के बहुत दिनों तक निकलते रहने का यही कारण है। जैसे-जैसे मल पकता जाता है, वैसे-वैसे निकलता जाता है।

एक दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि उपवास काल में पाचक रस का स्त्राव बिल्कुल बंद हो जाता है। इस प्रयोग से साधारण अवस्था में यह परिणाम निकाला जा सकता है, फिर इसे एक नियम के रूप में रखा जा सकता है कि शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है उतना भोजन पचाने के लिए और जितने पाचक रस की आवश्यकता होती है उतने ही परिमाण में वह पैदा होता है और यदि शरीर को भोजन की आवश्यकता बिल्कुल नहीं होती तो पाचक रस भी बिल्कुल पैदा नहीं होता, फिर खा चाहे जितना क्यों न लिया जाये। उपवास

के दिनों में शरीर को भोजन की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए पाचक रस भी नहीं पहुँचता और इसलिए इस बात से डरने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि पाचक रस की खटाई पेट की दीवालों को गलाकर पचा डालेगी। जब शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है, उसके सब रोग शांत हो जाते हैं तब पाचक रस अपने आप चूने लगता है और उस समय न खाना एक प्रकार से आत्महत्या करना है।

उपवास का सबसे पहला असर पेट पर होता है। उसके बाद दूसरा नंबर फेफड़ों का है। उपवास से श्वासोच्छवास की सब प्रकार की रूकावटें दूर हो जाती हैं, आवाज साफ और गहरी हो जाती है। फेफड़ों का मुख्य काम खून को साफ करना है। इससे उपवास का प्रभाव खून पर भी शीघ्र पड़ता है जिससे सारे देह की हालत सुधरने लगती है।

तीसरा असर यकृत और मूत्राशय पर होता है। आरंभ में ३-४ दिन तक तो इन अंगों पर पुराने बचे हुए काम का बोझ रहता है, इसलिए कोई असर नहीं मालूम होता परंतु इसके बाद शीघ्र ही इनकी हालत सुधरने लगती हैं।

चौथा असर हृदय पर पड़ता है। हृदय पर से अनावश्यक बोझ हटने लगता है जो कि तरह-तरह के विषों और मादक द्रव्यों के इकट्ठे होने के कारण पैदा हो जाता है। इसी कारण उपवास से हृदय के रोगों के बहुत से रोगी अच्छे हो जाते हैं।

पाँचवां असर आंतों पर होता है। पेड़ू छोटा हो जाता है और धीरे-धीरे आंतें खाली होने लगती हैं जिसमें एनिमा के प्रयोग से बहुत अधिक सहायता होती है। आँतों की दीवालें साफ स्वच्छ हो जाती हैं और एक तरह का काया पलट होना आरंभ हो जाता है।

छठा असर यह होता है कि शरीर की ग्रन्थियों का स्वाद ही बदल जाता है परंतु यह सब चिह्न उपवास समाप्त होने पर अन्य चिह्नों के समान समय पर नष्ट हो जाते हैं।

सांतवा फर्क यह होता है कि स्पर्श, घ्राण, श्रवण और दर्शन की इंद्रियाँ अतिशय तीव्र हो जाती है और इसलिए जो बहुत से रोगी वर्षों से इन इंद्रियों का पूरा उपयोग नहीं कर सकते थे वे करने लगे। बहुत से अधबहरे रोगी अच्छे हो गये। इसका कारण यह था कि आवाज नलिका में खून का दबाव कम हो गया था जिससे कि कान की झिल्ली का दोनों ओर का दबाव बराबर हो गया और अनावश्यक वायु जो उस नलिका में भरकर रह गई थी निकल गई।

उपवास का आठवां असर खून पर पड़ता है। इसे खून में पतलापन बढ़ने लगता है, जिससे नहीं ग्रहण किया हुआ पोषक तथा मल एक जगह से दूसरी जगह घुलकर शीघ्र पहुँचाया तथा शरीर के बाहर फेंका जा सकता है। इसके सिवाय लाल अणुओं की वृद्धि होती है।

उपवास का नौवाँ प्रभाव मस्तिष्क और नाड़ियों पर होता है। अधिक विचार और चिंता के कारण मस्तिष्क के कोषों में जो जहर पैदा हो जाता है वह उपवास से बहुत शीघ्र दूर हो जाता है और विचार करने की ताकत तथा स्पष्टता बढ़ने लगती है। बड़े-बड़े दार्शनिकों और विद्वानों में अधिक विचार या चिंता करने से जो एक प्रकार की विक्षिप्तता नजर आती है वह भी दूर हो जाती है। प्राचीन समय से बड़े-बड़े आध्यात्मिक पुरुष शायद इसीलिए इसका उपयोग करते रहे हैं।

किन-किन रोगों में उपवास से लाभ होता है और किन में नहीं

रोग दो प्रकार के होते हैं। एक आंगिक और दूसरे प्रक्रियात्मक। पहले प्रकार के आंगिक रोग वे हैं जो किसी अंग के टूटने-फूटने, सड़ने या बनावट संबंधी किसी बिगाड़ के कारण होते हैं। दूसरे प्रक्रियात्मक रोग वे हैं जो किसी अंग के ठीक-ठीक काम न करने से होते हैं, स्वयं उस अंग में कोई दोष नहीं होता।

यह बात निश्चित है कि उपवास किसी प्रकार के गंभीर आंगिक दोष को दूर नहीं कर सकता। उपवास से टूटा पांव नहीं जोड़ा जा सकता। इसी प्रकार सूजन, सड़न या कोषों की कमी के कारण यकृत या फेफड़ों का जो हिस्सा नष्ट हो गया हो, वह उपवास के द्वारा फिर से नहीं बनाया जा सकता। हृदय रूपी पंप या पिचकारी में खून के आने-जाने के जो मार्ग हैं, उनमें जो एक मार्गी फाटक या वाल्ब लगे हैं जिनके द्वारा खून की एक ओर की गति रोकी जा सकती है वे यदि छोटे हो जाते हैं जिससे कि वे रास्ते को पूरी तरह से ढक नहीं सकते तो उनकी यह कमी भी उपवास के द्वारा दूर नहीं की जा सकती है। फिर भी, इस प्रकार के रोगों में जितना आराम उपवास पहुँचा सकते हैं उतना अन्य कोई उपचार नहीं पहुँचा सकता और मृत्यु जितने अधिक दिन उपवास के स्थगित की जा सकती है उतने दिन और किसी उपाय से नहीं। इसका कारण यह है कि उपवास खून को साफ करता है, विषों को दूर करता है, नष्ट अंगों और कोषों की राख को शरीर के बाहर फेंक देता है और कभी-कभी नष्ट हुए तन्तुजाल और छोटे-मोटे अंगों को भी फिर से बनाकर पुरानों की जगह स्थापित कर देता है। आंगिक दोषों से उत्पन्न बीमारियाँ भी खासकर आरंभ में और जवानी में उपवास के द्वारा संपूर्ण रूप से आराम हो सकती हैं।

दूसरे प्रकार के प्रक्रियात्मक या अंगो के आलस्य से उत्पन्न होने वाले रोग तो शर्तिया उपवास के द्वारा अच्छे हो जाते हैं। इन पर तो उपवास जादू का सा असर करता है।

यह कोई नियम नहीं है कि शरीर का दुबला होना या सूखना केवल भूख से या अन्न न मिलने से होता है। अनेक बार तो खुराक की कमी ही शरीर को खूब पुष्ट कर देती है परंतु क्षय रोग में शरीर अत्यंत शीघ्रता से सूखता है तथा इस प्रकार उत्पन्न हुई कमी की पूर्ति बड़ी मुश्किल से होती है, इसलिए क्षय के रोगी को प्रारंभ में एक छोटे उपवास से अधिक नहीं कराना चाहिए और सो भी शरीर में से विष संचय को दूर करने के लिए। यद्यपि कुछ बहुत सावधानी से निरीक्षित क्षय के केसों में लंबे उपवास भी कराये गये हैं और उनसे क्षय बिल्कुल निर्मूल किया जा चुका है परंतु फिर भी क्षय के प्रत्येक रोगी को उपवास करने की राय नहीं दी जा सकती।

केंसर (दुष्ट अर्बुद) के पिछले स्टेजों में उपवास से सिवा इसके और कोई फायदा होने की आशा नहीं की जा सकती कि वह तकलीफ को शीघ्र रोक देता है परंतु आरंभ की अवस्थाओं में वह (केंसर) बिल्कुल अच्छा हो जाता है। सिवाय इसके केंसर की पिछली अवस्थाओं में भी उपवास के सिवाय और कोई ऐसा उपाय ज्ञात नहीं है जो रोग की बाढ़ को रोकने की तथा अपेक्षाकृत अधिक कष्टरहित और लंबी जिन्दगी देने की आशा दिला सके।

जन्मजात अंग संबंधी तथा शरीर की बाढ़ संबंधी अन्य बीमारियों में भी उपवास से कोई लाभ नहीं हो सकता परंतु बचपन में उपवास के द्वारा उक्त कमियों की पूर्ति किसी अंश में की जा सकती है। रक्त को रोकने वाले हृदय के ढ़क्कनों के चूने को भी इससे फायदा नहीं हो सकता और न हस्तिमेह में ही फायदा हो सकता है। दुष्ट पांडुरोग में भी बड़े उपवास की राय नहीं दी जा सकती।

मस्तिष्क के नष्ट होने से जो पागलपन होता है, उसमें भी उपवास फायदा नहीं पहुचाता परन्तु यदि किसी चोट के कारण मस्तिष्क के गुदे में तह पड़ गई

हो तो उपवास की आवश्यकता होती है और उसे तब तक चालू रखना चाहिए जब तक भयंकर लक्षण शांत न हो जायें, मन ठिकाने न आ जाये और होश दुरुस्त न हों। विषों की मादकता के कारण जो मन की बीमारी हो जाती है, उसमें भी उपवास फायदा पहुँचाता है। कंपवात या चोरिया नामक बीमारी पोषक पदार्थों की कमी से होती है। उसमें भोजन की नहीं किंतु पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। हिस्टीरिया या अपतंत्र वायु और साइको न्यूरोसिस या मानसिक वायु रोग नामक बीमारी से भी उपवास से फायदा होता है परंतु छोटे उपवासों से तथा ठीक-ठाक और पोषक भोजनों से इनका इलाज करना अधिक श्रेष्ठ है। यही बात मेलिनकोलिज्म या उदासीनता की बीमारी के लिए भी ठीक है।

शरीर में यदि विषों की बहुत ही अधिकता न हो तो गर्भिणी स्त्री का उपवास करना ठीक नहीं है और खास तौर से बिना विशेष कारण के।

मसूरिका, लाल बुखार, डिफथिरिया, गले की सूजन, परिगर्मिक या कुकर खांसी और यहाँ तक की बच्चों के अर्धांगवात रोग में भी आरंभ में उपवास की आवश्यकता होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि बीमारी के आरंभ में ही आंतों के धोने के साथ उपवास कराये जावें तथा साथ में शामक स्नान, स्वच्छ वायु जल का उपयोग किया जावे तो भयंकर से भयंकर बीमारी रुक जायेगी। दवाओं को बेचने वाले और सीरमों की पिचकारी देने वाले डॉक्टरों के लिए इससे अधिक भयंकर और कौन सी बात हो सकती है कि बिना रोग की जाँच कराये उपवास आरंभ कर दिये जायें परंतु यह मानना पड़ेगा कि रोग को अच्छा करने की अपेक्षा रोगी को अच्छा करना अधिक आवश्यक है। बच्चों के सिरदर्द, दस्त, कै आदि पर उपवास का शीघ्र प्रभाव होता है। इन रोगों में उपवास के साथ अन्य प्राकृतिक उपाय भी काम में लाने चाहिए।

लोगों का विश्वास है कि दुर्बल दिखने वाले लोगों को उपवास से फायदा नहीं होता, मोटे चर्बीवालों को ही होता है परन्तु यह गलत है। ९८ से १०० पौण्ड वजन वाले पचासों रोगियों को उपवास कराये गये हैं और उन्हें इससे बहुत लाभ पहुँचा है।

स्कर्वी और बालकों के सूखी नामक रोगों में शरीर में कुछ तत्त्वों की कमी हो जाती है जिसकी पूर्ति आवश्यक है। उपदंश या गर्मी के रोग में आरंभ में तो उपवास फायदा पहुँचाता है परंतु तीसरी अवस्था में जबकि उसका आक्रमण रीढ़ पर होता है उपवास कराना अच्छा नहीं है। रीढ़ के टेढ़ेपन का एक केस हाल में ही उपवास से अच्छा हो गया है परन्तु इस पर से विकृतांग लोगों को यह आशा दिलाना ठीक नहीं है कि उपवास से वे भी अवश्य अच्छे हो जायेंगे।

कुछ लोगों का कहना है कि उपवास से रक्त में अम्ल या खटाई की वृद्धि होती है परंतु यह ठीक नहीं है। डॉ. हेग का कहना तो यह है कि उपवास शरीर पर मानो क्षार की खुराकों का वार करता है। उपवास से खून क्षारीय होता है जो स्वास्थ्य का चिह्न है, अम्लीय नहीं होता।

उपवास करते हुए मृत्यु भी हो जाती है परंतु जांच करने से मालूम हुआ है कि मृत्यु स्वयं उपवास के कारण कभी नहीं हुई बल्कि उपवास से तो जीवन कुछ बढ़ ही गया है। उपवास से हमें असंभव कार्य कर दिखाने की आशा नहीं करनी चाहिए। जो रोग अच्छा हो सकता है वह उपवास से अवश्य अच्छा हो जायेगा, यह निश्चय है इसमें संदेह नहीं किया जा सकता परंतु जो रोग अच्छा हो ही नहीं सकता, उसमें उपवास का कोई दोष नहीं।

उपवास काल के उपद्रव

ज्वर - उपवास के आरंभ में कभी-कभी बुखार आ जाता है। यह बुखार और कुछ नहीं है केवल इस बात का चिह्न है कि शरीर विषों को बाहर निकालने की क्रिया अत्यंत तीव्रता से कर रहा है। प्रत्येक क्रिया से गर्मी उत्पन्न होती है। यही गर्मी जब शरीर में अधिक बढ़ जाती है तब बुखार कहलाने लगती है। अनेक बार गर्मी मालूम होते हुए भी तापमान में फर्क नहीं होता। उपवास के शुरु करते ही यदि हमें बुखार आ जाता है तो यह इस बात का चिह्न है कि हम भोजन ठीक तौर से नहीं करते। बुखार का आ जाना उपवास का कोई आवश्यक परिणाम नहीं है, वह आकस्मिक या संयोगवश भी हो सकता है। यदि बुखार आ जाये तो पानी खूब पीना चाहिए और शीतल स्पंज स्नान करना चाहिए। ठंडे पानी से स्पंज या कपड़े को भिगोकर शरीर पर फेरने और तुरंत दुबाल से रगड़-पौंछकर कम्बल उढ़ा देने को स्पंज स्नान कहते है। इसे करते समय हवा के झोंके से बचना चाहिए।

अनेक बार कमजोरी, बेहोशी, धैर्यहीनता और निराशा आदि के आक्रमण होते हैं। कमर, पैर और जोड़ों में दर्द होता है, बैठे रहने में अशक्यता आदि का अनुभव होता है परंतु जैसे-जैसे मल निकलता जाता है, वैसे-वैसे ये लक्षण कम होते जाते हैं।

अनेक बार वर्षों पहले के पुराने रोग उमड़ आते हैं जो दवाओं, पिचकारियों आदि से दबा दिये गये थे। इससे मालूम होता है कि उपवास से बीमारियों की जड़ें तक खोद डाली जाती है।

खुजली वगैरह चमड़ी के रोग भी पैदा हो जाते हैं। इनके होने पर धूप में बैठने के सिवाय और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

इनके सिवाय और भी कुछ छोटी-मोटी तकलीफें हैं जिन पर बहुत से रोगी तो ध्यान ही नहीं देते और बहुतों को ये होती ही नहीं हैं, जैसे- चक्कर आना-सुबह बिस्तर से उठने पर चक्कर आता है। उपवास में प्राय: सब ही अंग

विश्रान्ति लेना आरंभ कर देते हैं। इस कारण ज्ञानतन्तुओं या नाड़ियों की असावधानता से यह लक्षण प्रकट होता है। उपवास में नाडियाँ काम करने के लिए हमेशा तैयार नहीं रहतीं। मस्तक में खून की कमी या अधिकता से भी यह होता है। इसकी विशेष परवाह करने की आवश्यकता नहीं है। उठते-बैठते समय किसी वस्तु को पकड़ लेना चाहिए।

बेहोशी होना - चक्कर आने के समान बेहोशी भी मस्तिष्क में खून की कमी से होती है। बेहोशी की हाल में रोगी के मस्तक को नीचे करके पैरों को ऊपर उठाना चाहिए। कालर या गले के कपड़े को ढीला करके मस्तक पर थोड़ा ठंडा पानी डालना चाहिए, जूतों को खोलकर हाथ और पैर रगड़ना चाहिए, मुँह पर पंखा झलना चाहिए तथा नौसाद और चूने के मिश्रण या सूंघने के मिश्रण सुंघाने चाहिए। पैर ऊपर और सिर नीचे (शीर्षासन के समान) करने से भी यदि रोगी की बेहोशी शीघ्र दूर न हो तो समझना चाहिए कि रोगी और किसी कारण से बेहोश हुआ है।

पेट का दर्द - कभी-कभी आंतों में दर्द होता है। प्रत्येक रोग में एक ऐसा समय आता है जबकि वह अधिकतम तीव्रता से प्रकट होता है परंतु इसके बाद ही उसका उतार प्रारंभ हो जाता है। इस काल को चोटी का समय या क्राइसिस कहते हैं। अनेक बार पेट का दर्द इसी अंदरूनी क्राइसिस के कारण होता है। अबितचेन ज्ञानतंतुओं की एकाएक सिकुडन या ऐंठन के कारण, जमें हुए मल के अपनी जगह से एकाएक विचलित होने के कारण, बहुत दिन से संग्रहित मल में से बुरी वायु निकलने के कारण तथा कभी-कभी वे अल्की से किये गये ठंडे पानी के प्रयोगों के कारण भी यह दर्द थोड़ी देर के लिए होता है। यदि यह बहुत देर ठहरे तो गुनगुने पानी का एनीमा देना चाहिए और पेडू पर पानी में भीगे कपड़े की गर्म पुल्टिस बांधना चाहिए। गुनगुना पानी पीकर पेट पर हल्की मालिश करने से भी लाभ होता है।

सिरदर्द - मल का जो अंश शरीर के बाहर न निकलकर आंतो के द्वारा सोख लिया जाता है और रक्त में मिलकर मस्तिष्क तक पहुँच जाता है, वह जब

उपवास–काल में बहुत तेजी के साथ नीचे की ओर हटाया जाता है। तब (इस हटाये जाने की क्रिया से) सिर दर्द होने लगता है। यह अक्सर अधिक खानेवालों और चाय काफी की नियमित रूप से उपासना करने वालों को होता है। उपवास के लंबे होने पर कुछ ही दिन के बाद यह अच्छा हो जाता है। यही दर्द अधिक बढ़ जाये तो पानी अधिक पीना चाहिए, गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए, कपड़े को ठंडे या गर्म पानी में भिगोकर सिर पर रखना चाहिए और पैरों को कुछ समय तक गर्म पानी में डुबाये रखना चाहिए।

दस्त लगना – उपवास काल में दस्त शायद ही किसी को होते हैं। यदि हो तो उन्हें रोकने का प्रयत्न न करके गर्म पानी का एनीमा देकर और सहायता करनी चाहिए। यह बहुत अच्छा लक्षण है। रोग निवारण में इससे बहुत सहायता मिलती है।

मुँह का स्वाद बिगड़ना – पानी में नमक या नींबू मिलाकर कुल्ले करना चाहिए और बार–बार जीभ साफ करना चाहिए। इन उपचारों से लाभ होता है परंतु इनकी कोई ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है।

नींद नहीं आना – उपवास काल में अधिक नींद की आवश्यकता ही नहीं होती, थोड़ी नींद से काम चल जाता है परंतु यदि नींद बिल्कुल ही नहीं आवे या बहुत ही कम आवे तो सारे शरीर पर खुली हवा लगने देवें। श्वासोच्छवास की कसरत करने और गुन–गुने पानी के टब में बैठकर सर्वांग स्नान से भी लाभ होता है।

पेशाब का रुकना – यह तकलीफ शायद ही कभी होती है। उपवास के आरंभ से यदि रोगी काफी पानी पीता रहे तो इसके होने की संभावना ही नहीं रहती। यदि अधिक पानी पीने पर भी पेशाब १२ घंटे से अधिक रुकी रहे तो गरम स्टीम–बाथ (मेहन–स्नान) लेना चाहिए और पेडू पर गरम पानी का कपड़ा बांधकर (हाट–वाटर बैग) उसके नीच के भाग को दबाना चाहिए। यदि इतने पर भी तकलीफ रफा न हो तो फिर किसी होशियार डॉक्टर के द्वारा कैथीटर (निरूह–बस्ती) का उपयोग करना चाहिए।

हृदय में दर्द और उसका कम्पन - पेट में उत्पन्न होने वाली गैसों के दबाव से और दूसरे पाचन संबंधी बिगाड़ों से यह होता है। उपवास के समय यह शायद ही कभी होता है परन्तु यदि कभी हो तो गुनगुने पानी के २-३ ग्लास पीने चाहिए और लेट करके अंगो को ढीला कर देना चाहिए। कभी-कभी ठंडे पानी के कपड़े को भी हृदय पर रखने की आवश्यकता होती है।

नाडी की मंद गति - पुरुषों की नाड़ी की गति एक मिनट में साधारणतः ७२ और स्त्रियों की ८० होती है। उपवास-काल में उन व्यक्तियों की ५०, ४५ और ४० तक हो जाती है, जो सुस्त, वजनी और जड़ होते हैं। मैकफेडन साहब ने तो एक मनुष्य की नाड़ी की गति को ३६ तक कम होते देखा है और फिर भी उसमें कोई चिंताजनक लक्षण नहीं थे। कहा जाता है कि वीर केसरी नेपोलियन बोनापार्ट की नाड़ी की गति हमेशा ४० से कम रहती थी। अपने आप पर और दुनिया पर काबू रखने वाले महापुरुषों और रोगियों की नाड़ी प्रायः मंद चलती है। यदि नाड़ी की गति मंद हो परंतु साथ में और कोई दुर्लक्षण प्रकट न हों तो कोई चिंता करने की बात नहीं। जब नाड़ी साधारणः मंद चलती है तब वह अधिक गहरी और शक्ति शालीनी भी होती है, जिससे प्रकट होता है कि हृदय अपनी धड़कन की संख्या की कमी को काम की मात्रा से पूरा कर रहा है। जिस समय नाड़ी मंद चलती है, उस समय हृदय अधिक विश्राम करता है और इसलिए उपवास के बाद वह पहले की अपेक्षा अधिक बलवान हो जाता है।

नाड़ी की मंदता के साथ यदि आगे लिखे हुए लक्षण प्रकट हों तो अवश्य ही चिंता करनी चाहिए- रक्ताभिसरण में कमी होना (हाथ पैरों का ठंडा होना, होठों का काला या नीला पड़ जाना) ज्यादा चक्कर आना, अत्यधिक कमजोरी मालूम होना आदि। नाड़ी की गति के ५० तक गिरने तक विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है परन्तु यदि इससे भी नीचे जाने लगे तो हल्की कसरत और गहरी श्वास से सहायता लेनी चाहिए। गरम पानी के टब में बैठकर सर्वांग-स्नान करने से नाड़ी की गति बहुत जल्दी बढ़ जाती है। इससे रक्त का अभिसरण इतना तेज हो जाता है कि नाडी की गति ७० से बढ़कर १५० तक हो

जाती है। गरम पानी के स्नान के समय सिर पर ठंडे पानी में भिगोया हुआ कपड़ा बांध लेना चाहिए। मालिश और रगड़ से भी नाड़ी की गति बढ़ाई जा सकती है।

नाड़ी का तेज चलना - जिन लोगों का मन कमजोर होता है जो अत्यधिक भावुक होते हैं और जिनके ज्ञान तंतु दुर्बल होते हैं, उपवास काल में उनकी नाड़ी की गति तेज हो जाती है। यदि इसके साथ में कोई खास तकलीफ बैचेनी आदि न हो तो इस पर कोई ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। मैकफेडन साहब ने ऐसे कई केस देख हैं जिनमें नाड़ी की गति १४० थी फिर भी रोगियों को किसी तरह की शिकायत नहीं थी, वे मजे में थे।

नाड़ी की गति तेज होने पर मनुष्य को विश्रान्ति की आवश्यकता होती है। उसे १२० से अधिक न बढ़ने देना चाहिए और जब नाड़ी की गति १२० के आस-पास पहुँच जाये तब रोगी को दिलासा देना चाहिए। इस समय मध्यम तापमान (९९ फा.) के जल से स्नान कराना चाहिए और टब में बहुत समय तक बिठाए रखना चाहिए। हृदय पर साधारण ठंडे पानी से भीगे हुए कपड़े को रखने से भी लाभ होता है।

कै या उल्टी होना - उपवास-काल में सबसे अधिक चिंता जनक उपद्रव यही है। कभी-कभी उपवास के ४०वें ५०वें दिन तक भी कै होती देखी गई है। कै होने के लक्षण प्रकट होते ही उपचार आरंभ कर देना चाहिए। यदि कै का रंग चमकीला हरा अथवा काला सा हो तो उसे खतरनाक समझना चाहिए। इस तरह की कै करने वाले एक दो रोगियों की मृत्यु हो गई है परंतु इस तरह के केस बहुत ही कम, हजार में एक दो ही होते हैं और वह भी मोटे चर्बी वाले। साधारण या दुबले पतले शरीर वालों को तो इसके होने की संभावना ही नहीं है। इस तरह की कै क्यों होती है, अभी तक इसका कोई ठीक-ठाक निर्णय नहीं हुआ है। कै के लक्षण प्रकट होने पर नीचे लिखे उपचार करने चाहिए-

अधिक मात्रा में गरम पानी पीना चाहिए, भले ही वह कै के साथ

निकल जाये। इससे पेट साफ होगा, उत्तेजित नाडियाँ शांत होगी और स्नायुओं की गति जो ऊपर की ओर होने लगती है वह फिर नीचे को होने लगेगी। इस तरह पित्त भी ऊपर न आकर नीचे जाने लगेगा। पेडू और पीठ के चारों और गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। स्वच्छ हवा और गहरी साँस से भी लाभ होता है।

यदि कोरे पानी से काम न चले तो उसमें नींबू या संतरे का रस, मधु या जौ का पानी मिलाकर और अधिक मात्रा में देना चाहिए। केवल नींबू का रस भी पानी में मिलाकर देना अच्छा है। चार-पाँच नींबू तक दिये जा सकते हैं।

यह प्रश्न अनेक बार पूछा जा चुका है कि क्या ऐसी अवस्था में खुराक देना योग्य है ? डॉ. डिउई इसके विरुद्ध हैं। वे कहते है कि ऐसी अवस्था में खुराक देना मौत को बुलाना है। उनकी राय में मन और शरीर को पूरा आराम देना चाहिए। यदि यमराज की मुहर न लग चुकी होगी तो प्रकृति रोगी को अवश्य अच्छा कर देगी।

जब किसी भी तरह कै बंद से न हो, तब रोगी के कुटुम्बियों और मित्रों को दिलासा देने के लिए हल्का भोजन भी दिया जा सकता है, जिसे एनीमा से निकाल देना चाहिए। डॉ. डिउई ने एक ऐसे केस का उल्लेख किया है जिसमें भोजन देने से कै बंद हो गई थी परन्तु उस भोजन को पेट में नहीं रहने दिया था। यह रोगी आगे चलकर ६०वें दिन बिल्कुल निरोग हो गया था और उसकी भूख लौट आई थी।

कमजोरी और शिथिलता - यह उपवास के आरंभ के दिनों में और कभी-कभी बीच में कुछ दिन छोड़-छोड़कर मालूम होती है। जिन लोगों के रोगों को दबाने के लिए दवाओं का अधिक उपयोग किया गया होता है उन्हें यह तीव्रता के साथ होती है। यदि ब्रोमाइड वगैरह मारक और निस्तब्ध करने वाली दवाओं का अधिक सेवन कराया गया है तो उपवास काल में उक्त दवाओं के गुणों से ठीक उल्टी हालत होती है। प्राय: दो-दो, तीन-तीन दिन के अंतर से अप्राकृतिक फुर्ती और उत्साह मालूम होता है। लगातार बहुत समय तक विषों

का उपयोग किये जाने पर भी यह अप्राकृतिक स्फूर्ति मालूम होती है। यह इस बात का प्रमाण है कि उपवास से पूर्वोक्त विष नष्ट हो रहे हैं और ज्ञानतन्तुओं की पुनर्गठना हो रही है।

उपवास पर अविश्वास और शंका होने के कारण भी कमजोरी और शिथिलता मालूम होने लगती है। ऐसी हालत में उपवास के लाभों का वर्णन करके रोगी को खूब उत्साहित करना चाहिए। यदि हालत कुछ ज्यादा खराब मालूम हो तो ठंडा पानी पिलाना चाहिए। गहरी साँस लेने आदि प्रयोगों से भी लाभ होता है। यदि रोगी शय्याशायी हो तो अंगडाई लिवाना चाहिए या अंगों को स्नान करके कंधो को तानने की कसरत कराना चाहिए। हल्की मालिश से भी उपकार होता है।

आँखों के आगे बिजली सी चमकना या प्रकाश की चिनगारियाँ निकलना - यह प्राय: सिरदर्द के साथ होता है और मस्तक में खून के अत्यधिक जमाव से या अत्यधिक ह्रास से होता है। ज्ञानतन्तुओं की कमजोरी विषों की अधिकता और यकृत तथा मूत्राशय के विकार से भी यह होता है परन्तु ऐसी बातों पर ध्यान न देना ही अच्छा है। हल्के व्यायामों से इसमें लाभ होता है।

कानों में घंटे की सी आवाज या भन-भन सुनना - उपवास काल में शरीर अपने सभी द्वारों से मल बाहर निकालता है, तद्नुसार कानों में भी मोम जैसा द्रव्य निकलता है और वह ज्यादा परिमाण में इकट्ठा हो जाता है। उसी से यह उपद्रव होता है। मस्तक में खून के जमाव से भी इसके होने की संभावना है। यदि हम जल्दी अच्छे न हों तो कानों में गर्म पानी के दो तीन बूंद या गर्म ओलिव्ह आइल आदि तेल या ग्लिसरीन डालना चाहिए।

शरीर में से दुर्गन्ध निकलना - उपवास-काल में विष और मलों के अधिक परिमाण में निकलने के कारण दुर्गन्ध आती है। यह गंध गठिया, गुर्दे की सूजन और मधुमेह आदि भिन्न-भिन्न रोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इसमें साधारण स्नान और घर्षण स्नान (शरीर को खूब रगड़कर धोने) से त्वचा

के कार्य में सहायता करने के सिवाय और कुछ करने की जरूरत नहीं है।

मुँह से ईथर सरीखी बास आना – शरीर में एसीटोन नामक द्रव्य के इकट्ठा होने से इस प्रकार की बास आती है। यह द्रव्य शरीर के प्रत्येक स्त्राव के साथ थोड़े परिमाण में निकला करता है और आंगिक द्रव्य के पृथक्करण से उत्पन्न होता है। इसका अधिक मात्रा में निकलना इस बात को सूचित करता है कि शरीर का कोई आवश्यक अंग या पदार्थ नष्ट हो रहा है इसलिए यह लक्षण अच्छा नहीं है। इसके प्रकट होने पर उपवास कम से कम कुछ दिनों के लिए अवश्य तोड़ देना चाहिए और फलों का रस लेना आरंभ कर देना चाहिए।

तंद्रा – इससे प्रकट होता है कि दवाईयों के सेवन से शरीर में जो विष बहुत अधिक मात्रा में इकट्ठा हो गये हैं, वे बाहर निकाले जा रहे है। इसमें भीगी चादर के प्रयोग से लाभ होता है। चादर सब अंगो से सट जानी चाहिए। इसके बाद ऊपर से तीन चार कम्बल ओढ़ा देना चाहिए और उन्हें तब अलग करना चाहिए जब खूब पसीना आ जावे। ठंडी हवा से बचाना चाहिए। इस प्रयोग से शरीर से विषों को निकालने में सहायता मिलती है।

हिक्का या हिचकी आना – अक्सर लम्बे उपवासों में हिचकी आने लगती है। छाती या डायाफ्राम के एकाएक सिकुड़ने से अथवा पित्त रस के पेट में फिर लौट जाने से यह उपद्रव होता है। इसमें मृत्यु भी हो सकती है परंतु वह आँतों में रूकावट होने पर भी होती है। यों साधारण तौर से यह कोई अधिक चिंता की बात नहीं है। इसका सर्वोत्तम उपाय मुँह के द्वारा या एनीमा से शरीर में पानी पहुँचाना है। मेरूदण्ड पर गर्म पानी की पुल्टिस बाँधने से भी लाभ होता है।

यदि और कोई उपाय कारगर न हो तो कमर के जरा ऊपर चारों और पट्टा बांधकर उसे धीरे-धीरे कसते जाना चाहिए और तब तक कसते जाना चाहिए जब तक ऐसी अवस्था न हो जाये कि पेडू का प्रदेश हिचकी में ऊपर को न उठ सके। कभी-कभी इस पट्टे को कसने में सारी शक्ति लगा देनी पड़ती है, तब आराम होता है।

ऊपर जो सब उपद्रव लिखे गये हैं, उनके विषय में रोगी को यह न समझ लेना चाहिए कि मुझे उपवास काल में इन सबका अथवा इनमें से दो चार का सामना निश्चयपूर्वक करना ही पड़ेगा। चक्कर आना, मुँह का स्वाद बिगड़ना, निंद्रा की कमी और सिर दर्द इनके सिवाय अन्य लक्षण शायद ही कभी किसी रोगी के उपवास काल में प्रकट होते हैं। अधिकांश रोगियों को तो इनमें से एक भी तकलीफ नहीं होती है।

मृत्यु – ऐसे कई केस हुए हैं जिनमें उपवास काल में और उपवास के बाद ही रोगी की मृत्यु हो गई है परंतु मृत्यु के बाद जब-जब शव की परीक्षा सरकारी अदालत द्वारा कराई गई है तब तक यही प्रकट हुआ है कि शरीर के भिन्न-भिन्न भीतरी अंगो की अवस्था ऐसी थी कि चाहे उपवास कराये जाते, चाहे नहीं, मृत्यु अवश्य होती बल्कि अनेक बार इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह रोगी इतने दिन जीता कैसे रहा।

यह बात न भूल जानी चाहिए कि मृत्यु को सबसे अधिक निकट बुलाने वाला रोग भय है। रोग या उपवास के बहुत अधिक भय से जीवन शक्ति बहुत कम हो जाती है। जहाज डूबने, गाडियों के लड़ जाने आदि में जो लोग मर जाते हैं, उनमें से बहुत से तो केवल भय के कारण ही मर जाते हैं, उनके शरीर पर चोट का कोई चिह्न भी नहीं मिलता।

मैकफेडन साहब के चिकित्सालय में उनके हाथ के नीचे कई डॉक्टर्स ने उपवास के द्वारा लगभग दस हजार रोगियों की चिकित्सा की, जिनमें से केवल १८ रोगी मरे, जो गर्मी (सिफलिस) यकृत के नाश, मूत्राशय के नाश, मस्तिष्क के नाश, फेफड़ों के नाश, आदि असाध्य रोगों से आक्रान्त थे। यह निश्चित था कि कोई दवाई या कोई चीर फाड़ का प्रयोग इन्हें अच्छा न कर सकता और यह तो सभी जानते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सकों के पास प्रायः वही रोगी आते हैं जिन्हें सब जगह से जवाब मिल जाता है। परीक्षा से मालूम हुआ है कि इन सभी मरण प्राप्त केसों में चर्बी की मात्रा काफी बाकी थी, हृदय की गति ठीक थी, खून भी कम नहीं हुआ था, पेन्क्रियाज़ भी अपनी साधारण अवस्था में था। यदि

भूख या उपवास के कारण मृत्यु हुई हो तो दुर्भिक्ष में मरे हुए लोगों के समान उनके शरीर में चर्बी न होती, हृदय का कुछ अंश पचकर नष्ट हो गया होता, खून की कमी हो जाती और पेन्क्रियाज़ का पता ही नहीं चलता।

फिर वे क्यों मरे, इसका ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सका। संभव है कि किसी ऐसे अंग का नाश हो जाने से उनकी मृत्यु हुई हो, जो जीवन के लिए बहुत उपयोगी है परन्तु यह निश्चित है कि वह शरीर में पोषक पदार्थ की कमी हो जाने के कारण नहीं हुई, इसलिए उपवास के सिर यह दोष नहीं मढ़ा जा सकता। जब मृत्यु आ ही रही है तब दुनिया में ऐसा कोई उपाय नहीं जो उसे टाल सके।

लम्बे और छोटे उपवास

जिनकी जड़ें बहुत गहरी पहुँच गई हैं ऐसी बीमारियों के लिए लम्बे उपवासों की जरूरत है। दो सप्ताह से अधिक दिनों के उपवास को लंबा उपवास कहते हैं और वह दो तीन महीने तक का हो सकता है। निम्नलिखित बीमारियों में लंबे उपवासों की जरूरत होती है।

यदि शरीर में अधिक कमजोरी या दुर्बलता मालूम हो तो उपवास का समय कम कर देना चाहिए। जो रोगी उपवास के सिद्धांत को ग्रहण नहीं कर सकता- उस पर अच्छी तरह विश्वास नहीं ला सकता, उसे भी छोटा उपवास कराना चाहिए। क्षय रोग में लंबे उपवास कराना ठीक नहीं है।

१. मूत्राशय का सूजन (Bright's Disease)

२. मधुमेह (Diabetes)

३. सन्धिवात-गठिया (Rheumatism-Gout)

४. उपदंश या गर्मी (Syphilis)

५. दमा या श्वास (Asthma)

६. मेद रोग स्थूलता (Obesity)

७. मस्तक पर खून चढ़ जाना (Apoplexy)

८. मस्तक पर खून चढ़ने से होने वाला लकवा (Paralysis from Apoplexy)

९. यकृत में खून का जमाव (Liver Congestion)

१०. विद्रधि या पीव पड़ना (Abcesses)

११. एपेण्डिसाइटिज (Appendicitis)

१२. मोतीझरा (Typhoid)

१३. उदरावण दाह (S)

१४. दुष्ट अर्बुद (S)

१५. ग्रन्थि-क्षत (S)

१६. नसों का कड़ा होना और उभड़ आना (Arteriosclerosis)

एक बार का भोजन छोड़ देना ही छोटे उपवास को आरंभ कर देना है। जिस दिन भूख न मालूम हो उस दिन यही करना चाहिए। यदि इससे सिर में दर्द हो जाये तो उसे इस बात का चिह्न मानना चाहिए कि अभी और भी उपवासों की आवश्यकता है क्योंकि शरीर में विषों के हुए बिना सिर दर्द नहीं होता। एक बार भोजन छोड़ने से लेकर ७ से १२ दिनों तक के उपवास को छोटा उपवास कहते हैं।

नीचे लिखे हुए साधारण रोगो में लंबे उपवास से कम किंतु आंशिक उपवास की अधिक की आवश्यकता होती है-

१. कफ आना (Catarrh)

२. कब्ज (Constpation)

३. अतिसार (Diarrhea)

४. सिरदर्द (Headaches)

५. शूल (Colic)

६. फोड़े (Boils)

७. बाहरी अंगो में पीव पड़ना (Superficial adcesses)

८. चर्म रोग (Skin Eruptions)

९. यूरिटीज (Neuritis)

१०. न्यूरोल्जिया (Neuralgia)

११. दाँतो में पीव पड़ना (Pyorrhea)

१२. कृमि (Worms)

इनके सिवाय ज्वरसहित या रहित मंद व्याध्यिों जैसे हाइव्स, सर्दी, इन्फ्लूएन्झा, कौऐ की सूजन, टोमेन विष के उपद्रव, सीरम या टीके का बुखार आदि में भी

छोटे उपवास कराने चाहिए। दुर्बल रोगियों को जंगली बुखार, दमा और पार्श्वशूल में छोटे उपवास कराना चाहिए। इसी प्रकार मासिक धर्म का बिगाड़, पेडू की जलन, प्रोस्टेट ग्रंथि की तकलीफ, नपुंसकता, मूत्राशय की बीमारियाँ, गुदा और पेडू के यंत्रों का खिसक जाना, छूत से पैदा होने वाली मंद व्याधियाँ, मसूरिका, लाल बुखार और जलीय बुखार या डिफथीरिया, इनमें भी छोटे उपवास कार्यकारी होते हैं।

आंशिक उपवास अथवा फलोपवास

फल शब्द बहुत व्यापक है। केला, अंजीर, खजूर आदि एक प्रकार के भोजन ही हैं, इसलिए यदि चिकित्सा के लिहाज से फलाहार किया जाये तो केवल खट्टे, खटमिट्ठे और रसीलें फलों का ही उपयोग करना चाहिए, जैसे- अंगूर, खट्टे पीच, खट्टे सेव, खट्टे बेर आदि। नारंगी और संतरे चाहे जितने खाये जा सकते हैं। यह सर्वोत्तम खुराक है। गर्मी के दिनों में एक दो महीने केवल फलों पर रहना बहुत लाभदायक है। फलाहार इस प्रकार किया जाना उत्तम होगा-

१. प्रतिदिन तीन संतरे तीन बार में खाये जायें। यदि दस्त साफ न आता हो तो संतरे के बीजों को भी चबाकर खा लिया जाये।

२. चौबीस घंटो में तीन बार एक-एक गिलास (२० तोले) फलों का रस पीया जाये और पानी भी खूब पिया जाय।

३. दो से चार बार तक खट्टे फल और रसभरी खावें। पानी खूब पीएं। शक्कर का उपयोग न करें।

४. दिन में दो बार तीन से लेकर छह औंस (एक औंस-ढाई तोला) तक एक खट्टा और मीठा फल प्रत्येक बार में खावें और खूब पानी पीएं।

५. मक्खन निकाला हुआ दूध एक गिलास सवेरे और एक गिलास दोपहर को पिया करें।

६. तीन बार एक-एक गिलास छाँछ या मट्ठा पीएं। पानी का खूब उपयोग करें।

यह फलोपवास या आंशिक उपवास नीचे लिखे रोगों में बहुत लाभदायक है।

Paralysis agitans (एक प्रकार का लकवा)

Locomotor ataxia (ज्ञानतंतुओं की एक बीमारी)

Goitra (कण्ठशोथ)

Hysteria (अपतंत्रत वायु)

Melanchola (दासी)

Oild Syphilis with gummatous formations or spinal cord affections, (पुरानी गर्मी जिसका असर रीढ़ आदि अंगो तक पहुँच गया हो)

Pernicious anemia (दुष्ट पाण्डु)

Myocarditis (एक हृदय रोग)

Inflammation and weakness of the heart muscle (हृदय के स्नायु की सूजन, कमजोरी और कभी-कभी उसका बढ़ जाना)

Hypertrophy Prostatis (प्रोस्टेट ग्रंथि या अंशनाश)

इनके सिवाय क्षय, खाँसी, नाक के मस्से, गले के कौए की सूजन आदि रोगों में भी फलोपवास से अत्यंत उपकार होता है।

उपवासों का प्रारंभ और समाप्ति

बीमारियाँ दो प्रकार की होती हैं- एक तो तीव्र और दूसरी बहुत समय तक ठहरने वाली बीमारियाँ। पहले प्रकार की बीमारियाँ एकाएक भयंकर हो जाती हैं जबकि दूसरे प्रकार की बिमारियाँ काफी भयंकर होने पर भी बहुत दिनों तक मंथर गति से चला करती हैं। इनमें रोगी अपने दैनिक काम काज ठीक तौर से करता रहता है उसे कोई विशेष अड़चन नहीं मालूम होती।

इनमें से पहले प्रकार की बीमारियों में उपवास जल्दी शुरू कर देने चाहिए, विलम्ब करना ठीक नहीं। दूसरे प्रकार की बिमारियों में उपवास की तैयारी में समय लगाया जा सकता है जिससे शरीर को एकाएक धक्का न सहना पड़े और उपवास सुगमता से हो जाय।

दूसरे प्रकार की बीमारियों में केवल विषों का संग्रह ही एक मात्र कारण नहीं होता। अक्सर उपयुक्त और आवश्यक तत्त्वों तथा जीवनकणों से युक्त आहार के अभाव से भी ये बीमारियाँ होती हैं, इसलिए उपवास आरंभ करने के पहले कुछ दिन ऐसा आहार लेना चाहिए जो हल्का हो तथा जीवन कण और तत्त्वों से युक्त हो। कच्चे, खट्टे और रसीले फल तथा शाक भाजियों में ये तत्त्व अधिक होते है। शाक-भाजियों के सार और जीवन तत्त्व इतने लाभदायक हैं कि उनके बिना शरीर का काम ही नहीं चल सकता परंतु उनमें कीड़े और जीवाणु बहुत रहते हैं जो रोगी मनुष्यों के शरीर में पहुँचकर नये रोग पैदा कर देते हैं। इसलिए डॉ. केलाग की सम्मति के अनुसार उनको अच्छी तरह साफ करके और कीटाणुनाशक औषधियों से धोकर काम में लाना चाहिए। नमक, फिटकड़ी आदि के घोल में धो लेना भी अच्छा है।

आरंभ में फलों और शाक भाजियों पर रहकर उपवास करने से जल्दी फायदा होता है और कोई तकलीफ नहीं होती।

यदि उपवास समय के पहले ही तोड़ दिया जाता है तो अक्सर उससे हानि होती है। कभी-कभी बुखार आ जाता है और नाड़ी की गति बहुत तेज हो जाती

है। कै आने लगती है अथवा अरूचि हो जाती है। ऐसी अवस्था में फिर से उपवास करना चाहिए।

जिन विशेषज्ञों ने उपवास-शास्त्र का अध्ययन किया है उनकी सम्मति के अनुसार उपवास की समाप्ति का आहार तरल पेय ही होना चाहिए, विशेष करके पानी मिला हुआ फलों का रस। इससे पाचन क्रिया बहुत ही अच्छी तरह आरंभ होती है।

आरंभ में नींबू, संतरा, चकोतरा, सेंव, टमाटो, अनन्नास आदि फलों का रस पानी मिलाकर देना चाहिए। संतरा सर्वोत्तम है। यदि ये वस्तुएँ न मिल सकती हों तो पानी में थोड़ा सा शहद और नींबू मिलाकर देना चाहिए। अथवा दो सेर के लगभग विविध प्रकार के शाक, भाजियाँ, काली मनुक्का आदि चीजों को एक गैलन पानी में उबाल लेना चाहिए और फिर उसके पानी को छानकर प्रत्येक बार में दस से पंद्रह तोला एक देना चाहिए। खारी और खट्टी भाजियाँ अधिक होना चाहिए। पालक, बथुआ, चोलाई की भाजियाँ उत्तम हैं।

आरंभ के दो दिनों में ऊपर लिखे अनुसार केवल फलों का या शाक भाजियों का रस दिया जाये और फिर उसके बाद थोड़ा-थोड़ा दूध भी शुरू कर दिया जाये।

अपच, पित्ताशय के क्षत, पित्ताशय के कार्सिनोमा और पित्ताशय के क्षय में दूध से उतना फायदा नहीं होता जितना कि जौ के या गेहूँ के पानी से होता है। जिन्हें दूध से कब्ज होता है, उन्हें भी उक्त पेय बहुत हितकर हैं। उबलते हुए एक पिंट पानी में एक चम्मच जौ का आटा और एक चुटकी नमक डालने से यह बन जाता है। इसे छानकर तीन-तीन घंटे के अंतर से दस-दस पंद्रह-पंद्रह तोले के लगभग पिलाते रहना चाहिए। २४ घंटे बीत जाने पर पानी के सिवाय जौ का अंश भी दिया जा सकता है। यदि इससे भूख अधिक मालूम पड़ती हो तो दो दिन ठहरकर धीरे-धीरे दूध भी देने लगना चाहिए।

शाक-भाजियों का पानी पहले दो दिनों के बाद इच्छित मात्रा में लिया जा सकता है। उस समय की खुराक से यदि संतोष न होता हो तो वह पानी चाहे

जितनी बार बिना डर के लिया जा सकता है परंतु एक बार में १५ तोले से अधिक नहीं लेना चाहिए।

उपवास के बाद पथ्य लेने के लिए नीचे कई क्रम दे दिये जा रहे हैं। रोगी की अवस्था और सुविधा के अनुसार इनमें से कोई एक छाँट कर काम में लाया जा सकता है-

दो से लेकर पाँच दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन- तीन बार ताजे फल

दूसरा दिन- एक-एक घंटे के बाद एक-एक गिलास मीठा दूध

बाद के दिन- प्रति पौन घंटे या आधा घंटे के बाद एक-एक गिलास दूध बारह घंटे तक। दूध का परिमाण रोगी की पाचनशक्ति, इच्छा शरीर पर अवलम्बित है।

अथवा

पहले तीन दिन-दिन बार में एक खट्टा फल, एक मीठा फल और एक गिलास दूध।

तीन दिन बाद-सेवरे शाम एक पिंट से लेकर एक कार्ट तक गरम दूध और दोपहर को शाक भाजियों का पूर्वोक्त रस।

एक से दो सप्ताह बाद- यदि दूध पर अधिक दिन रहने की इच्छा न हो तो धीरे-धीरे अन्न पर आ जाना चाहिए।

६ से १० दिन के उपवास का पथ्य

पहले दो दिन- तीन चार बार ताजे फल

तीसरा दिन- दो-दो घंटे के बाद आधा पिंट गरम दूध।

चौथा दिन- एक-एक घंटे के बाद आधा पिंट गरम दूध।

बाद में- पौन या आधे-आधे घंटे के बाद आधा पिंट गरम दूध।

अथवा

पहले दो दिन- ताजे मीठे फल और तीन बार गरम दूध

१०-२० दिन के उपवास का पथ्य

पहला दिन- १०-१५ तोले पानी में मिलाया हुआ फलों का रस तीन बार।

दूसरा दिन- १५-२० तोले पानी में मिलाया हुआ फल का रस चार बार।

तीसरा दिन- दो-दो घंटे बाद आधा पिंट गुनगुना दूध।

बाद में- घंटे, पौन घंटे या आधे-आधे घंटे के बाद आधा-आधा पिंट गरम दूध।

अथवा

यदि अकेला दूध न लेना हो तो-

तीसरा दिन- एक-एक ताजा फल और आधा-आधा गिलास दूध तीन बार।

चौथा दिन- तीन बार फलाहार और एक गिलास गरम दूध।

पांचवा दिन- दिन में एक बजे तक आधा पिंट दूध कई बार में और

५-६ बजे के लगभग शाक भाजी का आहार

छठा दिन- सवेरे एक से डेढ़ पिंट तक गुनगुना दूध, दोपहर को शाक भाजियां और १-२ रोटी, शाम को छह बजे दोपहर के समान और सोते समय एक पिंट दूध।

२० दिन से अधिक के उपवास का पथ्य

ऊपर का अनुक्रम ही इसमें ठीक रहेगा। आरंभ के तीन चार दिनों तक जो पथ्य बतलाया गया है उसे कम मात्रा में लेना चाहिए। एक गिलास २० तोले के कुछ कम का समझना चाहिए। दूध के साथ फल ही लिये जावें, अन्न नहीं।

उपवास के बाद शक्ति निर्माण

उपवास के बाद शरीर में जीवन तत्त्वों और क्षारों की कमी हो जाती है क्योंकि उपवास काल में ये अत्यंत आवश्यक वस्तुएं प्राप्त नहीं होतीं। चर्बी, प्रोटीन आदि तत्त्व तो शरीर में ही मिल जाते हैं परन्तु अन्य जीवन तत्त्व नहीं मिलते। इस कारण उपवास के बाद जो खुराक ली जाये उसमें वानस्पतिक और विटामिन्स या जीवन तत्त्व अधिक होने चाहिए।

उपवास समाप्त करने के बाद पथ्य लेने का क्रम पहले लिखा जा चुका है। उसमें दूध के आहार से जितना लाभ हो सकता है उतना प्राप्त करने के बाद फिर नीचे लिखे हुए क्रमों में से कोई एक क्रम ग्रहण कर लेना चाहिए, अथवा आधा दिन दूध के आहार पर रहे और फिर इस क्रम के अनुसार पथ्य लिया करे।

१. सुबह उठते ही एक गिलास छाछ या मठा। दो घंटे बाद भाजी, प्याज, कच्ची पत्ता गोभी और पानी में पतली पीसी हुई बादाम। उबाली हुई गोभी पचने में भारी होती है, इसलिए कच्ची ही खानी चाहिए। इसके तीन घंटे बाद पानी में पीसी हुई बादाम और केला अथवा अंगूर, संतरे और अखरोट अथवा अंजीर और बालनट।

२. दोपहर के एक बजे तक दूध, ५-६ बजे के लगभग शाक-भाजी, कुछ कच्चा शाक, भुना हुआ एक आलू, भात, एक दो रोटियाँ और एक गिलास छाछ।

३. सवेरे १ गिलास छाछ, दो घंटे बाद अंगूर, पानी में पतली पीसी हुई बादाम, दूसरे मीठे फल और तेलवाले मेवे। ये सब दूध के साथ लिये जा सकते हैं और जुदा भी। दो घंटे बाद शाक भाजी, खीर, पनीर। तीन घंटे बाद हरे शाक, उबाले हुए या भूँजे हुए आलू, उबले हुए अंजीर, आलू बुखारा, मनुक्का और काफी के दाने।

४. कलेवा में खट्टे मीठे फल और दूध। दोपहर को गोभी, टमाटर (कच्चे)

प्याज और उबले हुए काफी के दाने। शाम को एक दो भाजियाँ, रोटी और दाल।

पथ्य आहार के साथ ही तरह-तरह के व्यायाम-जो शक्ति से ज्यादा न हों। स्वच्छ हवा और धूप की भी बहुत आवश्यकता होती है सदा भूख से कम भोजन करो, चाहे फिर भूख लग आने पर समय के पहले ही भोजन करना पड़े। दिन में और खास तौर से भोजन के समय पानी पीना आवश्यक है क्योंकि इससे खून बढ़ता है और पतला होता है। दुर्बल और मंदाग्निवालों के लिए भले ही भोजन के बाद पानी न पीना ठीक हो परंन्तु सबके लिए तो बहुत ही आवश्यक है। यदि ठंडे पानी से मंदाग्नि होती हो तो गुन गुना या गरम पानी पीना चाहिए। पानी अमृत है।

उपवास के अनुभव

खुराक या भोजन संबंधी प्रश्नों का उत्तर देने में सर हेनरी थाम्पसन सबसे बड़े प्रमाणिक विद्वान गिने जाते हैं। उनका कथन है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों उम्र में बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसे भोजन की कम आवश्यकता होती जाती है। जवानी में जितना भोजन पचाया जा सकता है उतना बुढापे में नहीं पचाया जा सकता। यदि पचा लिया जाता है तो ग्रहण नहीं किया जा सकता और यदि ग्रहण कर लिया जाता है तो शरीर उसका कोई उपयोग नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि एक तो बुढ़ापे में पाचक रस उतने अच्छे और ताकतवर नहीं रह जाते हैं। दूसरे जवानी में शरीर की बाढ़ होती है और उसमें सारे पोषक तत्त्व खप जाते हैं परंतु बुढ़ापे में बाढ़ रुककर क्षीणता आरंभ हो जाती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शरीर में संचित हुए निरूपयोगी पदार्थों को कम करने के लिए उतरती अवस्था में उपवास बहुत उपयोगी है। इसके सिवाय बुढ़ापे में ऐसी खुराक की जरूरत नहीं जिससे शरीर की ओर स्नायुओं की वृद्धि होती है इसलिए प्रोटीन तत्त्व वाले दाल, आलू आदि पदार्थ बिल्कुल बंद कर देने चाहिए तथा चर्बीवाले पदार्थ कम कर देने चाहिए। बुढ़ापे में तो जहाँ तक बन सके शाक और भाजी की ही खुराक लेनी चाहिए।

बच्चों के लिए भी उपवास उपयोगी है परन्तु लंबे उपवास नहीं क्योंकि उनकी पाचन शक्ति इतनी तीव्र होती है कि उपवास काल में वह शरीर के उपयोगी अंगो को भी शीघ्र ही पचाना शुरू कर देती है। बच्चों को अक्सर जरूरत से ज्यादा खुराक दी जाती है इस कारण उनका शरीर मोटा गोलमटोल हो जाता है। मोटा बच्चा ताकतवर समझा जाता है परन्तु वास्तव में यह ख्याल गलत है। डॉक्टर पेज का कथन है कि मनुष्य को छोड़कर दुनिया में और किसी प्राणी के बच्चे मोटे नहीं होते। बच्चों का पतला होना ही प्रकृति का नियम है और इसमें यदि कोई व्यक्तिरेक है तो मनुष्य का। किसी अंश में चर्बी वाले स्नायु इस बात के घोतक हो सकते हैं कि भोजन शरीर द्वारा ग्रहण किया जा रहा है

परंतु साधारण नजर से यदि बच्चे में मोटापन मालूम पड़े तो वह बीमारी का चिह्न है। बच्चों को परिमित खुराक ही दी जानी चाहिए।

गर्भवती स्त्रियों के संबंध में यह कहा जाता है कि उन्हें दूनी खुराक खानी चाहिए क्योंकि उनके पेट में जो बच्चा रहता है उसका पोषण भी आवश्यक है परन्तु यह ख्याल गलत है। यदि बच्चे का वजन ९ पौण्ड मान लिया जाये जो कि नौ महिने में होता है तो एक पौण्ड महीने की औसत हुई। इस एक पौण्ड महिने का अर्थ हुआ आधा औंस (सवा तोले) प्रतिदिन परंतु कैसा अंधेर है कि इस आधे औंस को सप्लाई करने के लिए माताओं को एक पौण्ड से लेकर दो पौण्ड तक ज्यादा खाने की सलाह दी जाती है। इसी का यह फल होता है कि प्रसूति के समय माताओं के स्नायुओं की जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है और उन्हें बुखार रहने लगता है।

इधर जन्मते ही बेचारे बच्चे को अधिक खुराक दी जाने लगती है। डॉक्टर पेज नै हिसाब लगाकर बतलाया है कि यदि शरीर के परिमाण में जवान आदमी को उतना ही दूध पिलाया जाये जितना कि साधारणत: बच्चों को पिलाया जाता है तो वह करीब एक मन होगा। यही कारण है जो बच्चों को ऐसे बीसियों रोग होते हैं जिनके संबंध में यह मान लिया गया है कि वे उन्हें होने ही चाहिए।

आगे खास-खास उपवास करने वालों के अनुभवों का सार दिया जाता है- कुमारी एल.एल. - दिसंबर १९२० के फिजिकल कल्चर में श्रीमती एनी रिले हेल ने इस २२ वर्ष की युवती के विषय में लिखा है कि उसे संपूर्ण रूप से फुफ्फुस क्षय हो गया था। शुरू में बहुत दिनों तक वह तरल खुराक और बहुत पानी पर रखी गई। पहले कुछ दिनों तक फुफ्फुस में से मल युक्त कचरा बहुत बड़ी मात्रा में निकलता रहा जो धीरे-धीरे शांत हो गया। २२वें दिन के पश्चात्, क्षय के कीटाणु बिल्कुल नहीं रहे। आगे दिन पर दिन अवस्था सुधरती गई और वह सर्वथा निरोग हो गई।

सिनेटर एच.जे.रिले- इन महाशय ने नवंबर सन् १९२० के फीजिकल कल्चर में लिखा है कि मैंने दमा के रोग पर २२ दिन का उपवास किया। मैं हर

रोज ५ मील पहाड़ी रास्ते पर घूमता था और अपने दैनिक कार्य भी बराबर करता था। मेरा वजन २३८ पौण्ड था। उपवास के बाद छाती और पीठ के घेरे का १५ इंच मांस कम हो गया और गर्दन के घेरे में ३ इंच की कमी हो गई। दमा बिल्कुल अच्छा हो गया।

मि.पी.-ये महाश्य न्यूयार्क के कब्रस्तान में काम करते हैं अपने धंधे के कारण डॉक्टर्स से अधिक परिचित हैं। उनसे डाक्टर्स ने कहा कि तुम्हारे जठर में कसर का चकत्ता पड़ गया है जो बिना ऑपरेशन के अच्छा नहीं हो सकता परंतु वे आपरेशन के सैकड़ों मरीजों को दफना चुके थे, इस कारण उसे डरते थे और किसी दूसरे प्रकार के इलाज की खोज में थे। पेट में बहुत अधिक तकलीफ थी उसके कारण वे दुहरे होकर चलते थे। तीन हफ्ते के उपवास से उनकी कमर सीधी हो गई और चलते समय दर्द कम होने लगा। धीरे-धीरे शरीर का रंग भी लौटने लगा। दो महीने के भीतर डॉक्टर्स ने कह दिया कि अब तुम बिल्कुल अच्छे हो और तीसरे महीने वे यात्रा के लिए चल दिये।

जोजफ थॉमस- (फिजिकल कल्चर, अप्रैल सन् १९२१) - यह अमेरिका की नौसेना में २३ वर्ष का सैनिक था। इसे सिफिलिस या गर्मी का भयंकर रोग हो गया जो पहले तो स्पेसिफिक इलाज करने से दब गया परंतु २ महिने बाद फिर उठा खड़ा हुआ। रोग के आक्रमण को भयंकरता इसी से मालूम होती है कि डॉ. वासरमेन द्वारा आविष्कृत यंत्र से रोगी के खून के दबाव का माप+४ अंश हो गया था। तब डाक्टरों ने सालवर सन (६०६ का) इंजेक्शन पारा और पोटेशियम आयोडाइज का ९ महीने का कोर्स शुरू किया। इन दवाओं का परिणाम यह हुआ कि उसके पेट ने विद्रोह कर दिया और शरीर रक्तहीन होने लगा परन्तु खून के दबाव में कोई अंतर नहीं हुआ। इस पर नौसेना के डॉक्टर से उसने कहा दिया कि अब वह इलाज नहीं करवाना चाहता। डॉक्टर ने इस पर बुरे व्यवहार की शिकायत करके उसे नौकरी से बरतरफ करवा दिया। अधिक इलाज करवाने की अपेक्षा उसने नौकरी से अलग होना अधिक अच्छा समझा। आखिर उसे १९ दिन का उपवास करवाया गया। १३ वें दिन उसने एक सेव खा

लिया उसके बाद १३ हफ्ते उसे दूध पर रखा गया। परिणाम यह हुआ कि बीमारी के सब चिह्न लुप्त हो गये और वासरमेन परीक्षा ने भी उसे रोग शून्य बतला दिया।

जॉनी वेल्स केण्टुक्की (चार वर्ष का बच्चा)- इसे एक असाधारण प्रकार का न्यूमोनिया (सन्निपात-ज्वर) हो गया था। इसे ६ दिन तक कोरे पानी पर और नींबू की हलकी खटाई वाले पानी पर रखा गया। चौथे दिन वह पलंग पर और उसके पास जमीन पर खेलने लगा परंतु पांचवे दिन बुखार फिर आ गया। इसलिए और भी कई उपवास कराये गये। आरंभ के तीन दिनों में छाती का दर्द जाता रहा और सिवाय बुखार के और कोई तकलीफ बाकी न रही। इस तरह एक हफ्ते में वह बालक बिल्कुल चंगा हो गया।

अम्ब्रोज टायलर- (फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) उम्र ६० वर्ष। वर्षों से संधिवात से पीड़ित था। बिछौने पर ही २३ दिन का उपवास कराया गया। उपवास-काल में लकवे के तीन हल्के आक्रमण हुए जो कि उपवास न कराये जाते तो भी होते और शायद उन्हीं में मृत्यु भी हो जाती। २३वें दिन के पहले ही लकवा अच्छा हो गया और अंत में संधिवात की पीड़ा भी चली गई।

एक स्त्री- (फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) इसे तीव्र अपच और मोटेपन की बीमारी थी। ३५ उपवास किये, जिनमें करीब आधे दिनों तक तो वह बिना पानी के रही। अपच के सब लक्षण तथा अन्य बीमारियों से बिल्कुल अच्छी हो गई।

मि.सी.सी.एच.कोबन- (फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) वारेन्स वर्ग, इलिनॉइज के रहने वाले। वर्षों के नाक और गले की कफ की बीमारी से दुखी थे। ४२ दिनों का सजल उपवास किया। उपवास के समय ३० रतल वजन घट गया फिर भी वे अपनी नौकरी करते ही रहे। उपवास के बाद रोग बिल्कुल अच्छा हो गया और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा मानों उनका पेट बिल्कुल नये सिरे से फिर से बनाया गया है।

मि.मिल्टन राथबर्न, माउण्ड व्हर्नान, न्यूयार्क- (फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) -शरीर का वजन अधिक था और डर था कि सिर से अधिक खून चढ़ जाने की बीमारी हो जायेगी। उम्र ५४ वर्ष और धंधा अनाज का। २५ दिन तक पूरा उपवास किया और दो हफ्ते केवल शाक भाजी का पानी लिया। इससे ४२ पौण्ड निरूपयोगी मांस घट गया और बीमारी का डर बिल्कुल जाता रहा। उपवास-काल में उसके नौकर ने कुछ फल लाकर दिये और खाने के लिए अनुरोध किया परंतु उसने कह दिया कि यदि कोई मुझे १००० डालर भी दें तो मैं इस समय फल नहीं खाऊँगा।

एच.एच.ए - (फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) उम्र ३१ वर्ष। पेट का कफ और कब्ज का रोग था। धीरे-धीरे खुराक घटाकर शाक-भाजियों के सूप पर लाई गई। इसके बाद पहली जून से तीसरी जुलाई तक सजल उपवास कराये गये।५ जून से १५ जून तक उसे ऐसा मालूम होता रहा कि मेरी आँतों के किनारे छीले जा रहे हैं। तीसरी जुलाई के बाद प्रतिदिन आधा गिलास पानी और संतरे का रस लेना शुरू किया। उपवास के आरंभ में उसका वजन १६० पौण्ड था, जो कम होते होते ११४ पौण्ड रह गया परंतु उपवास छोड़ने के बाद ही फिर बढ़ने लगा और ५ हफ्ते बाद १७४ पौण्ड हो गया और अब तो वह खूब ताकतवर हो गया है।

मि.विलियन्स एन.सी. - उम्र २५ वर्ष। सुजाक या मोनोरिया से उत्पन्न हुए अर्द्धांगवात के कारण यह रोगी बिछौने पर से भी मुश्किल से हिल सकता था। उसने ५४ दिन का लंबा उपवास किया। इसके पहले चार दिन तक और अंत में भी ४ दिन तक वह संतरे के रस पर रहा। उसका वजन १५५ पौण्ड था, जो उपवास काल में ४० पौण्ड घट गया परन्तु उपवास खत्म होने से पहले ही वह कमरे में फिरने लगा और एक हफ्ते के बाद तो रास्ते पर भी एक लकड़ी के सहारे घूमने लगा। दो हफ्ते बाद लकड़ी के सहारे की भी उसे जरूरत न रही। धीरे-धीरे खोया हुआ सारा वजन उसने फिर प्राप्त कर लिया और पाँच हफ्ते बाद वह पहले से भी दस पौण्ड ज्यादा वजनदार हो गया।

मिलर (एक वर्ष का बच्चा)- इसे कौटुम्बिक डॉक्टर ने एक असाधारण प्रकार का लाल बुखार बतलाया। तीन दिन का उपवास कराया गया जिसमें पानी के साथ नारंगी का बहुत थोड़ा रस दिया जाता था। इससे बीमारी के सब लक्षण हवा हो गये और उसकी माता ने तो यह मानने से भी इंकार कर दिया कि उसके बच्चे को कोई भयंकर बीमारी थी।

कुमारी ए.ए.केनेडा - उम्र २८ वर्ष। इसे पेट की एक भयंकर बीमारी (पेट के अंगो के विचलित हो जाने की) थी। आरंभ में चार दिन संतरे का रस दिया गया, फिर २५ सजल उपवास कराये गये और फिर तीन दिन संतरे का रस दिया गया। इसके बाद उसे ऐसी भूख लगी जैसे वर्षों से नहीं लगी थी। जो जीवन उसे भारभूत प्रतीत होता था वही अब आनंदमय हो गया। तीन महीने के भीतर ही उसका शरीर सुंदर और सुडौल हो गया और नौ वर्ष से रुका हुआ यौवन उभर गया। अब वह पूर्ण स्वस्थ युवती है।

एम.ए.एम. दक्षिणी केरोलीना- उम्र ६८ वर्ष। इन्हें आमाशय की बीमारी और कफज बधिरता थी। साथ ही जीभ पर छाला था। शुरू में संतरे का रस लेने से जीभ का छाला बढ़ गया, तब ३ हफ्ते तक केवल पानी पीया। इसके बाद दस दिन तक दूध लिया। इससे जीभ का छाला जो उपवास में अच्छा हो गया था फिर लौट आया। तब दो हफ्ते तक फिर केवल पानी पिया। इसके बाद पाँच हफ्ते तक दूध की खुराक ली, जो संतोषप्रद साबित हुई। दूध दौड़कर वे दो हफ्ते तक केवल संतरे के रस पर रहे। अब उनकी तबीयत बहुत शीघ्रता से सुधरने लगी और वे बिल्कुल अच्छे हो गये।

कुमारी टी.एल.- उम्र १६ वर्ष। शरीर की ऊँचाई ५ फीट ७ इंच और वजन ११५ पौण्ड। इसे गले के कौए और सप्तपथ या गले के पीछे के हिस्से का क्षय हो गया था। आरंभ में दो दिन केवल संतरे का रस दिया, फिर १५ सजल उपवास कराये गये और अंत में फिर दो दिन संतरे के रस पर रखा। इसके बाद दूध की खुराक शुरू की और दो महीने के लिए वायु परिवर्तनार्थ भेज दिया। बस, बीमारी बिल्कुल रफा हो गई और गले की आवाज गिरजे के घंटे के समान सुरीली हो गई।

मि.पी.मे, ओलाहोमा- उम्र ४४ वर्ष। इसे एक प्रकार के मधुमेह की तीन वर्ष की पुरानी बीमारी थी। फोड़ों के सिवाय उसके सब लक्षण मौजूद थे। उसे ३१ सजल उपवास कराये गये और आरंभ तथा अंत में चार-चार दिन मिलाये हुए अंगूर के रस पर रखा गया। हर रोज थोड़ा सा बंधा दस्त प्राकृतिक रूप से आता रहा परंतु १६वें दिन नहीं आया क्योंकि उसके पहले के दिन दो दस्त हो गये थे। चौथे हफ्ते तक शक्ति घटने के बदले बढ़ती गई और फिर कम होने लगी परंतु दुर्बलता नहीं आई। इसके बाद बिना मलाई के दूध पर रखा गया। इससे रोग के सब चिह्न लुप्त हो गये। आरंभ में वजन औसत के कम था। उपवास काल में २१ पौण्ड और घट गया परंतु चार हफ्ते बाद औसत वजन हो गया।

ये सब उदाहरण हजारों केसों की सूची में से बिना विशेष सोच-विचार के छाँट लिये गये हैं। प्रदर्शन के लिए इनका चुनाव नहीं किया गया। मैं जानता हूँ कि उपवास चिकित्सा की परीक्षा का इच्छुक प्रत्येक पाठक ऐसे उदाहरण की खोज में होगा जो उसके समान हो परंतु मुझे इससे अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता मालूम नहीं होती।

इस पुस्तक को मैंने केवल इसी उद्देश्य से लिखा है कि लोग इस बात को समझ जायें की उपवास यदि सर्वोत्तम नहीं तो सर्वोत्तमों में से एक चिकित्सा पद्दति अवश्य है। मुझसे जहाँ तक बन सका है, मैंने इस बात को पूरी तरह से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, अब इसका उपयोग करना न करना पाठकों के हाथ में है।

व्यायाम, विश्राम और स्नान

कुछ लोग व्यायाम के संबंध में इतने अधिक आशावादी देखे जाते हैं कि उनकी समझ में ऐसे रोग की कल्पना ही नहीं हो सकती तो व्यायाम से अच्छा न हो सके और इसलिए वे कहते हैं कि चिकित्सा के प्रत्येक क्रम में वह अवश्य होना चाहिए। सब काम किये जा सकते हैं परन्तु इस प्रकार के विचार गलत हैं और कभी-कभी गंभीर संकट में डाल देते हैं। आंशिक और छोटे उपवासों में शारीरिक श्रम को घटाने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु लंबे उपवासों के संबंध में ऐसा नहीं है। तीसरे से पांचवे दिन के बाद व्यायाम कम कर देना चाहिए बल्कि साधारण हलन-चलन की कसरत के सिवाय अन्य कोई कसरत करनी ही नहीं चाहिए।

हाल में ही मुझे एक सज्जन का पत्र मिला है जो उपवास काल में नौ-नौ घंटे मनोबोझ उठाने का व्यायाम करते हैं। इससे यह तो मालूम होता है कि मनुष्य उपवास काल में भी कठिन व्यायाम कर सकता है परंतु मेरा विश्वास है कि अधिकांश उपवास करने वालों के लिए यह बहुत हानिकारक और अनेक बार प्राणहर सिद्ध होता है और खास तौर से तब जब कि उसे व्यायाम का अभ्यास न हो। उपवास में व्यायाम की मात्रा थकावट और स्नायुओं की भूख पर अवलंबित है।

उपवास-काल में घूमना या चलना ही सर्वोत्तम है। यदि चलने की अपेक्षा अधिक सर्वांगीण व्यायाम की आवश्यकता हो तो अंगो को ढीला करने, तानने, अंगडाई लेने आदि की कसरतें करनी चाहिए। आलस्य और शैथिल्य मालूम होने पर इनसे बहुत उपकार होता है।

क्रिया और प्रतिक्रिया सभी जगह देखी जाती है और चूंकि इस मानव यंत्र को भी अपने कार्य के परिणाम में प्रतिक्रिया की आवश्यकता होती है इसलिए यह आवश्यक है कि हम हर समय तथा खास तौर से उपवास के समय अवस्थानुसार न्यूनाधिक परंतु काफी विश्राम लें। क्रिया और प्रतिक्रिया के बीच

में तथा व्यायाम और विश्राम के बीच में एक प्रकार का अनुपात होना चाहिए। दिन में कुछ काल विश्राम के लिए देना चाहिए और यदि विश्राम का काल घर के बाहर बिताना संभव हो तो बहुत ही उत्तम है। अनुकूल मौसम में जमीन पर लेटकर वह वैद्युतिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है जो पृथ्वी माता हर समय वितरित किया करती है। जहाँ खूब ताजी हवा मिलती हो और उसका झोंका असह्य न हो, उस स्थान में कुर्सी पर आराम से बैठा जा सकता है।

प्रत्येक कार्य-काल के बाद मनुष्य को विश्रांति प्राप्त करनी चाहिए। विश्रांति के समय यह आवश्यक है कि शरीर ढीला छोड़ दिया जाये। शिथिलीकरण के इस कार्य को संपादित करने के लिए यह आवश्यक है कि स्नायुओं के प्रत्येक यूथ पर अच्छी तरह ध्यान दिया जाये। सच्चे विश्राम के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वे उस काल में भी जिसे कि वे विश्रांति काल कहते हैं। विश्रांति या ताजगी प्राप्त करने में असफल होते हैं। दिन को दो बार आधे-आधे घंटे का समय विश्रांति के लिए काफी है। इतने समय में शरीर इस तनाव से मुक्त हो सकता है।

जीवन और शक्ति देने वाली सूर्य की किरणों का भी रोगी पर बड़ा ही विस्मित कर देने वाला परिणाम होता है। धूप के दिनों में सूर्य स्नान और वायु स्नान दोनो ही कभी-कभी लेने चाहिए परंतु इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सूर्य की किरणों में कुछ रासायनिक किरणें विनाशक भी होती हैं, इसलिए धूप में वस्त्र पहिनकर या नंगे बदन बहुत अधिक देर नहीं रहना चाहिए।

तुर्की- स्नान, जल चिकित्सा के स्नान और भीगी चादर आदि के प्रयोग भी लाभकारक और शीघ्र फलदायक होते हैं परंतु ये दोनों विधियुक्त होने चाहिए और रोगी इतना ताकतवर हो कि इनसे लाभ उठा सके परंतु यह आवश्यक नहीं कि उपवास-काल में वायु, जल या धूप के स्नान कराये ही जावें। बहुत बार खासकर कमजोरी में प्रकृति के भरोसे छोड़ देना ही उत्तम होता है। उपवास में बिना किसी बाहरी सहायता के स्वयं ही रोग दूर करने की बड़ी भारी शक्ति है।

यहाँ इतना और जान लेना चाहिए कि रोगी के शरीर में इतनी ताकत अवश्य हो कि वह ठंडे पानी के स्नान के बाद शीघ्र गरम हो सके। यदि ऐसा नहीं होगा तो उससे लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक संभावना है। इससे तो यह अच्छा होगा कि कमजोर रोगी को गरम पानी का स्नान कराया जाय अथवा पहले गरम पानी का स्नान कराके तुरंत ही ठंडे पानी का स्नान कराया जाये जिससे गरमी शीघ्र आ जावे और जीवन क्रिया तीव्रता से होने लगे।

* इस विषय को अच्छी तरह समझने के लिए हमारे यहाँ से प्रकाशित डॉ.लुई कुने की नवीन चिकित्सा-विज्ञान और जलचिकित्सा संबंधी दूसरी पुस्तकें पढ़ लेनी चाहिए।

दस वर्ष में ३८९ उपवास

मैं सन् १८९६ में बम्बई आया और चिकित्सावृत्ति करने लगा। उस समय मेरे शरीर का वजन १३० पौण्ड था जो बढ़ते-बढ़ते सन् १९२१ में १६३ पौण्ड हो गया और इसका फल यह हुआ कि मुझे उठने बैठने में बहुत कष्ट होने लगा। मैं सोचने लगा कि रोचक प्रयोग से शरीर को हल्का करना चाहिए। सन् १९२२ के सितम्बर में मेरा शिष्य चि.रामदत्त शर्मा बम्बई आया और तब मुझे रोचक प्रयोग शुरू करने का सुभीता मिला। ता. १२ सितम्बर से मैं जुलाब * लेने लगा और ता. ९ अक्टूबर तक बराबर लेता रहा। हर रोज ११ से १३ तक दस्त आते हैं। इससे शरीर बहुत शिथिल हो गया और वजन भी २२ पौण्ड घट गया। अब जुलाब लेने का सामर्थ्य न रहा। ता. १० को जुलाब की दवा नहीं ली, फिर भी ११ दस्त आये और ता. ११ को भी वे जारी रहे। इससे यह निश्चत करना पड़ा कि दूध भात और छाछ-भात का आहार जो प्रतिदिन लिया जाता था वह बंद कर दिया जाये और उपवास चिकित्सा शुरू की जाये। यह उपवास २१ दिनों का हुआ और इससे मुझे अपूर्व लाभ हुआ। कहाँ तो मैं उठ बैठ भी नहीं सकता था और कहां ता. ३१ अक्टूबर को जब कि २९ वाँ उपवास था, नौकर के चले जाने से मुझे नल पर से जल के छह घड़े भरकर लाने पड़े और इसमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ।

ता. १ नवंबर को ६ संतरों का रस लेकर मैंने उपवास तोड़ दिया। इसी दिन दस बजे रात को एक ऐसा जबरदस्त दस्त आया जैसा कि २९ दिनों के जुलाब में भी कभी न आया था। इसमें काले रंग का बहुत ही सच्चिकण मल निकला और तब से शरीर बहुत ही हल्का प्रतीत होने लगा।

ता. २ को एक दर्जन संतरे का रस लिया परन्तु उससे संतुष्टि न हुई यही जी चाहता रहा कि कुछ और आहार मिलता। ता. ३ को कई बार में २० तोले गौ

---

* यह जुलाब सनाय, गुलाब के फूल और सौंफ के काढ़े में अमलतास का गुदा मिलाकर तैयार किया जाता था।

का दूध और एक दर्जन संतरो का रस लिया, फिर भी भूख न मिटी। ता. ४ को ४० तोले दूध और एक दर्जन संतरे का रस लिया। आगे ८ नवम्बर तक एक पौण्ड दूध हर रोज बढ़ाकर लेता रहा और साथ में ६ संतरो का रस। ता. ९ को ढाई तोले चावलों का भात, ४ पौण्ड दूध और ६ संतरों का रस लिया। ता. ९ को ढाई तोले चावलों का भात, ४ पौण्ड दूध और ६ संतरों का रस लिया। ता. १० से दूध और रस के सिवाय दाल भात भी लेने लगा परंतु फिर भी भोजन की इच्छा कम न हुई।

ता. १२ नवंबर को शरीर का वजन किया तो १४२।। पौण्ड निकला और यह निश्चय हो गया कि आहार लेने से चर्बी फिर बढ़ेगी, हुआ भी वही ज्यों-ज्यों भोजन की मात्रा बढ़ती गई त्यों-त्यों शरीर भारी होता गया।

जब चर्बी फिर बढ़ गई और उठने बैठने में कष्ट होने लगा, तब जनवरी १९२३ से फिर उपवास शुरू किये, जिन्हें ३४ दिन तक जारी रखा। इस तरह अब मैं नीचे लिखी हुई सूची के अनुसार ग्यारह बार लम्बे-लम्बे उपवास कर चुका हूँ। यद्यपि मुझे इनसे स्थायी लाभ नहीं होता है फिर भी उन्हें बारम्बार करता हूँ। नहीं जानता कि मेरे प्रयोग में ऐसी कौन-सी त्रुटि है जिससे मुझे स्थायी लाभ नहीं होता है और चर्बी का बनना बंद नहीं होता। संभव है कि मेरी दूध की खुराक इसका कारण हो जिसे कि मैं छोड़ नहीं सकता हूँ। यदि कोई अनुभवी सज्जन इस विषय में मुझे कुछ परामर्श देंगे तो मैं उनका कृतज्ञ होऊँगा।

मांडवी, बम्बई — निवेदक
१०-०६-१९३२ — रामेश्वरानंद

उपवास सूची

१. ११ अक्टूबर १९२२ से ता. ३१ तक २१ उपवास

२. १२ जनवरी १९२३ से १४ फरवरी तक ३२ उपवास

३. २७-०८-२३ से २५-०९-२३ तक ३० उपवास

४. ११-०१-२४ से १३-०२-२४ तक ३४ उपवास

५. ०१-०१-२४ से ३१-०१-२५ तक ३१ उपवास

६. २५-०६-२६ से २४-०७-२६ तक ३० उपवास

७. १५-०७-२७ से २३-०८-२७ तक ४० उपवास

८. २८-०१-२८ से १०-०९-२८ तक ४० उपवास

९. १९-०१-२९ से २६-०२-९६ तक ४० उपवास

१०. २६-०७-३० से ०८-०९-३० तक ४४ उपवास

११. ३०-०६-३१ से १४-०८-३१ तक ४५ उपवास

खाँसी और श्वास पर २५ उपवास

अगस्त सन् १९२३ की बात है। मुझे अपने एक रिश्तेदार को चर्नीरोड स्टेशन पर पहुँचाने के लिए जाना था। घनघोर वर्षा हो रही थी, ६ बजे सवेरे का समय था, कोई किराये की गाड़ी न मिल सकी, इसलिए पैदल ही आना पड़ा। पानी के साथ जोरों की हवा भी थी। छाते ने कोई काम न दिया और पानी ने अच्छी तरह सराबोर कर दिया। फल यह हुआ कि जुकाम हो गया और उसने धीरे-धीरे उग्र खाँसी का रूप धारण कर लिया। पहले कुछ पेटेंट दवाइयों का सेवन किया, फिर कुछ देशी वैद्यों की सेवा की परंतु जब कुछ लाभ न हुआ तब बम्बई के नामी डॉक्टर और वैद्य पोपट प्रभुराम वैश्य एल.एम.एण्ड. एस.प्राणाचार्य का जो कि आयुर्वेद के भी विशेषज्ञ हैं और जिन्होंने एक बार मुझे डबल निमोनिया की नाग-पाश से मुक्त किया था, इलाज शुरू किया। उन्होंने २६ दिन तक बहुत सावधानी से उपचार किया परंतु वह सब व्यर्थ हुआ। इस समय अमरावती के सिंघई पन्नालालजी ने जो मुझ पर विशेष कृपा रखते हैं, बहुत ही उदार हैं मुझे इलाज के लिए अपने यहाँ बुलाया और मैं ता. १७ नवंबर को अमरावती पहुँचकर २३ दिसम्बर तक वहाँ रहा। वहाँ भी कई नामी वैद्यों और डॉक्टर्स का इलाज किया, होमियापेथी चिकित्सा भी की परंतु कोई लाभ नहीं हुआ बल्कि सर्दी बढ़ने के साथ-साथ श्वास भी हो गया। लाचार बम्बई लौट आया और अत्यंत कष्टमय जीवन व्यतीत करने लगा।

इसके कुछ समय बाद मेरी स्नेही और कृपालु मित्र डॉ. वज्रलालजी मेघाणी, मुझे पराठा हॉस्पिटल में ले गये और वहाँ उन्होंने लगभग एक माह तक अपनी देख रेख के नीचे रखकर डॉ.पटेल एम.डी. एफ.आर.सी.पी. की सम्मति से मेरा इलाज किया। बीसों इंजेक्शन और औषधियों का प्रयोग किया गया परंतु वह भी सब व्यर्थ हुआ।

इसके बाद डॉक्टर प्राणजीवन मेहता एम.डी.ने मेरे शरीर की परीक्षा की और बतलाया कि तुम्हें प्लुरिसी हो गई है और यह बहुत कष्टसाध्य है। मैं एक नुस्खा लिख देता हूँ उसका सेवन करो, लाभ होगा। उक्त नुस्खा बाजार से

खरीदकर मंगवा लिया गया परंतु पिया नहीं गया और तो... जनवरी को मुझे ज्वर आ गया। अब मैं और भी घबड़ाया। दूसरे दिन पूज्य वैद्यराज पं. रामश्वरानंदजी को मैंने अपनी सारी कष्ट-कथा सुनाई और कहा कि अब तो मैं जीवन से तंग आ गया हूँ, बतलाइये क्या करूँ। उन्हों सम्मति दी कि तुम एक लंबा उपवास करो। मेरा ख्याल है कि उससे जरूर लाभ होगा। तुम्हारा यह ज्वर तो पुकार-पुकारकर कह रहा है कि तुम्हारे शरीर को उपवास की जरूरत है। उस समय तक वैद्यराज जो स्वयं तीन बार लंबे उपवास कर चुके थे और अपने कुछ रोगियों को भी उपवास-चिकित्सा से अच्छा कर चुके थे। इसके सिवाय उनकी चिकित्सा से मैं कई बार लाभ उठा चुका था, मुझे उन पर विशेष श्रद्धा थी, इसलिए मैं उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके ता. १२ जनवरी १९२४ से उपवास करने लगा।

उपवास के पहले दिन हालत थी कि सारी रात औंधा पड़ा रहता था श्वास के वेग के कारण किसी से बात भी न कर सकता था। निरंतर ही सोचा करता था कि किसी तरह मौत हो जाये तो इस असह्य वेदना से छुट्टी मिल जायेगी। पहले ही उपवास से यह लाभ हुआ कि उस रात को पहले जितनी बैचेनी नहीं रही और कुछ समय के लिए निद्रा भी आ गई। दूसरी रात को अधिक आराम मिला और तीसरी रात को तो श्वास बिल्कुल बैठ गया, रातभर मजे से सोता रहा।

उस समय चार पाँच महिने की बीमारी के कारण शरीर बिल्कुल क्षीण हो गया था और तापमान (टेम्प्रेचर)९५ के लगभग आ गया था, इस कारण मेरे हितचिन्तक मित्र जिनमें एक डॉक्टर भी थे उपवास करने के विरुद्ध थे। मेरे पास उनकी बहुत सी दलीलों का कोई उत्तर नहीं था परन्तु उक्त तीन उपवासों का फल देखकर तो मैंने यह कहना शुरू कर दिया कि उपवासों से भले ही मैं मर जाऊँ परन्तु यह निश्चय है कि जितने दिन जिऊँगा, चैन से जिऊँगा और श्वास के मरणप्राय कष्ट से बचा रहूँगा।

दुर्बलता के कारण यद्यपि मैं परिश्रम नहीं कर सकता था फिर भी अपने

सोने के कमरे में बराबर टहलता रहता था और पुस्तकें भी अक्सर पढ़ा करता था। मष्तिष्क पर से एक बड़ा भारी बोझ सा हट गया था, जिससे विचारों का प्रवाह अबाध गति से चलता था। प्यास बिल्कुल नहीं लगती थी, फिर भी ओटाया हुआ ठंडा पानी दिन रात में कई बार पीता था और तीसरे चौथे दिन एनीमा लेता था, जिससे थोड़ा-थोड़ा सा मल निकला करता था। नींद खूब आती थी और रात को ६-७ घण्टे से कम कभी सोता न था।

ज्यों-ज्यों दिन जाने लगे त्यों-त्यों शान्ति मिलने लगी। ऐसा मालूम होता था कि हर रोज जो खुराक ली जाती थी, उसके पचाने में ही शरीर अपनी सारी शक्ति लगा देता था, रोग को पचाने का उसे अवकाश ही नहीं था परंतु खुराक बंद हो जाने से वह शक्ति रोग को पचाने में लग गई।

यद्यपि वैद्यराजजी की इच्छा थी कि मैं पूरे ३० उपवास करूँ परंतु मेरे टेम्प्रेचर की हालत देखकर लोग चिन्तित हो रहे थे और मेरा शरीर भी बिल्कुल हड्डियों का ढांचा रह गया था, इस कारण उन्होंने २५ दिनों के बाद ता. १५ फरवरी १९२४ को ही उपवास तुड़वा दिया। उस दिन मुझे ७ तोले अंगूरों का रस दो तीन बार में दिया गया। यह रस कितना सुस्वादु था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। जीवन में शायद पहली ही बार इस स्वाद का अनुभव हुआ था। दूसरे दिन चौदह तोले अंगूरों का रस दो-दो घंटे के अंतर से पिलाया गया। तीसरे दिन रस के साथ थोड़ा-थोड़ा दूध मिलाकर दिया गया। इसके बाद सूखे मनुक्का उबालकर उनका रस दूध के साथ दिया गया फिर चावलों का मांड और दूध, फिर चावलों को भूनकर उनका जूस और दूध और उसके बाद मूंग का पानी, फिर मूंग की दाल और भात, फिर रोटी और परवल का शाक, इस तरह कोई १५ दिनों के बाद मुझे मालूली भोजन पर लाया गया। दूध की मात्रा हर रोज थोड़ी-थोड़ी बढ़ाई जाती रही। धीरे-धीरे शरीर का वजन बढ़ने लगा और उसके साथ शक्ति भी। इस तरह विधिपूर्वक २५ उपवास करके मैंने एक भयंकर बीमारी से छुटकारा पाया।

१४ वर्ष के लड़के के २६ उपवास

विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। जिन दिनों मैं खाँसी और श्वास से कष्ट पा रहा था, उसी समय मेरे एक मात्र पुत्र चि.हमेचंद्र को टाइफाइड या मोतीझीरा हो गया और बड़ी मुश्किल यह हुई कि शुरू में ही एक अनुभवहीन वैद्य ने उसे एरण्डी के तेल का जुलाब दिला दिया जिससे वह और भी बिगड़ गया। तब पूज्य रामेश्वरानन्दजी की सम्मति से उसके लिए भी लम्बे उपवास की व्यवस्था करनी पड़ी। ता. १८ जनवरी सन् १९२४ से २ फरवरी तक १६ उपवास कराये गये, इसके बाद ता. ३ से १५ तक थोड़ा-थोड़ा दूध दिया गया परंतु जब देखा कि ज्वर निःशेष नही होता है तब ता. १६ से २५ फरवरी तक फिर उपवास कराये गये परंतु इतने पर भी जब ज्वर निःशेष नहीं हुआ और शरीर बहुत क्षीण हो गया, तब फिर दूध देना शुरू कर दिया गया, जो ता. १९ मार्च तक जारी रखा गया। अंत में ज्वर चला गया और ता. २० मार्च को पहले पहल दूध भात दिया गया। इस तरह एक १४ वर्ष के लड़के के बिना किसी तरह की विशेष कठिनाई के २६ पूरे उपवास किये और ३६ दिन तक वह केवल दूध पर रहा। इस प्रयोग से पाठक समझ सकते हैं कि लंबे उपवास करना उतना कठिन नहीं है जितना की समझा जाता है और बिगड़े हुए टाइफाइड में भी इससे लाभ होता है।

निवेदक-

नाथूराम प्रेमी

४६ दिन का उपवास

अभी हाल ही ता. २० जून १९३२ के दैनिक अर्जुन में प्रकाशित हुआ है कि विलायत के मि.अलबर्ट बीट नामक एक सज्जन एक बार बीमार पड़े और किसी भी तरह की चिकित्सा से अच्छे नहीं हुए। वे लगातार २८ वर्ष तक बिस्तर पर पड़े रहे। डॉक्टर्स ने जवाब दे दिया। आखिर उन्होंने खाना छोड़ दिया और वे केवल पानी पर गुजर करने लगे। चार सप्ताह के बाद वे इतने कमजोर हो गये कि बिस्तर से उठ नहीं सकते थे और उनका शरीर केवल हड्डियों का ढांचा रह गया। ४६ उपवास पूरे हो चुकने पर उनकी बीमारी बिल्कुल दूर हो गई और फिर उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा हो गया कि वे अच्छे खासे पहलवान प्रतीत होने लगे। स्वस्थ होने के उपरांत वे कहते है कि मैं कम से कम १२० वर्ष तक जीवित रहूँगा किन्तु ६ साल के बाद वे एक मोटर से टकराकर मर गये। उनकी स्त्री और लड़के कहते हैं कि यदि इस दुर्घटना से उनकी मृत्यु न होती तो उनकी भविष्यवाणी अवश्य पूरी होती।

हिन्दी की सर्वोत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रंथमाला
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर का

संक्षिप्त सूचीपत्र

यह ग्रंथमाला सन् १९१२ से निकल रही है। हिन्दी संसार में यह सबसे पहली, सबसे अच्छी और सबसे सुंदर ग्रंथमाला है। हिन्दी के प्रायः सभी साहित्यसेवियों, कवियों और संपादकों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उपन्यास, नाटक, काव्य, जीवचरित, समालोचना, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, सदाचार, आरोग्य आदि विधि विषयों के कई ४५ ग्रंथ इसमें निकल चुके हैं जिनका हिन्दी प्रेमी पाठकों ने खूब ही आदर किया है। इन ग्रंथों में से अनेक ग्रंथो के चार-चार और पाँच-पाँच संस्करण हो चुके हैं और बराबर होते जाते हैं। ग्रंथमाला का एक सेट मंगा लेने से एक छोटा सा गृह पुस्तकालय (घरु लायब्रेरी) बन सकता है जो कुटुम्ब के लिए सब तरह से शान्ति और सुख का कारण होगा। आगे सब ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१. स्वाधीनता - जान स्टुअर्ट मिल की लिबर्टी का सुबोध और सरस अनुवाद। अनु.पं. महावीरप्रसारजी द्विवेदी। मू.१ ॥)

२. जॉन स्टुअर्ट मिल - स्वाधीनता के मूल लेखक का शिक्षाप्रद जीवन चरित विद्यार्थियों के लिए अतिशय उपयोगी। मू.रु. ॥

३. प्रतिभा - अतिशय सुरूचि सम्पन्न, भावपूर्ण मनोरंजक और शिक्षाप्रद उपन्यास बालक, युवा, स्त्री और पुरुष सबके हाथ में देने योग्य

४. फूलों का गुच्छा - अनेक भाषाओं से अनुवादित बहुत ही उत्कृष्ट सुंदर और भावपूर्ण तेरह गल्पों का संग्रह।

५. आँख की किरकिरी - महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सर्वश्रेष्ठ और बहुत ही मनोरंजक उपन्यास का अनुवाद।

६. चौवे का चिट्ठा - स्व.बंकिम बाबू का सुप्रसिद्ध ग्रंथ। हँसी मजाक इतिहास, राजनीति, समाजनीति, देशप्रेम आदि से भरा हुआ।

७. मितव्ययिता (गृह-प्रबंध-शास्त्र) - सेमुएल स्माइल्स के थ्रिफ्ट का छायानुवाद। किफायतशारी और सदाचार सिखाने वाली पुस्तक।

८. स्वदेश - रविन्द्र बाबू के स्वदेश संबंधी आठ निबंधों का अनुवाद। प्रत्येक देश प्रेमी के पढ़ने योग्य।

९. चरित्रगठन और मनोबल - आध्यात्मिक लेखक राल्फ वाल्डो ट्राइन की पुस्तक का अनुवाद। चरित्र संगठन में सहायता करने वाली पुस्तक।

१०. आत्मवाद - अमेरिका के हब्शियों के नेता डॉ.बुकर टी वाशिंगटन का अतिशय शिक्षाप्रद और कल्याणकारी जीवन चरित।

११. शान्तिकुटीर - अतिशय पवित्र सात्विक और शिक्षाप्रद उपन्यास स्त्री और पुरुष बालक और बालिका सभी के पढ़ने योग्य।

१२. सफलता और उसकी साधना के उपाय - इसमें सफलता और उसके सिद्धान्तों पर सरल भाषा में विचार किया गया है।

१३. अन्नपूर्णा का मंदिर - बहुत ही शिक्षाप्रद उपन्यास

१४. स्वावलम्बन - डॉ. सेमुएल स्माइल्स के सेल्फ हेल्प के आधार से लिखा हुआ नवयुवकों और विद्यार्थियों के जीवन को उत्साही, उद्योगी और कार्यक्षम बना देने वाला अतिशय शिक्षाप्रद ग्रंथ।

१५. उपवास - चिकित्सा - उपवास या लंघन के द्वारा भयंकर से भयंकर बीमारियाँ आराम करने के उपाय।

१६. सूम के घर धूम - द्विजेन्द्र बाबू के एक प्रहसन का अनुवाद।

१७. दुर्गादास - सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायकृत देशभक्ति और विश्राम के भावों से भरा हुआ नाटक।

१८. बंकिम-निबंधावली- बंकिम बाबू के धार्मिक, सामाजिक, राजनितिक और हास्यरस के उत्कृष्ट निबंधों का संग्रह।

१९. छत्रसाल - बुंदेलखंड केसरी राजा छत्रसाल के चरित्र के आधार से लिखा हुआ अत्यंत रोचक और घटना वैचित्यपूर्ण उपन्यास।

२०. प्रायश्चित और उन्मुक्ति का बंधन - बेल्जियम के नोबल प्राइज पाने वाले सुप्रसिद्ध लेखक मेटर लिंक की दो भावपूर्ण और हृदयद्रावक नाटिकाओं का सुंदर छायानुवाद।

२१. मेवाड-पतन - मेवाड़ के राणा अमरसिंह और बादशाह जहाँगीर के इतिहास के आधार से लिखा हुआ द्विजेन्द्र बाबू का नाटक

२२. शाहजहाँ - यह भी द्विजेन्द्रबाबू का प्रसिद्ध और एतिहासिक नाटक है। मुगल बादशाह शाहजहां इसके प्रधान नायक हैं।

२३. मानव-जीवन - चरित्र की शिक्षा देने वाला श्रेष्ठ ग्रंथ।

२४. उस पार - द्विजेन्द्र बाबू का सामाजिक नाटक

२५. उस पार - द्विजेन्द्र बाबू का सामाजिक नाटक

२६. ताराबाई - द्विजेन्द्र बाबू का राजूपताने की एक ऐतिहासिक घटना के आधार से लिखा हुआ पद्य नाटक

२७. देश दर्शन - हमारे देश की दुर्दशा का जीता जागता चित्र आँखो के सामने खड़ा कर देने वाला अपूर्व ग्रंथ।

२८. नवनिधि - सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक प्रेमचंदजी की चुनी हुई नौ गल्पों का संग्रह। सभी गल्पें पवित्र और शिक्षाप्रद हैं।

२९. नूरजहाँ द्विजेंद्रबाबू का ऐतिहासिक नाटक मुगल बादशाह जहाँगीर और उसकी बेगम नूरजहां के चरित्रों के आधार से लिखित।

३०. आयरलैण्ड का इतिहास - केसरी संपादक श्रीयुत केलकर का लिखा हुआ उत्कृष्ट इतिहास ग्रंथ। भारतवासियों के लिए अतिशय उपयोगी।

३१. शिक्षा - साहित्यसम्राट रविन्द्र बाबू के शिक्षा संबंधी पाँच निबंधों का अनुवाद। सभी निबंध बड़े ही महत्व के हैं।

३२. भीष्म - द्विजेन्द्र बाबू का पौराणिक नाटक ब्रह्मचर्य, पितृ भक्ति और स्वार्थत्याग का जीता जागता चित्र। बहुत ही शिक्षाप्रद।

३३. कावूर - इटली को आस्ट्रिया के चुंगल से मुक्त करने वाले महान देश भक्त और राजनीतिज्ञ का जीवनचरित।

३४. चंद्रगुप्त - द्विजेन्द्रबाबू का हिन्दू राजत्व के समय का ऐतिहासिक नाटक। मौर्यवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त के चरित्र को लेकर यह लिखा गया है।

३५. सीता - द्विजेन्द्रबाबू का पौराणिक नाटक। महासती सीता का पवित्र कोमल और तेजपूर्ण चरित्र चित्रण।

३६. राजा और प्रजा – जगतप्रसिद्ध विद्वान रविन्द्रबाबू के राजनीति संबंधी ११ निबंधों का अनुवाद। प्रत्येक देश भक्त के अध्ययन योग्य।

३७. गोबर–गणेश संहिता – व्यंग्य और वक्रोक्तियों से भरी हुई बहुत ही दिलचस्प चीज। आप हसेंगे और साथ–साथ ज्ञान भी प्राप्त करेंगे।

३८. पुष्पलता – अतिशय मनोहर हृदयद्रावक और अमृतोपम गल्पों का गुच्छा। गल्पें सबकी सब मौलिक हैं लेखक श्रीयुत सुदर्शन।

३९. सहादजी सिंधिया – अंग्रेजों के प्रबल प्रतिद्वन्दी, असीमसाहसी और केसरी महाराज सिंधियाजी का जीवन चरित्र।

४०. आनंद की पगडंडियाँ – अमेरिका के ज्ञानी और अंतदृष्टि जेम्स एनेनक बाईवेज आफ ब्लेसेडनेस नामक वेदान्त ग्रंथ का अनुवाद।

४१. ज्ञान और कर्म – बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान, हाईकोर्ट के जज, स्व.गुरुदास बनर्जी के अमूल्य ग्रंथ का अनुवाद।

४२. सरल मनोविज्ञान – इसमें मनोविज्ञान जैसे कठिन विषयों को बहुत ही सरलता से सुगम भाषा में उदाहरण आदि देकर समझाया है।

४३. कालिदास और भवभूति – संस्कृत के दो सुप्रसिद्ध, कवियों के नाटकों की गुणदोष विवेचिनी, मर्मस्पर्शिनी और तुलनात्मक समालोचना।

४४. साहित्य–मीमांसा – यह भी एक समालोचना का ग्रंथ है इसमें पूर्व के और पश्चिम के साहित्य की तुलना की गई है।

४५. महाराणा प्रतापसिंह – स्व. द्विजेन्द्रबाबू का दुर्लभ नाटक। इसमें राणा का महान चरित्र बड़ी सफलता के साथ अंकित हुआ है।

४६. अंतस्तल – आचार्य चतुरसेन शास्त्री की प्रसिद्ध निबंधावली का परिवर्द्धित संस्करण। कई नये निबंध शामिल किये गये हैं।

४७. जातियों को संदेश – मूल–लेखक श्रीयुत पाल रिचर्ड और भूमिया लेखक साहित्य सम्राट श्रीरविन्द्रनाथ ठाकुर।

४८. वर्तमान एशिया – पाश्चात्य जातियों की धूर्तताओं, छल कपटों और अत्याचारों का सच्चा इतिहास।

४९. नीतिविज्ञान – लेखक बाबू गोवर्धनलाल, एम.ए.बी.एल. आचारशासत्र या नीतिविज्ञान का हिन्दी में सबसे पहला ग्रंथ।

५०. प्राचीन साहित्य – श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर के रामायण मेघदूत आदि प्राचीन साहित्य संबंधी निबंधों का अनुवाद।

५१. समाज – रविन्द्र बाबू के समाजशास्त्र संबंधी अचारक अत्याचार, समुद्रयात्रा, विलास की फाँसी, आदि आठ निबंधों का अनुवाद।

५२. अञ्जना – पौराणिक कथा के आधार से लिखा हुआ श्रीयुत सुदर्शन का मौलिक नाटक। बहुत ही भावपूर्ण और शिक्षाप्रद।

५३. मुक्तधा – महाकवि रविन्द्रनाथ का नया नाटक।

५४. सुहराब–रूस्तम – स्व.द्विजेन्द्रलाल राय वीर और करूणरस से भरी हुई बंगाली नाटिका का गद्य और पद्यमय अनुवाद।

५५. चन्द्रनाथ – बंगाल के इस समय के सर्वश्रेष्ठ लेखक रामचन्द्र चट्टोपाध्याय के एक सुंदर सामाजिक उपन्यास का अनुवाद।

५६. भारत के प्राचीन राजवंश – तीसरा भाग – प्राचीन काल से लेकर अब तक के तमाम राष्ट्रकूटी (राठोडों) का इतिहास।

५७. रवीन्द्र–कथाकुंज – महाकवि रविन्द्रनाथ की तमाम गल्पों में से चुनी हुई है बहुत ही उच्च श्रेणी की ९ गल्पों का संग्रह।

५८. मेरे फूल– गुरूकुल–युनिवर्सिटी के स्नातक सुकवि प.बंशीधरजी विद्यालंकार की सुंदर कविताओं का संग्रह।

५९. संजीवनी–संदेश–साधुश्रेष्ठ टी.एल. वासवानी के १ बुथे एण्ड दो नेशन, २ विटनेस ऑफ दी एश्येन्ट और ३ एश्येन्ट मुरली नामक तीन श्रेष्ठ निबंधों का अनुवाद। युवकों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

६०. प्रेम–प्रपंच – जर्मनी के शेक्सपीयर महाकवि शिलर के लुईए मिलरिन नामक शोकान्त नाटक का सुंदर रूपान्तर।

६१. सामर्थ्य, समृद्धि और शांति– डॉ.ओरिसन स्वेट मोढने के पीस पावर एण्ड प्लेण्टी नामक अध्यात्मिक ग्रंथ का भावानुवाद।

६२. चिर-कुमार सभा - महाकवि रविन्द्रनाथ के प्रजापति निबन्ध नामक प्रहसन का अनुवाद। उच्च श्रेणी का हास-परिहास।

६३. विधाता का विधान - श्रीमती अनुपमादेवी का लिखा हुआ सर्वश्रेष्ठ उपन्यास बिल्कुल नये ढंग का प्लाट और नई भावनायें।

६४. घृणामयी - उदीयमान लेखक पं. इलाचन्द्र जौशी का मौलिक सामाजिक उपन्यास। बिल्कुल नये ढंग की रचना।

६५. मानव हृदय की कथायें - फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ कहानी- लेखक मोपासा की चुनी हुई सरस कहानियों का सुंदर अनुवाद।

६६. साहित्य - रविन्द्रबाबू के साहित्य संबंधी ९ उत्कृष्ट निबंधों का अनुवाद। साहित्य शास्त्र की गहरी आलोचना।

६७. चन्द्रकला - श्री चन्द्रगुप्ता विद्यालंकारी देशभक्तिपूर्ण उत्कृष्ट मौलिक कहानियों का संग्रह।

६८. मध्यप्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले।

६९. परख - उदीयमान लेखक बाबू जैनेन्द्रकुमार का अतिशय सुंदर और करूणरसपूर्ण सचित्र उपन्यास।

७०. प्रपंच-परिचय - गुरूकुल यूनिवर्सिटी वृंदावन के प्रोफेसर श्री विश्वेश्वर सिद्धांत- शिरोमणी का लिखा हुआ दार्शनिक ग्रंथ।

७१. वातायन बाबू- जैनेन्द्रकुमार की बहुत ही भावपूर्ण तेरह सुंदर कहानियों का संग्रह।

७२. संजीवनी - ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने वाली अद्बितीय पुस्तक प्रत्येक युवक पढ़ने योग्य।

प्रकीर्णक-पुस्तक-माला

१. फूलों का गुच्छा-द्वितीय भाग - सुप्रसिद्ध गल्प-लेखक केशवचंद्र गुप्त की भावपूर्ण और मनोरंजक १३ गल्पों का अनुवाद।
२. युवाओं का उपदेश - विलियम कावेट के एडवाईज टू यंगमेन का भावानुवाद। विद्यार्थियों और युवाओं के लिए बहुत ही उपयोगी।
३. भारत-रमणी - द्विजेन्द्रलाल राय के सामाजिक नाटक का अनुवार। विवाह, वरविक्रय, बहुसंतिति का कष्ट, आदि सुधार संबंधी प्रश्नों पर बड़ी ही अच्छी चर्चा है।
४. बच्चों के सुधारने के उपाय - बच्चों की आदतें सुधारने और उन्हें सदाचारी तथा विनयशील बनाने वाले अतिशय सुगम उपाय।
५. कोलम्बस - अमेरिका महाद्वीप का पता लगाने वाले असीमसाहसी नाविक या उत्साहवर्धक और साहस बढ़ानेवाला जीवनचरित।
६. संतान - कल्पद्रुम - मनचाही, खूबसूरत, बलवान, चरित्रवान और नीरोग संतान उत्पन्न करने के उपाय।
७. कर्नल-सुरेश विश्वास - एक साहसी बंगाली का अत्यंत आश्चर्यजनक घटनाओं से भरा हुआ अद्‌भुत जीवन चरित।
८. व्यापार-शिक्षा - व्यापार, पूंजी, सिक्का, हुण्डी, बैंक, बहीखाता, साझा, तेजी, मंदी, बीमा, आदि विषयों पर उपयोगी पाठ।
९. ब्याही बहू - ससुराल जाने वाली लड़कियों के लिए बहुत ही उत्तम शिक्षा देने वाली एक अनुभवी विद्वान की लिखी हुई पुस्तक।
१०. पाषाणी (अहल्ला) - द्विजेन्द्रबाबू का पौराणिक नाटक।
११. सिंहल-विजय- द्विजेन्द्रबाबू का इतिहास नाटक।
१२. प्राकृतिक चिकित्सा- इसमें रोग दूर करने वाले बिना कोड़ी पैसे के प्राकृतिक उपायों का वर्णन है।
१३. विद्यार्थियों के जीवन का उद्देश्य
१४. दुग्ध-चिकित्सा - केवल दूध के सेवन से सब प्रकार के रोगों को दूर करने के उपाय बतलाने वाली पुस्तक।

१५. सुगम चिकित्सा - खाने पीने के नियमों और दिनचर्या में सावधानी तथा संयम रखने के द्वारा बड़े-बड़े रोगों को आराम करने के उपाय।
१६. देवदूत - सुकवि पं. रामचरित उपाध्याय का देशभक्त के भावों से लबालब भरा हुआ सुंदर खण्डकाव्य।
१७. देव सभा- यह भी पूर्वोक्त उपाध्यायजी की ही रचना है।
१८. अरबी-काव्य-दर्शन- अरबी के नामी कवियों की विविध प्रकार की रचनाओं का संग्रह।
१९. बूढ़े का ब्याह - खड़ी बोली का सुंदर सचित्र काव्य। लेखक सुकवि श्रीयुत सैय्यद अमीर अली (मीर) बुढ़ापे के ब्याह का परिणाम।
२०. सुखदास - हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास लेखक श्रीयुत प्रेमचंद्रजी ने इसे जार्ज इलिएट के साइलस मानकर की छाया लेकर लिखा है।
२१. श्रमण नारद - बौद्ध युग की बहुत ही मनोरंजक और परोपकार का पाठ सिखाने वाली प्रत्येक घर में पढ़ी जाने योग्य सुंदर कहानी।
२२. दिया तले अंधेरा - एक स्त्रीशिक्षा विषयक सचित्र कहानी।
२३. सदाचारी - बालक - एक छोटी सी शिक्षाप्रद कहानी।
२४. भाग्यचक्र - एक करुणरस पूर्ण कहानी।
२५. पिता के उपदेश - एक आदर्श पिता की अपने विद्यार्थी पुत्र के नाम लिखी हुई अतिशय शिक्षाप्रद चिट्ठियों का संग्रह।
२६. अच्छी आदतें डालने की शिक्षा - बालकों, बालिकाओं, विद्यार्थियों और उसके पिता तथा संरक्षकों को भी पढ़ने योग्य।
२७. जीवन-निर्वाह - असली धर्म का, सच्चे सदाचार का और सच्ची देशभक्ति का स्वरूप समझाने वाला अतिशय शिक्षाप्रद ग्रंथ।
२८. जननी और शिशु अर्थात् जच्चा और बच्चा - प्रसूति स्त्रियों और उसके बच्चों की रक्षा तथा सेवा की शिक्षा।
२९. भारत के प्राचीन राजवंश - द्वितीय भाग शिशुनाग नन्द, कण्ठ, कुशान, हूण, गुप्त, बैस, आन्य, मौखरी, ठाकुरी आदि प्राचीन राजवंशों का इतिहास।